HINDI - II

(DHIN21)

(BA, BCOM, BSC, BBA)

ACHARYA NAGARJUNA UNIVERSITY

CENTRE FOR DISTANCE EDUCATION

NAGARJUNA NAGAR,

GUNTUR

ANDHRA PRADESH

'काव्य दीप'

पाठ - 1.1

कबीरदास - साखी

इकाई की रूपरेखा :-

1.1.1 उद्देश्य
1.1.2 प्रस्तावना
1.1.3 कबीरदास का परिचय
1.1.3.1 समाज-सुधारक कबीर
1.1.3.2 कबीर की भाषा
1.1.4 कविता का मूलपाठ
1.1.5 कठिन शब्दों के अर्थ
1.1.6 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
1.1.7 बोध प्रश्न
1.1.8 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

1.1.1 उद्देश्य :-

इस इकाई में आप कबीरदास के दस दोहों का अध्ययन करेंगे।

1. निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानमार्गी शाखा की भक्ति तथा साधना संबंधी अनेक बातों को जान सकेंगे।

2. संत कबीरदास की जीवनी और विचारधारा से अवगत होंगे।

3. कबीर के समाज-सुधार संबंधी दृष्टिकोण की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4. कबीरदास के 'साखी' से 10 दोहे पढ़ेंगे जिनके द्वारा उनकी निर्गुणभक्ति, धार्मिक एकता, गुरु महिमा, बाह्याडंबरों का खण्डन, जाति-प्रथा का खण्डन, प्रेम का महत्त्व इत्यादि बातें समझ सकेंगे।

1.1.2 प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के प्रसिद्ध कवि कबीरदास बहुत बड़े दार्शनिक एवं समाज सुधारक भी थे। विद्याहीन होकर भी लोकमंगल की भावना से उन्होंने अपने सिद्धांतों तथा उपदेशों को कविता-रूप में व्यक्त किया था। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए उनके द्वारा किये गये प्रयास सचमुच प्रशंसनीय हैं। एकेश्वरवाद तथा निर्गुण भगवान की उपासना कबीरदास की दूरदृष्टि के परिचायक हैं। अपने समय के एक क्रांतिकारी विचारक कबीर की वाणी इतनी प्रभावी और कलापूर्ण थी कि उन्हें संत-काव्य परंपरा के प्रतिनिधि कवि माना जा रहा है। धार्मिक विषमताओं तथा साम्प्रदायिक झगड़ों के बढ़ते इस जमाने में संत कबीर की वाणी के मर्मों को युवा छात्रों के सामने रखकर उनके धार्मिक दृष्टिकोण को व्यापक बनाना बहुत

जरूरी है। मध्यकाल के इस संत कवि के दोहों को पढ़ना, समझ लेना, प्रभाव ग्रहण करना समाज में, देश में तथा विश्व में शांति की स्थापना के लिए एक अच्छा उपाय है।

1.1.3 कबीरदास का परिचय :-

कबीरदास हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि थे। उनके जन्म, जन्मतिथि, मृत्युतिथि आदि के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। जनश्रुति, दन्तकथाएँ और अनुमान के आधार पर कबीर की जीवनी के संबंध में कुछ बातें प्रचार में आयीं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कबीर की जन्मतिथि सं.1456 वि. है और मृत्युकाल सं. 1575 वि. है। कबीर के जन्म के संबंध में एक किंवदन्ती प्रचलित है- रामानंद के आशीर्वाद के फलस्वरूप एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उनका जन्म काशी में हुआ था। लोकलाजवश उनकी माता के काशी के लहरतारा नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया था। नीरू और नीमा नामक मुसलमान दंपति ने उस बालक को अपना लिया और उन्हीं के घर कबीर का पालन-पोषण हुआ। कबीर ने अपने जुलाहे माँ-बाप के व्यवसाय को अपनाया। आगे चलकर वे गुरु रामानंद से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बने।

कबीर निर्गुण भगवान के उपासक थे। उनके राम दशरथ पुत्र श्रीराम नहीं, निर्गुण परब्रह्म हैं। कबीर संत-मत के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं। संत काव्य-धारा के वे ही प्रमुख कवि थे। वे उच्चकोटि के साधक भी थे। हिन्दू-मुसलमान के पारस्परिक भेदभाव को दूर करने के लिए उन्होंने निराकार ब्रह्म ही उपासना पर जोर देते हुए मंदिर-मस्ज़िद के पाखण्डपूर्ण आचार-विचार का घोर विरोध किया। कबीर की भक्ति-भावना में अद्वैतवाद है, सूफियों की प्रेम-साधना है और मुसलमानों का एकेश्वरवाद है। कबीर ने तत्कालीन सभी संप्रदायों एवं मतमतांतरों का सार ग्रहण किया और सभी मनुष्यों के लिए अनुसरण योग्य मानव-धर्म का निर्माण करना चाहा।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। किन्तु सुने हुए ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकलती थी। संतों की भांति कबीर की वाणी सरल एवं सुबोध जनभाषा में प्रकट हुई। उनकी वाणी में मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता और स्पष्टता है। कबीर की वाणी धार्मिक भेदभाव को मिटानेवाली है, मानवतावाद का पोषक है, मनुष्य के हृदय में प्रेम उत्पन्न करनेवाली है। धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों तथा पारस्परिक विरोधों को दूर करनेवाली है। कबीर महान साधक थे, उच्चकोटि के सुधारक थे, निर्गुण भक्ति के प्रबल प्रचारक तथा संत-काव्य के प्रतिनिधि कवि थे। अन्य संत कवियों की अपेक्षा कबीर की वाणी अधिक सशक्त और प्रभावपूर्ण है।

कबीर की भक्तिभावना में नाम-स्मरण का अत्यधिक महत्त्व है। उसमें गुरु को बहुत महत्ता दी गयी है। अहंकार को त्याज्य माना गया। सदाचार पर अधिक जोर दिया गया और मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद का खण्डन किया गया। मानसिक ध्यान और आंतरिक पूजा को महत्त्व प्रदान किया गया है। केवल नाम-स्मरण के द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है। सत्संगति, साधु-सेवा, इन्द्रिय-निग्रह, संयम, वैराग्य, अनासक्त भाव, गुरु-सेवा, विनम्रता आदि के साथ भगवान की भक्ति अपनाने का आग्रह किया गया है।

1.1.3.1 समाज-सुधारक कबीर :- कबीर सच्चे भक्त ही नहीं, उच्चकोटि के समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक वैषम्य का विरोध करके उसमें साम्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। धर्म एवं ईश्वर में एकता का प्रतिपादन करके हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित किया, निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म की उपासना का प्रचार करके समाज में व्याप्त कटुता एवं विषमता को दूर करते हुए मानवमात्र के हृदय में आध्यात्मिकता का बीजारोपण किया तथा तत्कालीन समाज की जनता को सत्य मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया। परोपकार, सेवा, क्षमा, दान, धैर्य, अहिंसा आदि का प्रचार करके जन-जीवन में शुद्ध आचरण एवं सात्त्विकता की वृद्धि पर जोर दिया है। मिथ्या आडंबर एवं पाखण्डों का विरोध करके आन्तरिक साधना पर बल दिया। पशुवध, गोवध का विरोध करके समाज को अहिंसा तथा सहिष्णुता का महत्त्व बताया। तीर्थ, व्रत, उपवास आदि का विरोध करके सहज साधना और सरल जीवन व्यतीत करने का संदेश दिया। सामाजिक अधोपतन का उल्लेख करके समाज में नैतिकता एवं सदाचार की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार धार्मिक पाखण्डों एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का सराहनीय कार्य करके कबीर उच्चकोटि के समाज-सुधारक प्रमाणित हुए।

1.1.3.2 कबीर की भाषा :- कबीर की भाषा अनेक बोलियों का सम्मिश्रण है। उसमें ब्रज, अवधी, खड़ीबोली, राजस्थानी, मैथिली, भोजपुरी के शब्दों के साथ-साथ बंगला, बिहारी, पंजाबी, गुजराती, सिंधी, अरबी-फारसी आदि सभी बोलियों के शब्द पाये जाते हैं, जिसे 'सधुक्कड़ी' की संज्ञा दी गयी है। कबीर की वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ के रूप में संकलित की गयी। इसके तीन भाग हैं- साखी, सबद और रमैनी।

अनपढ़ होने पर भी कबीर की वाणी में अद्‌भुत प्रेषणीयता है। उसमें मर्मस्पर्शिता है, व्यंग्य करने एवं चुटकी लेने की अपूर्व क्षमता है, स्वेच्छानुकूल अभिव्यक्ति का अनुपम गुण है। कबीर निस्संदेह एक प्रतिभासंपन्न महाकवि थे, वे काव्य-रूढ़ियों के जानकार न होते हुए भी अनुभवी शब्द-चितेरे थे, काव्य-कला के 'तथाकथित' मर्मज्ञ न होकर भी शब्द-शिल्पी थे और संगीत के पण्डित न होते हुए भी हिन्दी की दिव्य एवं अलौकिक कविता के गायक थे।

1.1.4 कविता का मूलपाठ :-

1. साधु ऐसा चाहिए, जैसे सूप सुभाय।
   सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उडाय।।
2. जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
   मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।
3. पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
   ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।।
4. निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
   बिन पानी साबुन बिनु, निर्मल करै सुभाय।।
5. जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
   प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं।
6. केसरि कहा बिगारिया, जो मूँडै सौ बार।
   मन को काहे न मूँडिये, जामें बिषै विकार।।

7. जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहर की, साँस लेत बिनु प्रान।।
8. कबिरा संगत साधु की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की आठों पहर उपाधि।।
9. कबिरा सतगुरु ना मिला, रही अधूरी सीख।
स्वांग जती का पहिरि करि घरि घरि माँगै भीख।।
10. संग न छाँडै संतई जौ कोटिक मिलहिं असंत।
मल्य भुअंगम बेधिऔ सीतलता न तजंत।।

1.1.5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

1.	साधु	–	सज्जन
	सूप	–	अनाज फटकने का छाज
	सुभाय	–	स्वभाव
	सार-सार	–	सार पदार्थ
	थोथा	–	भूसा
2.	जाति	–	वर्ण (caste)
	मोल	–	मूल्य, दाम
	तलवार	–	खड्ग
	म्यान	–	तलवार रखने का कोष
3.	पाहन	–	पत्थर
	हरि	–	ईश्वर
	चाकी	–	चक्की
	भली	–	अच्छी
	पीस खाय	–	पीसकर खाना
4.	निन्दक	–	निन्दा करनेवाला
	नियरे	–	निकट में
	कुटी	–	झोंपड़ी
	छवाय	–	पत्तों से कुटी बनाना
	सुभाय	–	स्वभाव
5.	मैं	–	अहंकार
	साँकरी	–	संकीर्ण
	ता में	–	इसमें
	समाहिं	–	समा सकते

6. केसरि – बाल
   कहा – क्या
   बिगारिया – बिगाड़ा
   काहे – क्या
   जामें – जिसमें
   बिषै विकार – विषय वासनाएँ
7. जा घट – जिस शरीर
   जान – समझ लो
   मसान – श्मशान
   खाल लोहार की – धौंकनी
8. संगत – सांगत्य
   हरै – दूर करता है
   व्याधि – बुराई, दुर्गुण
   आठों पहर – चौबीसों घण्टे
   उपाधि – उपद्रव, उत्पात
9. सतगुरु – उत्तम गुरु
   अधूरी – अपूर्ण
   सीख – शिक्षा
   स्वांग पहिरि करि – वेष धारण करके
   जती – यती
   घरि-घरि – घर-घर
10. संत – साधु
    छांडै – छोड़ता है
    संतई – साधुपन, अच्छाई
    कोटिक – करोड़ों
    असंत – दुर्जन
    भुअंगम – साँप
    शीतलता – ठण्डापन
    तजंत – छोड़ता है

1.1.6 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. साधु ऐसा चाहिए, जैसे सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहै, थोथा देइ उडाय।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं-साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में साधु की श्रेष्ठता को बडे सरल और सुबोध ढ़ंग से समझाया गया ।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि सच्चा साधु गुणग्राही होता है। वह संसार की अच्छाई को ग्रहण करके, बुराई को छोड़ देता है। उसका स्वभाव सूप जैसा होता है। सूप अनाज में सार पदार्थ को ग्रहण करके भूसे को उडाकर फेंक देता है। उसी प्रकार साधु जगत् की विषय-वासनाओं को त्यागकर अच्छे विषयों को ही स्वीकार करता है। वह बुराई की ओर आकृष्ट नहीं होता।

विशेषता :- साधरणतया लोग बुराई की ओर अधिक आकृष्ट होते हैं। विषय-वासनाओं में लिपटकर अधोगति को प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु साधु संसार के सारतत्त्व- परमार्थ को स्वीकार करके सारहीन स्वार्थ को त्याग देते हैं।

2. जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर ने जाति की अपेक्षा ज्ञान को महत्त्व दिया है।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि साधु की पहचान उसके ज्ञान के द्वारा होती है, किन्तु जाति के द्वारा नहीं। उत्तम जाति में पैदा होने मात्र से हर कोई उत्तम नहीं बन जाता। निम्न जाति का हर आदमी अधम भी नहीं होता। चारित्रिक गुण वैयक्तिक हैं। जातियाँ मनुष्य ने बनायी हैं, ईश्वर ने नहीं। सज्जन किसी भी जाति में पैदा होता है, जिसके कारण वह जाति गौरवान्वित होती है। साधु को उसके ज्ञान के आधार पर आदर मिलता है। तलवार खरीदते समय उसकी धार की परीक्षा की जाती है, किन्तु म्यान की नहीं। काम आनेवाली चीज़ तलवार है, न कि म्यान। ठीक इसी प्रकार ज्ञान महत्त्वपूर्ण है और जाति नगण्य है।

विशेषता :- इसमें कबीर ने जाति प्रथा का खण्डन किया है। जाति के नाम पर मनुष्य-समाज में अलगाव की भावना उत्पन्न हो रही है। यह हिन्दू समाज के सिर पर लगा एक धब्बा है। इसे मिटाने का प्रयास कबीर के साथ-साथ सभी संत कवियों ने किया है।

3. पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं -साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर मूर्तिपूजा को निरर्थक बताकर उसका खण्डन करते हैं।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि यदि पत्थर की पूजा करने से भगवान मिल जायेंगे तो वे पहाड़ की ही पूजा करेंगे। पत्थर से पहाड़ कई गुना बड़ा है, जिसकी पूजा करने से उन्हें तुरन्त भगवान मिलना चाहिए। किन्तु पत्थर की मूर्ति-पूजा निरर्थक और बेकार है। उससे भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। उससे बढ़कर चक्की का पत्थर अच्छा है, जिससे लोग आटा पीसकर खा सकते हैं। इस पत्थर से कम से कम लोगों का पेट तो भरता है। मूर्ति के पत्थर से वह फायदा भी नहीं मिलता। क्योंकि भगवान निर्गुण है।

विशेषता :- इस दोहे में निराकार भगवान की ओर संकेत किया गया है। भक्ति के लिए ज्ञान और मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता है। मूर्तिपूजा से कुछ भी हासिल नहीं होता। ऊपर से धार्मिक विषमताओं के उत्पन्न होने का खतरा है। अतः मन में की जानेवाली भक्ति ही समाज में शांति स्थापित कर सकती है।

4. निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिनु, निर्मल करै सुभाय।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में यह उपाय बताया गया है कि आदमी अपने स्वभाव को कैसे सुधार सकता है।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि निन्दा करनेवाले को अपने आँगन में कुटी छवाकर रखना

चाहिए। दिन-रात उसके निकट रहने से, उसके निंदा-वचन सुनने से हमारे दोष और अवगुण हमें मालूम पड़ते हैं। तब जाकर हम अपने स्वभाव को ठीक कर सकते हैं। कपड़े को साफ करने के लिए पानी और साबुन की जरूरत है। निन्दक को अपने पास रखने से पानी और साबुन के बिना ही स्वभाव को साफ कर लिया जा सकता है। हमारे स्वभाव को निर्मल और पवित्र बनाये रखने का यह अच्छा उपाय है।

विशेषता :- आदमी दूसरों की कमियों व दोषों को तुरंत पहचान सकता है। किन्तु अपने दोषों व अवगुणों को स्वयं जान नहीं पाता। जब तक दूसरे लोग हमारी गलतियों पर उंगली नहीं उठाते, तब तक हम उन तृटियों को जान नहीं पायेंगे। पहले हमारी कमियों व गलतियों को जान लेंगे तो उनको दूर करके अपने चरित्र व स्वभाव को सुधार सकते हैं।

5. जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर ने प्रेम का महत्त्व बताते हुए अहंकार त्यागने का संदेश दिया है।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि जीवन में गुरु का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है। जब तक मनुष्य में अहंकार बना रहता है तब तक वह गुरु की महत्ता जान नहीं पाता। गुरु को प्राप्त नहीं कर सकता। एक बार गुरु की कृपा पा सकता है, तो अहंकार अपने आप दूर हो जाता है। अहंकार दूर होने पर ही प्रेम की महानता मालूम होती है। प्रेम का रास्ता अत्यंत संकीर्ण है, जिसमें से अहंकार और प्रेम दोनों एक साथ नहीं जा सकते। जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवारों को रखना असंभव है, उसी प्रकार भक्त में अहंकार और ईश्वर-प्रेम दोनों नहीं रह सकते। दोनों में से किसी एक को छोड़ना पड़ता है। अतः आध्यात्मिक उन्नति में बाधा डालनेवाले अहंकार को त्यागकर भक्ति को स्वीकार करना चाहिए। यह गुरु के उपदेश से ही संपन्न हो सकता है।

विशेषता :- संत कवि गुरु को अत्यंत महत्त्व देते थे। संत कबीर तो सद्गुरु को हमेशा भगवान के समकक्ष ठहराते हैं। अहंकार का त्याग और ईश्वर-प्रेम गुरु के उपदेश से ही संभव हो सकते हैं।

6. केसरि कहा बिगारिया, जो मूँडै सौ बार।
मन को काहे न मूँडिये, जामें बिषै विकार।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर ने बाह्याडंबरों को दूर करने का संदेश दिया है।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर पूछते हैं कि मनुष्य के बालों ने कौन सी बाधा उपस्थित की है? उसने क्या बिगाड़ा है जो कि लोग बार-बार उसका मुण्डन कराते हैं, सफाई कराते हैं। लेकिन जहाँ मुण्डन की आवश्यकता है, वहाँ तो लोग ध्यान ही नहीं देते अर्थात् हृदय के अंदर जो विषय विकार तथा विषय वासनाएँ हैं उन्हें क्यों दूर नहीं करते? आवश्यकता तो इस बात की है कि मनुष्य अपने मन में बसे विषय विकारों को दूर करें तथा उसे स्वच्छ एवं पवित्र बनायें।

विशेषता :- इसमें कबीर बाह्याडंबरों का खण्डन करके मन की निर्मल भक्ति पर जोर देते हैं। मानसिक पवित्रता सच्चे भक्त के लिए बहुत जरूरी है।

7. जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहर की, साँस लेत बिनु प्रान।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर मनुष्य के लिए प्रेम भाव की आवश्यकता पर बल देते हैं।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर बताते हैं कि जो मनुष्य प्रेम करना नहीं जानता, वह मुर्दे के समान है। प्रेम के अभाव में जीवन शुष्क और नीरस बन जाता है। प्रेम ही मनुष्य समाज का आधार है। जो लोग दूसरों से हमेशा घृणा करते हैं, उन्हें मनुष्य कहने में संकोच करना चाहिए। प्रेमहीन मनुष्य लोहार की उस धौंकनी के समान है, जो प्राणों के बिना ही साँस लेती रहती है।

विशेषता :- प्रेमहीन मनुष्य खाते-पीते, चलते-फिरते रहने पर भी निर्जीव और निष्प्राण के समान है। मनुष्य जन्म को प्राप्त करके हर किसी को दूसरों से प्रेम करना सीख लेना चाहिए, न कि नफरत।

8. कबिरा संगत साधु की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की आठों पहर उपाधि।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर सत्संग का महत्त्व और कुसंग के दुष्परिणाम बताते हैं।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि सत्संग सभी प्रकार की बुराइयों को हरण करनेवाला है। सज्जन सांगत्य से अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं, जो सदाचरण के लिए मनुष्य को प्रेरित करते हैं। दुर्जनों के सांगत्य का फल बड़ा खतरनाक होता है। उससे मनुष्य कुविचार करता रहता है और दुराचारी बनकर चौबीसों घण्टे कोई न कोई उत्पात मचाता रहता है। लोगों का उपकार करता है। समाज की शांति को नष्ट करते फिरता है।

विशेषता :- सज्जन का सांगत्य सदा वांछनीय है और दुर्जन का सांगत्य त्याज्य है।

9. कबिरा सतगुरु ना मिला, रही अधूरी सीख।
स्वांग जती का पहिरि करि घरि घरि माँगै भीख।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर ज्ञान-प्राप्ति में सद्गुरु की भूमिका के बारे में बताते हैं।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि सद्गुरु ही ज्ञान प्रदाता होता है। गुरु से प्राप्त ज्ञान ही ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है। किसी आदमी को सद्गुरु नहीं मिला, तो उसका ज्ञान अधूरा ही रह जाता है, भले ही कोई यती का स्वांग धारण कर घर-घर भिक्षा माँगा करें। दुनिया में स्वार्थी पुरुषों, ढ़ोंगी भक्तों तथा मिथ्या ज्ञानियों की कमी नहीं।

विशेषता :- सद्गुरु को पहचानने तथा उनका उपदेश ग्रहण करके ज्ञानार्जन करने में ही किसी भक्त या साधक की सफलता है। गुरु के निर्देश से ही वह ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है।

10. संग न छाँडै संतई जौ कोटिक मिलहिं असंत।
मल्य भुअंगम बेधिऔ सीतलता न तजंत।।

जवाब-

सामान्य संदर्भ :- प्रस्तुत दोहा कबीर दास के 'साखी' से लिया गया है। कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े साधक और समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान में धार्मिक समन्वय लाने का बड़ा प्रयास किया। कबीर अनपढ़ थे। किन्तु सत्संग और देशाटन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर उनके मुँह से कविता निकली। वे निर्गुण तथा निराकार भगवान के उपासक थे। उनकी वाणी 'बीजक' नामक ग्रंथ में संकलित है, जिसके तीन भाग हैं - साखी, सबद और रमैनी। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है।

विशेष संदर्भ :- उपर्युक्त दोहे में संत कबीर सज्जन के दृढ़चित्त पर प्रकाश डालते हैं।

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में संत कबीर कहते हैं कि जो आदमी सचमुच सज्जन है, वह करोड़ दुर्जनों के बीच में रहकर भी अपनी सज्जनता नहीं छोड़ता। कुसंग उस पर कोई असर नहीं डाल सकता। चंदन के पेड़ से विषैले साँप लिपटे रहने पर भी, वह अपनी शीतलता व सुगंध नहीं छोड़ता। वह हमेशा अपनी सुगंध को फैलाता रहता है। ठीक उसी प्रकार सज्जन कभी भी बुराई को नहीं अपनाता।

विशेषता :- सज्जन पक्के मन का होता है। वह दूसरों पर अपना प्रभाव डालता है किन्तु दुर्जनों से कभी प्रभावित नहीं होता।

1.1.7 बोध प्रश्न :-

1. संत कबीर का साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. कबीर की समाज-सुधार संबंधी भावनाओं को स्पष्ट कीजिए।
3. कबीर की भाषा पर प्रकाश डालिए।
4. पठित दोहों के आधार पर कबीर की भक्ति पद्धति, दर्शन तथा लोकहित की भावना का उल्लेख कीजिए।

1.1.8 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. कबीर	–	आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
2. संतों में धार्मिक विश्वास	–	धर्मपाल मैत्री
3. कबीर कवि और युग-एक पुनर्मूल्यांकन	–	के. श्रीलता
4. कबीर काव्य में कला-बोध	–	सुमीता कुकरेती
5. कबीर और जायसी: एक मूल्यांकन	–	रामगोपाल 'दिनेश' शर्मा

Dr. Venna Vallabha Rao,
Reader & Head,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College (Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 1.2

सूरदास - बालवर्णन

इकाई की रूपरेखा :-

1.2.1 उद्देश्य
1.2.2 प्रस्तावना
1.2.3 सूरदास की जीवनी
1.2.3.1 रचनाएँ
1.2.3.2 भक्ति भावना
1.2.3.3 भाषा
1.2.4 मूलपाठ
1.2.5 कठिन शब्दों के अर्थ
1.2.6 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
1.2.7 बोध प्रश्न
1.2.8 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

1.2.1 उद्देश्य :-

हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य समझे जानेवाले सूरदास की जीवनी तथा साहित्य का परिचय दिलाना इस इकाई का उद्देश्य है। सूरदास भक्तिकाल के प्रमुख कृष्णभक्त कवि थे। सहज मधुर कृष्णभक्ति सूरदास के स्वर में अत्यंत मधुर होकर तरंगित हुई। सूरदास की रचनाएँ, उनकी भक्तिपद्धति तथा भाषा संबंधी ज्ञान देना इस इकाई का उद्देश्य रहा। पाठ्यपुस्तक में 'बाल वर्णन' के अंतर्गत दिये गये दो पदों की व्याख्या के द्वारा वात्सल्य के कवि सूरदास के बाल-कृष्ण की लीलाओं की मधुरिमा चखाने का प्रयास किया गया है। साथ ही बोध प्रश्न तथा उपयुक्त-ग्रंथ सूची द्वारा छात्रों के लिए उपयोगी विषय प्रस्तुत किया गया है।

1.2.2 प्रस्तावना :-

वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख कृष्णभक्त कवि सूरदास हिन्दी साहितय के ही नहीं विश्व साहित्य में ही अपने वात्सल्य वर्णन के लिए अद्वितीय हैं। पुष्टिमार्गीय भक्ति में दीक्षित होकर सूर ने बालकृष्ण की लीलाओं का अनोखे ढ़ंग से गायन किया है। सूरदास का शृंगार वर्णन भी अत्यंत मनोरम और मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। साहित्य और संगीत का मेल सूर की काव्य-कला की एक और विशेषता है। वे कवि होने के साथ-साथ बहुत बड़े गायक भी थे। कृष्ण के अनन्य भक्त थे। सख्य भाव से श्रीकृष्ण की उपासना करनेवाले उत्तम साधक थे। अष्टछाप कवियों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। ब्रज भाषा को साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान दिलानेवाले ब्रज-भूमि तथा ब्रज-भाषा-प्रेमी थे। वात्सल्य के सम्राट, बालमनोविज्ञान के पारखी और बाल्य-प्रकृति के कुशल चितेरे सूरदास का 'बाल-कृष्ण-वर्णन' अत्यंत मनोहर है।

1.2.3 सूरदास की जीवनी :-

सूरदास हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्तिशाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। आचार्य राचन्द्र शुक्ल के अनुसार सूरदास का जन्मकाल सं.1540 के आसपास तथा मृत्युकाल सं.1620 के आसपास है। सूरदास के जन्मस्थान के विषय में भी कई विवाद हैं। कुछ विद्वान इनका जन्मस्थान 'रुनकता' मानते हैं तो कुछ 'सीही'। महाप्रभु वल्लभाचार्य से भेंट होने से पहले वे गऊघाट पर साधु के रूप में रहते हुए कृष्ण के विनय पद गाया करते थे। जब वल्लभाचार्य ने सूर की सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता देखी, तब उन्हें गोवर्धन पर्वत पर स्थित श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तनसेवा सौंपी। तब से वे बराबर भगवान कृष्ण की कीर्तनसेवा में लगे रहे। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभाचार्य की मृत्यु के बाद उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने आठ सर्वोत्तम कृष्णभक्त कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। अष्टछाप के आठ कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। सूरदास के जीवन वृत्त के संबंध में कोई प्रामाणिक वृत्त अप्राप्य है। इसलिए सूरदास के समय के आसपास जहाँ कहीं 'सूरदास' नाम मिला है, उसीके वृत्त को प्रसिद्ध सूरदास के साथ जोड़ने का प्रयास हुआ। सूरदास अंधे थे। कुछ लोग इन्हें जन्मांध मानते हैं।

1.2.3.1 रचनाएँ :- सूरदास की प्रसिद्ध एवं प्रामाणिक रचनाएँ तीन हैं- सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य लहरी। वल्लभाचार्य की आज्ञा पाकर सूरदास ने श्री मद्भागवत की कथा को पदों के रूप में गाया। इनके सूरसागर में वास्तव में श्रीमद्भागवत् पुराण के दशम स्कंध की कथा ही ली गयी है। 'सूरसागर' में कृष्ण जन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गायी गयी है। सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है, जिसमें गोपियों की वचन-वक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसे सुंदर उपालंभ से युक्त काव्य और कहीं नहीं मिलता। 'सूरसारावली' तो 'सूरसागर' की ही अनुक्रमणिका है।

सूरदास की काव्य-साधना के तीन केन्द्र बिन्दु हैं- विनय, वात्सल्य और शृंगार। वात्सल्य वर्णन सूर की निजता का द्योतक बन गया है। इसे रस की स्वतंत्र कोटि तक पहुँचाने का काम हिन्दी में सूर ही पहलीबार कर पाये। इसका श्रेय सूर की प्रतिभा के साथ-साथ पुष्टिमार्ग की भक्ति पद्धति और सेवा विधि को भी है। सूर के गुरु वल्लभाचार्य ने शृंगार लीला की अपेक्षा कृष्ण की बाललीला को ही महत्त्व दिया। फिर भी सूरदास का शृंगार वर्णन भी अत्यंत मनोरम और अद्वितीय बन पड़ा है। हिन्दी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।

1.2.3.2 भक्ति भावना :- सूर की भक्तिभावना सर्वप्रथम उनके विनयपदों में प्रकट हुई है। वल्लभाचार्य के संपर्क में आते ही सूर पुष्टिमार्गीय भक्ति की ओर उन्मुख हुए। पुष्टिमार्ग में सेवा का बड़ा महत्त्व माना गया है। इसमें दो प्रकार की सेवाएँ बतायी गयी हैं- नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा। इस सेवा मार्ग से भक्त भगवान का अनुग्रह प्राप्त करके अपने अभीष्ट फल को प्राप्त कर लेता है। इस भक्तिमार्ग में अपना सर्वस्व भगवान कृष्ण का स्वरूप माना जाता है। अपना सर्वस्व भगवान कृष्ण के चरणों में अर्पित किया जाता है।

सूरदास ने सखा भाव की भक्ति को अपनाते हुए भी यशोदा-नंद के वात्सल्य भाव, राधा एवं गोपियों के माधुर्यभाव एवं दांपत्य प्रेम की सुंदर अभिव्यंजना प्रस्तुत की है। सूरदास प्रेम एवं अनुकम्पा के साथ-साथ मधुरा-रति की अभिव्यक्ति में अत्यधिक तल्लीन एवं तन्मय दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए सूर की भक्ति पद्धति में पुष्टिमार्गीय प्रेम लक्षणा भक्ति का ही प्राधान्य है।

1.2.3.3 भाषा :- सूरदास की भाषा ब्रज है। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप प्रदान करने का श्रेय सूरदास को है। उनकी भाषा सरल, सुबोध और स्पष्ट है। निस्संदेह, सूर ब्रजभाषा के कवि सम्राट हैं। सूरदास के सभी पद संगीत शास्त्रोक्त विविध राग-रागिनियों से सुसज्जित हैं। सूर ने अपने नैसर्गिक संगीत के द्वारा ब्रजभूमि और ब्रज भाषा को 'स्वर्गादपि गरीयसी' के पद पर प्रतिष्ठित किया है।

1.2.4 कविता का मूल पाठ :-

बालवर्णन

1. शोभित कर नवनीत लिए।
घुटरुनि चलत रेनु-तन-मण्डित, मुख दधि लेप किए।।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त-मधुप-गन, मादक मधुहिं पिए।।
कठुला-कंठ वज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए।।

2. किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिम्ब पकरिबैंधावत।।
कबहुँ निखरि हरि आप छाँह कौं, कर सौं पुकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दंतियाँ, पुन-पुन तिहिं अबगाहत।।
कनकभूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति।
प्रतिकर प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावती।
अँचरा तर लै ढ़ाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावती।।

1.2.5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

1.

शोभित	–	शोभायमान
कर	–	हाथ
नवनीत	–	मक्खन
घुटरुनि	–	घुटनों के बल पर
रेनु	–	धूलि
तन मंडित	–	शरीर पर लगाना
दधि	–	दही
चारु कपोल	–	सुंदर गाल

	लोल लोचन	–	चंचल नेत्र
	गोरोचन	–	गाय के पित्तकोश से बना एक पीला पदार्थ
	लट	–	बालों का समूह
	मनु	–	मानों
	मत्त	–	मद से भरा
	मधुप गन	–	भ्रमरों का समूह
	मादक	–	नशे से युक्त
	मधुहिं	–	मकरंद को
	कठुला	–	तावीज़
	वज्र	–	कठोर
	केहरि-नख	–	बघनख
	राजत	–	शोभायमान
	रुचिर हिए	–	सुंदर हृदय पर
	एको पल	–	एक क्षण
	इहिं	–	यह
	का	–	क्यों
2.	किलकत	–	जोर से हँसना
	कान्ह	–	कृष्ण
	घुटरुनि	–	घुटनों के बल पर
	आवत	–	आता है
	मनिमय	–	मणिमय
	कनक	–	सुवर्ण
	बिम्ब	–	प्रतिबिम्ब
	पकरिबैं	–	पकड़ने के लिए
	धावत	–	दौडता
	कबहुँ	–	कभी
	निरखि	–	देखकर
	आपु छाँह को	–	अपनी परछाया को
	कर सौं	–	हाथ से
	पकरन चाहत	–	पकड़ना चाहता है
	द्वै दंतियाँ	–	दो दाँत
	पुनि-पुनि	–	बार-बार
	कनक भूमि	–	स्वर्णिम भूमि

कर-पग-छाया	–	हाथ और पैरों की छाया
कमल-बैठकी	–	पद्मासन
साजति	–	सजाती है
जसोदा	–	यशोदा
अँचरा	–	आँचल
तर	–	तले
ढाँकि	–	ढाँक, ओट लगाकर
पियावती	–	पिलाती है।

1.2.6 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. शोभित कर नवनीत लिए ..... का सत कल्प जिए।।

जवाब-

संदर्भ :- प्रस्तुत पद सूरदास के 'बाल-वर्णन' शीर्षक से उद्धृत है। यह सूरदास की प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' का अत्यंत लोकप्रिय पद है। सूरदास भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपना जीवन श्रीकृष्ण के भजन-कीर्तन में लगाया। वे वल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय भक्ति में दीक्षित हुए। प्रसिद्ध कृष्णभक्त 'अष्टछाप' कवियों में सूरदास अग्रगण्य हैं। इन्होंने श्री मद्भागवत के दशम स्कंध की कथा के आधार पर श्रीकृष्ण की लीलाओं का अद्भुत वर्णन किया। सूर की भक्ति सख्यभाव की है। कृष्ण की बाल लीलाओं के साथ-साथ शृंगार लीलाओं का भी सूर ने अनुपम चित्रण किया। सूर के काव्य में साहित्य और संगीत का अनोखा मेल पाया जाता है। सूर की भाषा ब्रज है।

उपर्युक्त पद में बालकृष्ण के अद्भुत रूप सौंदर्य का मनोहर चित्रण सूरदास ने किया है।

व्याख्या :- बालकृष्ण माखन प्रेमी हैं। अपने हाथ में मक्खन लिए वह अत्यंत शोभित हो रहा है। अभी वह इतना छोटा है कि वह घुटनों के बल पर रेंग रहा है, इसलिए उसका शरीर धूलि से भरा पड़ा है। धूलि से भरे रहने पर भी वह अत्यंत सुंदर प्रतीत हो रहा है। उसके मुख पर मक्खन खाने के निशान हैं, ओंठों पर दही लगा हुआ है। उसके गाल सुंदर तथा नेत्र चंचल हैं। उसके माथे पर गोरोचन का तिलक लगा दिया गया है। उसके सिर से लटकनेवाली लटें इतनी काली और घनी हैं कि वे ऐसे काले भ्रमरों के समूह का आभास उत्पन्न कर रही हैं मानों वे खूब मकरंद पीकर एक जगह बैठ गये हों। बालकृष्ण के गले में तावीज शोभा दे रहा है और सुंदर हृदय पर बघनख का आभूषण विराजमान है। इस प्रकार शोभित होनेवाले सुंदर बालकृष्ण के रूप सौंदर्य को एकक्षण के लिए भी देखा जाये तो अपूर्व सुख और हर्ष का अनुभव होता है, जन्म सार्थक हो जाता है। ऐसे सुख के अभाव में सात कल्पों तक जीवित रहना भी निरर्थक और बेकार है।

विशेषता :- उपर्युक्त पद में सूरदास का कथन है कि बालकृष्ण का रूप अत्यंत सुंदर और आकर्षक है। उसकी शोभा अत्यंत सुखदायक है। मनुष्य-जन्म को धन्यता प्रदान करनेवाली है। ऐसे बालकृष्ण के रूप सौंदर्य को केवल क्षण भर देखने का सुख पर्याप्त है, लम्बा जीवन जीकर भी कोई उसके दर्शन से वंचित रहता है तो अभागा ही रह जाता है।

2. किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ..... सूर के प्रभु कौं दूध पियावति।।

जवाब-

संदर्भ :- प्रस्तुत पद सूरदास के 'बाल-वर्णन' शीर्षक से उद्धृत है। यह सूरदास की प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' का अत्यंत लोकप्रिय पद है। सूरदास भक्तिकाल की सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपना जीवन श्रीकृष्ण के भजन-कीर्तन में लगाया। वे वल्लभाचार्य की पुष्टिमार्गीय भक्ति में दीक्षित हुए। प्रसिद्ध कृष्णभक्त 'अष्टछाप' कवियों में सूरदास अग्रगण्य हैं। इन्होंने श्री मद्भागवत के दशम स्कंध की कथा के आधार पर श्रीकृष्ण की लीलाओं का अद्भुत वर्णन किया। सूर की भक्ति सख्यभाव की है। कृष्ण की बाल लीलाओं के साथ-साथ शृंगार लीलाओं का भी सूर ने अनुपम चित्रण किया। सूर के काव्य में साहित्य और संगीत का अनोखा मेल पाया जाता है। सूर की भाषा ब्रज है।

व्याख्या :- बालकृष्ण किलकारी मारते हुए नंदबाबा के मणिमय आँगन में घुटनों के बल पर घिसकते हुए आ रहा है। तब मणि में उसका प्रतिबिंब पड़ रहा है। वह उस प्रतिबिंब को दूसरा बालक समझकर उसे पकड़ने के लिए, उसके साथ खेलने के लिए दौड़ पड़ रहा है। कभी बालकृष्ण अपनी छाया को देखकर उसे अपने हाथ से पकड़ना चाहता है, पर उसे पकड़ नहीं पाता। तब वह किलकारी मारकर हँस पड़ता है। उस समय उसके दोनों दाँत चमक उठते हैं। वह उस प्रतिबिंब को बार-बार हाथ फैलाकर पकड़ना चाहता है, किन्तु पकड़ नहीं पाता। आँगन की सुवर्णभूमि पर उसके हाथों और पैरों की जो छाया पड़ रही है, वह ऐसी है कि मानों वसुंधरा पृथ्वी उसके एक-एक हाथ और पैर के नीचे प्रतिबिंब के रूप में कमलों का आसन बिछाती जा रही हो। कृष्ण की इस बाल-लीला का यह सुख पाकर यशोदा नंद को बुलाने लगती है कि आकर वह भी उस क्रीड़ा का सुख प्राप्त करें। फिर माता यशोदा कृष्ण को उठाकर गोद में लेती है और अपने आँचल के नीचे ढ़ककर दूध पिलाने लगती है।

विशेषता :- बालकृष्ण की क्रीड़ा को देखकर अमित आनंद पानेवाली यशोदा का वर्णन उपर्युक्त पद में सूरदास ने उत्सुकतापूर्ण ढ़ंग से किया है। बालकों की चेष्टाओं तथा उनकी भावनाओं का चित्रण करने में सूर बड़े ही चतुर हैं। वे बाल-मनोविज्ञान के भी बड़े ज्ञाता हैं। माँ-बाप अपने बच्चों की हर चेष्टा को परखकर कितना सुख और हर्ष का अनुभव करते हैं, यही नंद और यशोदा के माध्यम से दिखाया गया है। सचमुच माता यशोदा का सुख अलौकिक और अनुपम प्रतीत होता है।

1.2.7 बोध प्रश्न :-

1. सूरदास की जीवनी तथा उनकी भक्ति पद्धति का परिचय दीजिए।
2. सूरदास की रचनाओं तथा भाषा पर प्रकाश डालिए।
3. माखन-प्रेमी बालकृष्ण के सौंदर्य का वर्णन सूरदास ने किस प्रकार किया?
4. अपने प्रतिबिंब को पकड़ने की कोशिश करनेवाले बालकृष्ण के क्रीड़ा-विनोद का वर्णन कीजिए।
5. 'सूरदास हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य हैं'- इस उक्ति का समर्थन अपने शब्दों में कीजिए।

1.2.8 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. सूरदास – डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
2. सूरदास और उनका भ्रमरगीत – डॉ. श्रीनिवास शर्मा
3. सूर-साहित्य – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. सूर और उनका साहित्य – डॉ. हरिवंशलाल
5. 'सूरसागर' और कृष्ण-गाथा – चेरियन जार्ज

Dr. Venna Vallabha Rao,
Reader & Head,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College (Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 2.1

तुलसीदास - दोहे

इकाई की रूपरेखा :-

2.1.1 उद्देश्य
2.1.2 प्रस्तावना
2.1.3 तुलसीदास - एक परिचय
2.1.4 कविता का मूल पाठ
2.1.5 कठिन शब्दों के अर्थ
2.1.6 दोहों की संदर्भ सहित व्याख्याएँ
2.1.7 काव्यगत विशेषताएँ
2.1.8 बोध प्रश्न
2.1.9 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

2.1.1 उद्देश्य :-

इस इकाई में आप महाकवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित दोहावली से उद्धृत दोहों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप तुलसीदास के जीवन और उनकी कृतियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इन दोहों के माध्यम से नेता और सत्पुरुषों के लक्षण एवं स्वभाव के बारे में जान सकेंगे। इनके दोहों में ईर्ष्या स्वभाववाले का चरित्र और मन की पवित्रता के बारे में समझ सकेंगे। युगीन परिवेश और राष्ट्रीय तथा धार्मिक चेतना में उनके महत्त्वपूर्ण स्थान को समझ सकेंगे।

2.1.2 प्रस्तावना :-

भारतीय जन समाज में महाकवि तुलसीदास का आविर्भाव उस समय हुआ जब भारत का राजतंत्र दृढ़, समाज विमूढ़ और धर्म अनेक आंदोलनों से आंदोलित था। संत-साधकों ने राम-रहीम की एकता का नारा जितने जोर जोर से लगाया था उतने प्रभावशाली ढ़ंग से वे उसे एक कर न सके। अतः आवश्यकता थी एक ऐसे प्रतिभा की जो इन सब धार्मिक संप्रदायों से सारग्रहण कर उनका इस रूप में समन्वय करे कि किसी भी मतावलम्बी को उसमें अपने मंतव्यों की असमानता दिखाई न दे और उससे विकृतियाँ भी दूर हो जाएँ। तुलसीदास ने यही कार्य सफलतापूर्वक किया था। वे सभी धार्मिक धारणाओं का समन्वय करने में समर्थ सिद्ध हुए।

2.1.3 तुलसीदास - एक परिचय :-

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास सगुणभक्ति-धारा की रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। वे बड़े समन्वयवादी, प्रतिभाशाली और अनन्य रामभक्त थे। उनका जन्म सन् 1540 ई. में बांदा जिले के राजापुर नामक गाँव में हुआ।

तुलसीदास के माता-पिता के नाम हुलसी और आत्माराम दुबे थे। मूला नक्षत्र में जन्म लेने के कारण माता पिता ने उन्हें त्याग दिया। बाद में मुनिया नामक एक दासी ने उनका भार स्वीकार किया। लगभग नौ वर्ष की उम्र में वह भी चल बसी। तब बाबा नरहरिदास ने बालक तुलसी को आश्रय देकर उनका पालन-पोषण किया। शेष सनातन के यहाँ तुलसी ने वेद-वेदान्त, शास्त्र-पुराणों का अध्ययन किया। बाद में उनका विवाह दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली के साथ हुआ। पत्नी पर तुलसी का अधिक प्रेम था। एक दिन वे अपनी पत्नी की व्यंग्योक्ति से विरक्त होकर घर से चले गये। बाद में उन्होंने रामचरित मानस की रचना की। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के आदर्श चरित्र के द्वारा दुःखी संसार को मार्ग दिखाने का स्तुत्य प्रयत्न तुलसी ने किया। विनय पत्रिका, दोहावली, कृष्ण गीतावली, कवितावली, छप्पै रामायण, बरवै रामायण आदि उनकी काव्य कृतियाँ हैं। ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। ज्ञान और भक्तिमार्ग दोनों में समन्वय का प्रयत्न भी तुलसी ने किया है, शैव-वैष्णवों, शैव-शाक्तमत के बीच, राजा-प्रजा के बीच समन्वय स्थापित करके उन्होंने सराहनीय काम किया। इसलिए तुलसीदास जी लोकनायक कहे गये। आपका निधन सन् 1628 ई. में काशी में हुआ था।

2.1.4 कविता का मूल पाठ :-

1. सोई ज्ञानी सोई गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि।
   तुलसी जाके चित्त भई, राग द्वेष की हानि।।
2. पर सुख सम्पत्ति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
   तुलसी तिनके भाग तें, हम वहँ पूछत भागि।।
3. तुलसी संत सुअम्ब-तरु, फूलि-फलहिं पर हेत।
   इतने यह पाहन हनत, उतते वे फल देत।।
4. मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान को एक।
   पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।
5. गोधन गज-धन बाजि-धन और रतन-धन खान।
   जब आवत संतोष-धन, सब धन धूरि समान।।
6. जड़-चेतन, गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
   संत-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।।
7. संत कंचन काँचे गिनत, सत्रु मित्र सम होइ।
   तुलसी या संसार में कहत संतजन सोइ।।
8. सूर समर करनी करहिं, कहि न जानावहिं आप।
   विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप।।
9. चरन चोंच लोचर रंगौ, चलौ मराली चाल।
   छीर-नीर विवरन समय, बक उघरत नेहि काल।।
10. तुलसी काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
    पाप-पुण्य दोउ बीज हैं, बुवै सौ लुनै निदान।।

2.1.5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

1. दाता – दानी
   जाके – जिसके
   चित्त – हृदय
2. पर सुख – दूसरे का सुख
   जरहिं – जलना
   जड़ – मूर्ख
   आगि – अग्नि
   भाग – भाग्य
3. सुअम्ब – मीठा आम
   तरु – वृक्ष
   परहित – दूसरों का हित
   इतते – इधर से
   पाहन – पत्थर
   हनत – मारना
   उतते – उधर से
4. मुखिया – नेता, नायक
   मुख सो – मुँह की भांति
   पोसै – पोषण करना
   विवेक – ज्ञान
5. गो-धन – गाय की संपत्ति
   गज-धन – हाथी की संपत्ति
   खान – खजाना
   आवत – आते ही
   धूरि – धूल के समान
6. जड़ – अप्राणी
   चेतन – प्राणी
   मय – भरा
   करतार – सृष्टिकार्ता
   पय – दूध
   गहहिं – स्वीकार करना

परिहरि – छोड़कर
वारि – जल, पानी
विकार – दोष

7. कंचन – सुवर्ण
कांचै – शीशा
गिनत – गिनता है
संत जन – सज्जन

8. समर – युद्ध
करनी – कार्य
रिपु – शत्रु
विद्यमान – उपस्थित
रन – युद्ध
प्रलाप – व्यर्थ बातें

9. मराली – हंस की
चाल – गमन
बक – बगुला
छीर-नीर – दूध-पानी
उघरत – प्रकट होना
तेहि – उसी

10. काया – शरीर
मनसा – मन
बुवै – बोता है
सो – वह
लुनै – फसल काट लेता है
निदान – अंत में

2.1.6 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. सोई ज्ञानी .....रागद्वेष की हानि।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी मन को राग और द्वेषों से रहित बनाकर समभाव से जीवन बिताने का उपदेश देते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी हमें बताते हैं कि इस संसार में जिसके हृदय में किसी पर प्रेम और किसी पर द्वेष आदि भावनाओं से शून्य होते हैं और सब पर जो समभाव दिखाता है, वही व्यक्ति धन्य होता है। उसीको हमें ध्यानस्थ, दाता, ज्ञानी, गुणवान समझना है। वास्तव में राग-द्वेष से शून्य व्यक्ति ही योग्य होता है और उसका आचरण पवित्र व निर्मल रहता है।

2. पर सुख संपत्ति .....कहँ पूछत भागि।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- इस दोहे में तुलसीदास जी दूसरों की संपत्ति को देखकर जलनेवालों की निंदा करते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी बताते हैं कि दूसरों की संपदा से जो आदमी जलते हैं, उनके भाग्य से भलाई दूर हो जाती है। भाव यह है कि ईर्ष्या से जलनेवाले सुखी नहीं हो सकते। इसीको तुलसीदास जी इसमें स्पष्ट करते हैं।

3. तुलसी संत सुअम्ब तरु.....उनते वे फल देत।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी संतों के लक्षण बताते हैं।

व्याख्या :- महात्मा तुलसीदास जी कहते हैं कि आम का पेड़ दूसरों के लिए ही फूलता और फलता है। अगर इधर से उस पर पत्थर फेंकने पर वह उसके बदले में मीठा फल देता है। संत लोग भी आम के पेड़ के समान स्वयं कष्ट सहते हुए दूसरों की भलाई करते रहते हैं अर्थात् बुराई के बदले में भलाई करना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

4. मुखिया मुख सों चाहिए.....तुलसी सहित विवेक।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी नेता के लक्षण बताते हैं।

व्याख्या :- महात्मा तुलसीदास जी हमें बताते हैं कि मुखिया को मुख के समान होना चाहिए। मखिया को सब के साथ एक ही प्रकार का आचरण करना चाहिए। इसके लिए वे एक उदाहरण भी देते हैं- हम अपने मुख से खाते और पीते हैं जिससे शरीर के सारे अंग शक्ति पाते हैं। उसी प्रकार मुखिया या नेता को अपने सेवकों पर एक ही प्रकार का ध्यान देकर सबकी रक्षा विवेक के साथ करनी चाहिए। इससे सब परिजन संतुष्ट होते हैं।

5. गोधन, गज-धन.....सब धन धूरि समान।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी संतोषरूपी धन को ही बड़ी संपत्ति मानते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में वास्तविक सुख एवं आनंद तभी प्राप्त है जब उसके पास संतोषरूपी धन है। व्यक्ति के पास कितनी ही गायें, हाथी, घोड़े, सोना-चाँदी, रत्न क्यों न हो- सच्ची खुशी और संतोष के सामने सब धूलि के बराबर हैं। अर्थात् संतोषरूपी धन ही शाश्वत है, न कि धन-दौलत और हीरे जवाहरात।

6. जड़ चेतन गुण दोष मय .....परिहरि वारि विकार।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी संतों के लक्षण एवं स्वभाव बताते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवान ने दुनिया को जड़-चेतन पदार्थों से, अच्छाई और बुराई से बनाया है। लेकिन संत हंस के समान होते हैं। जिस प्रकार हंस अपने सामने स्थित दूध और पानी के मिश्रण से दूध को स्वीकार करके पानी को छोड़ देता है, उसी प्रकार संत लोग भगवान से निर्मित इस विश्व में से अच्छाई को स्वीकार करके बुराई को छोड़ देते हैं।

7. संत कंचन कांचै.....कहत संत जन सोई।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी सत्पुरुषों के लक्षणों पर प्रकाश डालते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी कहते हैं कि जो आदमी शत्रु और मित्र को एक ही प्रकार देखता है और जो व्यक्ति स्वर्ण और काँच की एक ही प्रकार से गणना करता है- वही पुरुष इस संसार में सत्पुरुष कहलायेगा। आशय यह है कि सब पर जो सम-दृष्टि रखता है, वह व्यक्ति सज्जन होता है। वही महात्मा कहलाता है।

8. सूर समर करनी.....कायर करहिं प्रलाप।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी कथन को छोड़कर आचरण पर ध्यान देने का उपदेश देते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी कहते हैं कि संसार में सच्चे वीर रण-क्षेत्र में शत्रुओं से लड़ते हैं और अपनी वीरता दिखाते हैं। वे अपनी वीरता के संबंध में प्रलाप नहीं करते। केवल कायर ही शत्रु को अपने सामने देखकर लड़ते नहीं। इसके अतिरिक्त अपनी वीरता की प्रशंसा करने में डूब जाते हैं। ऐसे लोग वीर नहीं होते, केवल वाग्वीर होते हैं, उनसे कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिए हमें कहना छोड़कर करने पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

9. चरन चोंच लोचन.....तेहि काल।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी संतों के लक्षण एवं स्वभाव बताते हैं।

व्याख्या :- तुलसीदास जी कहते हैं कि हंस और बगुले के पाँव, चोंच, आँख और रंग में समानता होने के बावजूद हंस के चाल चलने से बगुला हंस नहीं बन जाता। पानी और दूध को अलग करते समय बगुले को पहचाना जा सकता है। बगुला क्षीर और नीर को अलग नहीं कर सकता। अर्थात् दुर्जन और सज्जन एक जैसे ही होते हैं परन्तु व्यवहार में दोनों अलग होते हैं। इसीलिए व्यवहार द्वारा दुर्जन का पता लगता है।

10. तुलसी काया .....बुवै सो लुनै निदान।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह गोस्वामी तुलसीदास जी का दोहा है। तुलसीदास जी रामभक्ति शाखा के महाकवि और अनन्य रामभक्त थे। उनका रामचरित मानस हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। तुलसी की 'दोहावली' में उनके दोहे संकलित हुए हैं। उनके दोहों में नीति, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में तुलसीदास जी ने मन की पवित्रता की आवश्यकता बतायी है।

व्याख्या :- तुलसीदास जी कहते हैं कि हमारा शरीर खेत के समान है और हमारा मन ही किसान है। पाप और पुण्य दोनों बीज हैं, जो पाप को बोता है- वह पाप-फल ही पाता है। जो व्यक्ति पुण्य को बोता है, वह अंत में पुण्य का फल प्राप्त कर लेता है। अपने आचरण के अनुसार हमें फल की प्राप्ति होती है। अपने किए का फल हमें भोगना ही पड़ता है।

2.1.7 काव्यगत विशेषताएँ :-

1. तुलसीदास ने मन को राग-द्वेष रहित बनाकर समभाव से जीवन बिताने का संदेश दिया है।
2. अपने दोहे में तुलसी ने दूसरों की संपत्ति को देखकर जलनेवालों की निंदा भी की है।
3. तुलसीदास ने भाषण छोड़कर आचरण पर ध्यान देने का उपदेश संप्रेषित किया है।
4. तुलसीदास ने संतों के लक्षण एवं स्वभाव के बारे में सोदाहरण बताया है।
5. तुलसीदास ने यद्यपि अपनी कृति को 'स्वांतःसुखाय' घोषित किया तथापि वह लोक हित करने में सफल है।
6. तुलसीदास ने अवधी भाषा के साथ-साथ अपने समय में प्रचलित समस्त काव्यशैलियों को अपनाया।
7. तुलसीदास ने अपने काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

2.1.8 बोध प्रश्न :-

1. तुलसीदास के जीवन और कृतियों पर प्रकाश डालिए।
2. तुलसीदास के कृतियों की काव्यगत विशेषताओं के बारे में लिखिए।
3. दोहों का भावार्थ लिखते हुए उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. तुलसीदास के अनुसार संतों का लक्षण क्या है?
5. तुलसी के दोहों की भाषा और शैली किस प्रकार की हैं?

2.1.9 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. दोहावली – तुलसीदास
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
4. काव्य-दीप – संपादकः श्री बी. राधाकृष्ण मूर्ति
5. त्रिवेणी – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

Dr. P. Prema Kumar,
Reader & Head,
Department of Hindi,
Hindu College,
Guntur.

पाठ - 2.2

रहीम - दोहे

इकाई की रूपरेखा :-

2.2.1 उद्देश्य
2.2.2 प्रस्तावना
2.2.3 रहीम- एक परिचय
2.2.4 कविता का मूल पाठ
2.2.5 कठिन शब्दों के अर्थ
2.2.6 दोहों की संदर्भ सहित व्याख्याएँ
2.2.7 काव्यगत विशेषताएँ
2.2.8 बोध प्रश्न
2.2.9 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

2.2.1 उद्देश्य :-

1. रहीम दोहावली से उद्धृत दस दोहों को पढ सकेंगे।
2. रहीम के वैयक्तिक जीवन का परिचय जानेंगे।
3. रहीम के दोहों में अभिव्यक्त विशेषताओं को जानेंगे।
4. रहीम के साहित्य पर उनके निजी अनुभवों के प्रभाव के बारे में जानेंगे।
5. कठिन शब्दों के अर्थ और व्याख्याओं का अध्ययन करेंगे।
6. रहीम की काव्यगत विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।

2.2.2 प्रस्तावना :-

हिन्दी जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में रहीम एक हैं। रहीम मुगल सम्राट अकबर के दरबार के नवरत्नों में एक थे। वे हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, अरबी, फरसी, तुर्की के भी विद्वान थे। पाण्डित्य के साथ उनमें भावुकता और मर्मज्ञता भी पूरी-पूरी थी। देश के हर कोने में भ्रमण करने के कारण उनके व्यावहारिक ज्ञान में भी खूब वृद्धि हुई थी। वे भगवान कृष्ण के परमभक्त थे। वे स्वयं मुसलमान थे किन्तु सगुणभक्ति के कवि बने।

2.2.3 रहीम- एक परिचय :-

रहीम का पूरा नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। रहीम अकबर के संरक्षक बैराम खाँ के पुत्र थे। उनका जन्म 17 दिसंबर सन् 1556 में लाहौर में हुआ। वे प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और महान पण्डित थे। पिता की मृत्यु के बाद रहीम का

संरक्षण-भार बादशाह अकबर ने स्वीकार किया। अकबर के दरबार के नवरत्नों में रहीम का स्थान महत्त्वपूर्ण था। उनका जीवन-काल बड़े वैभव में बीता। परंतु बुढ़ापे में उन्हें कई यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं।

अकबर की मृत्यु के बाद बादशाह जहाँगीर ने रहीम की जागीर छीन ली और जेल की सज़ा दी। रहीम बहुत बड़े दाता थे। किसी याचक को निराश भेजना उन्हें कष्टदायक प्रतीत होता था। अपने इस अतीव दानगुण के कारण अंतिम दिनों में उन्हें व्यथाभरित जीवन बिताना पड़ा। उनका अपार अनुभव उनके दोहों में हमें दिखाई देता है। रहीम की कृतियों में 'बरवै नायिका भेद', 'मदनाष्टक', 'शृंगार सोरठा', 'रहीम दोहावली' आदि प्रसिद्ध हैं। उनके दोहों में नीति, उपदेश, भक्ति, राजनीति आदि कई विषयों का चित्रण हुआ है। लोक व्यवहार की बातें आपके दोहों में सजीव दिखाई देती हैं। उनसे रचित 'रास पंचाध्यायी' में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है। डॉ.भगवत् स्वरूप मिश्र जी कहते हैं "कबीर, सूर और तुलसी के बाद हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में रहीम ही सबसे लोकप्रिय कवि हैं। रहीम की लोकप्रियता का कारण जीवन के व्यवहारिक पक्ष की गहरी, यथार्थ और मार्मिक अनुभूति है।" ब्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं में उनकी कविता सजीव बन पड़ी। सरल और सुबोध भाषा के कारण वे सामान्य जनता में भी प्रसिद्ध बन सके।

2.2.4 कविता का मूल पाठ :-

1. तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान।
   कहि रहीम परकाज हित, संपति संचहिं सुजान।।
2. दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
   जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय।।
3. खीरा सिर से काटिए, मलियत नमक बनाय।
   रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय।।
4. कहि रहीम संपति सगे, बनत कहत बहु रीत।
   विपति कसौटी जे कसै, तेई साँचे मीत।।
5. रहिमन देखि बडेन को, लघु न दीजिए डारि।
   जहाँ काम आवै सुई, कहा करे तरवारि।।
6. खैर, खून, खांसी, खुसी, वैर, प्रीति, मद-पान।
   रहिमन दाबे न दबै, जानत सकल जहान।।
7. जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
   चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटै रहत भुजंग।।
8. यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय।
   वैर प्रीति अभ्यास जस, होत-होत ही होय।।
9. दोनों रहिमन एक से, जो लौं बोलत नाहिं।
   जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसंत के माहिं।।
10. ससि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
    बढ़त-बढ़त बढ़ि जात है, घटत-घटत घटि सीम।।

2.2.5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

1.	तरुवर	–	पेड़
	खात	–	खाते
	पियहिं	–	पीते
	परकाज	–	परजन
	संचहिं	–	इकट्ठा करना
	सुजान	–	सज्जन
2.	दीन	–	दुःखी
	सबन को	–	सभी को
	लखत	–	देखते हैं
	दीनबन्धु	–	भगवान
	सम होय	–	समान है
	कोय	–	कोई
3.	खीरा	–	तुरई
	लोन	–	नमक
	मलियत	–	मलना, लगाना
	करुए	–	कड़वा
	मुखन	–	मुख, चेहरा
	इहै	–	ऐसा ही
	सजाय	–	सज़ा
4.	कहि रहीम	–	रहीम कहते हैं
	संपति	–	धन
	बहु रीत	–	अनेक प्रकार के
	विपति	–	कष्ट
	मीत	–	मित्र
5.	देखि	–	देखकर
	बड़ेन को	–	बड़ों को
	लघु	–	छोटे
	डारि	–	त्यागना
	काम आवै	–	काम आती है
	कहा करै	–	क्या कर सकती है
	तरवरि	–	तलवार

6. खैर – कुशलता
   खून – हत्या
   खाँसी – दमे की बीमारी
   वैर-प्रीति – शत्रुता और प्रेम
   मद-पान – शराब पीना
   जानत – जानते
   सकल जहां – सारा संसार
7. उत्तम – श्रेष्ठ, सबसे अच्छा
   प्रकृति – स्वभाव
   का – क्या
   करि सकत – कर सकता है
   कुसंग – बुरी संगति, दुष्टों का सांगत्य
   व्याप्त – फैलना
   लपटै – लिपटकर
   भुजंग – साँप
8. निज – अपना
   संग – सांगत्य, साथ
   जनमत – जन्म लेना, पैदा होना
   वैर-प्रीति – शत्रुता-प्रेम
   जस – यश
9. जो लौ – जब तक
   बोलत नाहिं – नहीं बोलते
   जान परत – मालूम होता
   काक – कौआ
   पिक – कोयल
10. संकोच – संदेह
    मान – सम्मान
    घटत – कम हो जाना
    सनेह – मित्रता

2.2.6 दोहों की संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. तरुवर फल नहिं ..... संपति संचहि सुजान।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में रहीम जी संतों के लक्षण बताते हैं।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि जिस प्रकार पेड़ अपने फल स्वयं नहीं खाता, सरोवर स्वयं अपना पानी नहीं पीता, ठीक उसीप्रकार सज्जन या संत लोग अपने लिए धन इकट्ठा नहीं करते। उनके जीवन का लक्ष्य दूसरों का हित करना होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो परहित का भाव रखते हैं वे ही संत लोग हैं।

2. दीन सबन को लखत ..... दीन बन्धु सम होय।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में रहीम जी कहते हैं कि दीनों का उपकार करनेवाले परमात्मा के समान होते हैं।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि दीन व्यक्ति सबकी ओर निहारता है, लेकिन उसकी तरफ कोई ध्यान नहीं देता अर्थात् उसकी सहायता के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। रहीम के अनुसार जो दीनों का उद्धार करते हैं वे दीनबन्धु अर्थात् भगवान के समान होते हैं।

3. खीरा सिर से ..... चहियत इहै सजाय।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- रहीम कहते हैं कि कठिन या निंदापूर्ण बातें बोलनेवाले को बड़ी कड़ी सज़ा देने की आवश्यकता है।

व्याख्या :- रहीम के अनुसार खीरे को खाने योग्य बनाने के लिए उसके छिलके को निकालकर नमक लगाते हैं जिससे उसका कड़वापन दूर हो जाता है। उसी प्रकार दूसरों की निंदा करनेवाले व्यक्ति को भी बड़ी सज़ा मिलने की आवश्यकता है। अन्यथा उसका मुख बंद नहीं होगा। भाव यह है कि निंदक मामूली बातों से चुप नहीं रहता। इसलिए उसे कड़ी सज़ा देनी चाहिए। तभी वह शांत या मौन रहता है।

4. कहिं रहीम संपति .....तेई साँचे मीत।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में रहीम बताते हैं कि वास्तविक साथी की पहचान तो विपत्ति के समय ही होती है।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि संपत्ति के समय बहुत सारे साथी मिल जाते हैं। पर वास्तविक साथी की पहचान तो विपत्ति के समय ही होती है जैसे कि स्वर्ण के खरेपन की पहचान कसौटी पर कसने पर ही होती है। रहीम के अनुसार आफत के समय जो हमारे साथ रहते हैं वे ही हमारे सच्चे मित्र हैं।

5. रहिमन देखि बड़ेन ..... कहा करि तरवारि।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- इस दोहे में रहीम जी साधारण व्यक्तियों का भी आदर करने की आवश्यकता पर जोर देते हैं।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि हमें बड़े आदमियों को देखकर छोटे लोगों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। इसके लिए वे एक उदाहरण भी देते हैं। जहाँ सुई से काम पड़ता है, वहाँ तलवार से काम नहीं बनता। फटे कपड़े को सीने के लिए सुई ही काम आती है, तलवार से इस संदर्भ में कोई प्रयोजन नहीं। इसी प्रकार छोटे आदमी से जो काम पूरे होते हैं, बड़े लोग वे काम कभी कर नहीं सकते।

6. खैर, खून, खँसी ..... जानत सकल जहान।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- रहीम प्रस्तुत दोहे में कहते हैं कि कुछ बातें ऐसी होती हैं कि छिपाने पर भी छिपतीं नहीं।

व्याख्या :- रहीम के अनुसार कुशलता, खून, खाँसी, प्रसन्नता, शत्रुता, प्रेम और शराब का पीना आदि काम दबाने से भी नहीं दबते- अर्थात् प्रकट हो ही जाते हैं और उनके बारे में संसार के सभी लोगों को जानकारी मिलती है।

7. जो रहीम ..... लपटे रहत भुजंग।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में रहीम जी बताते हैं कि दुष्टों का सांगत्य सज्जनों पर कोई प्रभाव दिखाता नहीं।

व्याख्या :- रहीम जी हमें बताते हैं कि जो सज्जन होते हैं, उन पर दुष्टों के सांगत्य का प्रभाव नहीं पड़ता। वे एक उदाहरण देते हैं। चंदन वृक्षों की सुगंध से आकर्षित होकर साँप उससे लिपटे रहते हैं तो भी चंदन वृक्ष विषैले नहीं बनते और अपने सहज गुण नहीं छोड़ते। इसके द्वारा वे बताते हैं कि असमय में दुष्टों के साथ रहने पर भी सज्जन अपना उत्तम स्वभाव या सज्जनता नहीं छोड़ता। वे सदा सज्जन ही रहते हैं।

8. यह रहीम निज संग .....होत होत ही होय।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप संस्कृत, अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी आदि कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन के संचालन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- रहीम प्रस्तुत दोहे में बताते हैं कि मानव इस दुनिया में धीरे-धीरे अभ्यास से सब कुछ सीखता है।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि शत्रुता, प्रेम, अभ्यास और कीर्ति कोई प्राणी संसार में इनको जन्म से ही साथ लेकर उत्पन्न नहीं होता। वे सब तो धीरे-धीरे ही प्राप्त होते हैं।

9. दोनों रहिमन एक से .....ऋतु वसंत के माहिं ।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- रहीम प्रस्तुत दोहे में बताते हैं कि व्यक्ति के कृत्यों, वचनों के द्वारा ही इस बात का पता चलता है कि वह अच्छा है या बुरा।

व्याख्या :- रहीम कहते हैं कि बाहरी रूप से कौआ और कोयल देखने में एक जैसा ही लगते हैं परन्तु उनकी असलियत वसंत ऋतु के आते ही प्रकट हो जाती है। क्योंकि वसंत ऋतु में कोयल मीठे स्वर में गाती है तो उसकी विशेषता के बारे में हमें पता चलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सब मनुष्य देखने में एक ही समान लगते हैं परन्तु उनकी विशेषता संदर्भानुसार उनके कृत्यों तथा वचनों के माध्यम से प्रकट होती है।

10. ससि संकोच ..... घटत घटत घटि सीम।।

जवाब-

प्रस्तावना :- यह रहीम का दोहा है जो 'काव्य दीप' नामक संकलन से दिया गया है। रहीम जी हिन्दी के प्रख्यात कवि तथा कृष्णभक्त थे। वे अकबर के मंत्री, सेनानी तथा उनके दरबार के नवरत्नों में एक थे। आप कई भाषाओं के महान पण्डित थे। आपके दोहों में जीवन का अपार अनुभव दिखाई देता है जो हमारे दैनिक जीवन में सहायक बनता है।

संदर्भ :- प्रस्तुत दोहे में रहीम का कहना है कि साहस, प्रेम, स्नेह जैसे सद्गुणों को हम जितना बाँटते हैं उतनी ही उनकी वृद्धि होती है।

व्याख्या :- रहीम के अनुसार चंद्रमा, संकोच, साहस, जल अर्थात्- नदी आदि, सम्मान और प्रेम ये सब बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ जाते हैं। पर जब ये घटते हैं तो घटते-घटते सीमा तक पहुँच जाते हैं और लुप्त हो जाते हैं।

2.2.7 काव्यगत विशेषताएँ :-

1. रहीम के व्यक्तित्व की विशिष्टता का प्रभाव इस काव्य में दिखाई पड़ता है।
2. रहीम की कृतियों में लौकिक तत्त्व की प्रधानता है।
3. रहीम की कविता में नीति प्रधान है।
4. मुसलमान होते हुए भी रहीम सगुणोपासक हैं।
5. उनकी भक्तिभावना काव्य की एक अन्य विलक्षणता है।
6. उनकी भाषा ब्रज और अवधी है।
7. रहीम का दानगुण समस्त भक्तिकाव्य का प्रभावशाली अंश है।

2.2.8 बोध प्रश्न :-

1. रहीम के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालिए।
2. पठित दोहों के आधार पर रहीम की काव्यगत विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. पठित दोहों का सारांश लिखिए।
4. 'रहीम की कविता में नीति प्रधान तत्त्व है' इसे समझाइए।
5. आज के युग में रहीम के दोहों की प्रासंगिकता क्या है? अपने शब्दों में लिखिए।

2.2.9 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. काव्य दीप – संपादक- श्री बी. राधाकृष्ण मूर्ति
2. रहीम सतसई – संपादक- श्री विश्वंभर 'अरुण'
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. रहीम के दोहे – संपादक- आबिद रिज़वी
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र

Dr. P. Prema Kumar,
Reader&Head,
Department of Hindi,
Hindu College,
Guntur.

पाठ - 3.1

बिहारीलाल - दोहे

इकाई की रूपरेखा :

3.1. 1 उद्देश्य
3.1. 2 प्रस्तावना
3.1. 3 बिहारीलाल का परिचय
3.1. 4 कविता का मूलपाठ
3.1. 5 कठिन शब्दों के अर्थ
3.1. 6 दोहों का भावार्थ
3.1. 7 काव्यगत विशेषताएँ
3.1. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
3.1. 9 बोध प्रश्न
3.1.10 सहायक ग्रंथ-सूची

3.1. 1 उद्देश्य :-

1. बिहारी के वैयक्तिक जीवन का परिचय जान लेंगे।
2. बिहारी के अनुभवों का, उनके साहित्य पर प्रभाव के बारे में परिचय प्राप्त करेंगे।
3. बिहारी की दूरदर्शिता, ज्ञान-गरिमा के बारे में जानेंगे।
4. कठिन शब्दों के अर्थ और व्याख्याओं का अध्ययन करेंगे।
5. बिहारी के द्वारा लिखे गये दोहों का परिचय प्राप्त करेंगे।

3.1. 2 प्रस्तावना :-

कविवर बिहारी लाल रीतिकाल के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी जैसी दूरदर्शिता, अंतरंग प्रकृति पर्यवेक्षणचातुरी, व्यापक ज्ञान गरिमा तथा लोकोत्तरानंददायिनी कवि-कल्पना, काव्य जगत् की अन्य विरले ही महाकवियों की श्रेष्ठतम रचनाओं में देखने को मिलती है। उन्होंने दोहे रूपी नन्हे से गागर में भावगांभीर्य का महान सागर ही समाविष्ट कर दिया। बिहारी ने दोहा-सा प्रचलित छोटे छंद चुनकर लाघव का गुण खूब निभाया है। फ़िजूल भरती नहीं भरी। अन्य ब्रजभाषा कवियों की भांति उन्होंने शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं है। जहाँ तक हुआ है, शुद्ध रूप ही रखे हैं। यद्यपि गाथा-सप्तशती, आर्या-सप्तशती, शृंगार-सतसई आदि कई प्राकृत और हिन्दी की सतसइयाँ हैं, तथापि पैनी दीठी, अनोखी सूझ, पद लालित्य और शब्दों की अर्थव्यंजना के कारण 'बिहारी सतसई' अद्वितीय बन पड़ी है। यह सतसई शृंगार रस का भी शृंगार है।

कहा जाता है कि शृंगार रस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और मान बिहारी सतसई का हुआ है, उतना किसी अन्य का नहीं हो पाया। इसलिए विद्वान यह कहते हैं कि हिन्दी शृंगार सतसई की परंपरा का शुभारंभ बिहारी सतसई से ही मानना चाहिए।

3.1. 3 बिहारीलाल: कवि-परिचय:-

बिहारीलाल का स्थान उन कवियों में शीर्षस्थ है जिन्होंने कम लिखा, किन्तु अधिकाधिक ख्याति अर्जित की। इनका जन्म ग्वालियर के निकट बसुआ गोविंदपुर में माथुर चौबे के ब्राह्मण परिवार में संवत् 1660 में हुआ और मृत्यु सं.1720 वि. के आस पास हुई। इनके पिताजी केशवराय (जिन्हें कुछ विद्वानों ने महाकवि केशवदास भी बताया है) ओरछा राज्य में थे।

बिहारीलाल का बचपन बुंदेलखण्ड में बीता। उनका विवाह मथुरा की एक लड़की के साथ हुआ। वहाँ वे काफी समय तक घर-जमाई बनकर रहे। पत्नी की मृत्यु के उपरांत वे बृंदावन चले गए जहाँ उनके पिता रहते थे। मुगल बादशाह शाहजहाँ बिहारी की काव्य प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें आगरा ले गये। वे बिहारी की सहायता करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने मुगल दरबार के अन्य राजाओं और सामंतों से वृत्ति बाँध दी। कहते हैं कि एक बार जब बिहारी आमेर नरेश राजा जयसिंह के यहाँ गये थे तब राजा अपनी नवागत पत्नी से इतना अनुरक्त था कि उसने राज-दरबार में आना ही छोड़ दिया था। इस समय बिहारी ने यह दोहा लिखकर राजा को भेजा -

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहि काल।
अलि कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।"

राजा जयसिंह यह अन्योक्ति पढ़कर अपनी भूल समझ गया। तब वह फिर से राज-काज में लग गया। रानी भी प्रसन्न हुई। तभी से राजा ने बिहारी को अपने दरबार में रख लिया। बिहारी दोहे सुनाते थे और प्रत्येक दोहे पर राजा से एक अशर्फी ईनाम के रूप में प्राप्त करते थे।

बिहारी के दोहों का संग्रह 'बिहारी सतसई' नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ की लोकप्रियता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि तुलसीदास के 'रामचरित मानस' के बाद सबसे अधिक टीकाएँ बिहारी सतसई की ही लिखी गयीं। इस ग्रंथ में कुल 713 दोहे पाये जाते हैं। उसका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक रत्न माना जाता है। 'बिहारी सतसई' ही बिहारीलाल का एकमात्र ग्रंथ है। यही उनकी कीर्ति का आधार है। यह मुक्तक काव्य है। इसमें शृंगार के संयोग तथा वियोग, दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण किया गया है। समास-प्रधान शब्दावली और कल्पना की समाहार शक्ति की सहायता से बिहारी अपने दोहों में बड़ा अर्थ भर देते हैं। उनके दोहे आकार में छोटे तो हैं किन्तु पाठकों के मन पर बड़ा प्रभाव डालते हैं। इसलिए किसीने ठीक ही कहा-

"सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगे, घाव करैं गंभीर।।"

नाविक के तीर के अग्रभाग में छोटे फलक लगाये जाते हैं। वे फलक दोनों तरफ नुकीले होते हैं। इसलिए जब नाविक पशु-पक्षियों पर बाण डालते हैं तो ये बाण अचूक होकर उन्हें मार डालते हैं। इसी प्रकार बिहारी के दोहे पाठकों के मन पर बड़ा प्रभाव डालते हैं।

बिहारी ने ब्रजभाषा में दोहे लिखे हैं। बिहारी की वचन-वक्रता, वाक्-पटुता, वाग्विदग्धता, वाग्वैचित्र्य आदि ने अन्य रीतिकारों में उनके लिए अनूठा स्थान प्रदान किया। शब्दों की सजावट, उक्ति को सँवारना उनके काव्य के कौशल के महत्त्वपूर्ण अंश हैं। उन्होंने अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि बिहारी सतसई को कुछ विद्वान अलंकार ग्रंथ मानते हैं। उन्होंने विविध नायिकाओं का चित्रण किया है। इसलिए बिहारी सतसई को कुछ पण्डित नायिका-भेद काव्य मानते हैं। बिहारी ने सतसई में कोई लक्षण नहीं दिया बल्कि केवल उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसलिए वे रीति-सिद्ध कवि हैं।

3.1. 4 कविता का मूलपाठ :-

1. मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
   जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होइ।।
2. स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु बृथा, देखि, बिहंग, बिचारि।
   बाज पराएं पानि परि, तूं पच्छीनु न मारि।।
3. अनियारे दीरघ दृगनि किसी न तरुनि समान।
   वह चितवनि और कछू जिहिं बसहोत सुजान।।
4. कहत नटत रीझत खिजत, मिलत खिलत लजियात।
   भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।
5. नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
   अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।
6. कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
   कहि दै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात।।
7. पत्राहीं तिथि पाइयै, वा घर के चहुं पास।
   नित प्रति पून्यौहि रह्यो, आनन-ओप-उजास।।
8. कनक कनक ते सौ गुनौ, मादकता अधिकाइ।
   उहिं खऐं बौराइ जग, इहिं पाऐं ही बौराइ।।
9. तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
   अनबूड़े बूड़े तरै, जे बूड़े सब अंग।।
10. या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
    ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्जलु होइ।।

3.1. 5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

1. भव बाधा – सांसारिक कष्ट
   हरौ – दूर करो
   राधा नागरि – चतुर राधा

	झाँईं	–	परछाई / प्रतिबिंब
	परै	–	पड़ने से
	हरित	–	हरा रंग / प्रसन्न
2.	स्वारथु	–	स्वार्थ
	सुकृतु	–	पुण्य
	श्रमु	–	श्रम / मेहनत
	बृथा	–	व्यर्थ
	विहंग	–	पक्षी
	बिचार	–	सोच लो
	बाज़	–	एक प्रकार का शिकारी पक्षी
	पराए पानि परि	–	दूसरों के वश में होकर
	पंछीनु	–	पक्षियों को
	न मारि	–	हत्या न कर
3.	अनियारे	–	नुकीले
	दृगनि	–	नयन
	तरुनि	–	युवती
	चितवन	–	तिरछी नज़र
	सुजान	–	नायक
4.	कहत	–	कहना
	नटत	–	अस्वीकार करना
	रीझत	–	रीझना / आकर्षित होना
	खिजत	–	खीज उठना / रुष्ट होना
	खिलत	–	खिल उठना / प्रसन्न होना
	लजियात	–	लजाना
	भौन	–	भवन
5.	पराग	–	फूलों के धूलि-कण
	अली	–	भ्रमर
	हवाल	–	हाल, दशा
	कली	–	फूल का अविकसित रूप
6.	कागद	–	कागज
	लिखत	–	लिखना
	संदेसु	–	संदेश
	लजात	–	लज्जित होते हैं

	सबु	–	सबकुछ
	हियौ	–	हृदय
7.	पत्रा	–	तिथि पत्र
	वा घर	–	उसका घर
	पून्यो	–	पूर्णिमा
	आनन	–	मुख
	ओप	–	छवि
	उजास	–	आलोक
8.	कनक	–	सोना, धतूरा
	मादकता	–	नशा
	अधिकाय	–	अधिक होता है
	उहि	–	उसे
	बौराइ	–	पागल होना
9.	तंत्रीनाद	–	वीणा का स्वर
	कवित्त रस	–	कविता का रसानंद
	सरस	–	मधुर
	जे	–	जिस
10.	अनुरागी	–	प्रेमी
	स्याम	–	कृष्ण, काला
	उज्जलु	–	उज्ज्वल
	ज्यौं-ज्यौं	–	जितना-जितना
	बूडै	–	डूबै

3.1. 6 दोहों के भावार्थ :-

1. मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होइ।।

भावार्थ :- इस दोहे में कवि बिहारी लाल राधिका की प्रार्थना करते हुए कहते हैं " हे चतुर राधिके ! आप मेरी भव-बाधा को दूर कीजिए। आपके शरीर की परमोज्ज्वल आभा के पड़ने मात्र से श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं।" इसका अंतरार्थ इस प्रकार से लिया जा सकता है- राधा गौर (पीले वर्ण) वर्ण की है और श्रीकृष्ण का शरीर-वर्ण श्याम है। गोरे और नीले रंग के मेल से हरे रंग का उत्पन्न होता है। इस प्रकार कवि ने सफलतापूर्वक श्लेष अलंकार का प्रयोग किया। अपने ग्रंथ 'बिहारी सतसई' की निर्विघ्न समाप्ति के लिए कवि ने अपनी इष्ट देवी राधा का भावपूर्ण नमन इस दोहे के द्वारा किया।

2. स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु बृथा, देखि, बिहंग, बिचारि।
बाज पराएं पानि परि, तूं पच्छीनु न मारि।।

भावार्थ :- इस दोहे में बिहारी लाल कहते हैं "हे बाज पक्षी! दूसरे के वश में होकर तू अपने स्वजनों (पक्षियों) की निर्मम हत्या मत करना। हे स्वच्छंदविहारी पक्षी! कुछ स्वयं भी विचार कर। इसमें न तो तेरा कोई हित ही है, न पुण्य है अपितु व्यर्थ का श्रम ही है।" राजा जयसिंह हिन्दुओं के विरुद्ध शाहजहां की ओर से युद्ध लड़ते थे और स्वजनों (हिन्दू राजाओं) का नाश करते थे। अतः बिहारी ने इस दोहे की रचना उस राजा को दृष्टि में रखकर की। दोहे में अन्योक्ति अलंकार है।

3. अनियारे दीरघ दृगनि किसी न तरुनि समान।
वह चितवनि और कछू जिहिं बस होत सुजान।।

भावार्थ :- इस दोहे में बिहारी कहते हैं "नुकीली और विशाल आँखों वाली स्त्रियाँ संसार में कई हो सकती हैं। पर सुजान लोग सभी से अनुरक्त नहीं होते। वह चितवन कुछ और ही में होती है, जिससे गुणी लोग वशीभूत होते हैं।" इस दोहे में नायिका के बाहरी सौंदर्य का वर्णन किया गया।

4. कहत नटत रीझत खिजत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।

भावार्थ :- दोहे की पृष्ठभूमि इस प्रकार है : नायक-नायिका जन-समुदाय से भरे घर में नेत्रों के माध्यम से अपने प्रेमपूर्ण भावों का आदान-प्रदान कर रहे हैं। इस दोहे में कवि कहते हैं "उन दोनों के नेत्र कभी कुछ कहते हैं, कभी निषेध करते हैं, कभी रीझते हैं- अनुकूल होते हैं, कभी रुष्ट हो जाते हैं तो कभी परस्पर मिलकर एक होकर प्रसन्न हो उठते हैं तथा फिर लजा जाते हैं। इस प्रकार वे दोनों भरी सभा में जन समुदाय के बीच रहते हुए भी इतनी चतुराई से अपने नेत्रों के द्वारा वार्तालाप कर रहे हैं।"

5. नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

भावार्थ :- कहते हैं कि एक बार जब बिहारी आमेर नरेश राजा जयसिंह के यहाँ गये थे तब राजा अपनी नवागत पत्नी से इतना अनुरक्त था कि उसने राज-दरबार में आना ही छोड़ दिया था। इस समय बिहारी ने यह दोहा लिखकर राजा को भेजा कि "हे भ्रमर! तुम जिस कुसुम के सौंदर्य-मधु का पान कर रहे हो वह तो कली है और पूरी तरह विकसित नहीं है। इसमें पूर्णतः पराग और मधु का भी विकास नहीं हुआ। अभी तुम्हारा यह हाल है तो आगे जब यह कली फूल बनेगी तो तुम्हारी क्या दशा होगी!"

6. कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
कहि दै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात।।

भावार्थ :- इस दोहे में एक नायिका अपनी विरह वेदना पत्र के द्वारा नायक को स्पष्ट करते हुए कहती है " हे प्रिय! मैं तुम्हारे विरह में इतनी बुरी अवस्था को प्राप्त हो गयी कि कागज पर अपनी व्यथा लिखने में भी मैं असमर्थ हूँ और अपनी वेदना के बारे में किसी दूसरे से कहने में लज्जा का अनुभव करती हूँ। अतः तुम मेरी दशा जानना चाहोगे तो अपने हृदय से पूछो। क्योंकि सुख या दुःख में सच्चे प्रेमियों की दशा एक जैसी होती है!"

7. पत्राहीं तिथि पाइयै, वा घर के चहुं पास।
नित प्रति पून्यौहि रह्यो, आनन-ओप-उजास।।

भावार्थ :- इस दोहे में सखी नायिका के मुख की प्रशंसा करते हुए नायक से कहती है "उस सुंदरी के घर के चारों ओर पत्रा द्वारा ही तिथि ज्ञात की जाती है क्योंकि उसके मुख-चंद्र की कान्ति के कारण वहाँ सदैव पूर्णिमा ही रहती है।"

8. कनक कनक ते सौ गुनौ, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐं बौराइ जग, इहिं पाऐं ही बौराइ।।

भावार्थ :- इस दोहे में बिहारी कहते हैं "कनक (धतूरे) की अपेक्षा कनक (स्वर्ण-धन) में सौगुना अधिक नशा रहता है क्योंकि धतूरे का प्रभाव तो उसे खाने के पश्चात् पड़ता है परन्तु धन के तो प्राप्त होते ही मनुष्य बौरा जाता है अर्थात् विवेकहीन एवं अभिमानपूर्ण वार्तालाप करने लगता है।" इस दोहे में कनक के दो अर्थ हैं - धतूरा नामक नशीला पदार्थ तथा स्वर्ण। दोहे में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ।

9. तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरै, जे बूड़े सब अंग।।

भावार्थ :- बिहारी इस दोहे में कहते हैं कि "जो व्यक्ति तंत्रवाद्यों- सारंगी, सितार आदि में, काव्यानंद में, रसपूर्ण गायन में तथा काम-क्रीड़ा के आनंद में लीन न हुए तथा उनसे अपरिचित ही रह गए उनका जीवन ही डूब गया समझें अर्थात् वे नष्ट हो गये। जो इन सभी में पूर्णतः डूब जाते हैं- मतलब तल्लीन हो जाते हैं, मानिए कि वे वस्तुतः सफलता से अपने जीवन-सागर को पार कर गए अर्थात् उनका जीवन सार्थक हो गया।"

10. या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वलु होइ।।

भावार्थ :- बिहारी इस दोहे में कहते हैं "श्रीकृष्ण के प्रति अनुरागपूर्ण हृदय की स्थिति कोई नहीं समझ सकता। जैसे जैसे वह कृष्णप्रेम में डूबता जाता है, उतना ही वह पवित्र होता जाता है। काले रंग में डूबने से मन उज्ज्वल हो उठता है।" बिहारी की भक्ति भावना इसमें प्रकट होती है।

3.1. 7 काव्यगत विशेषताएँ :-

1. बिहारी के व्यक्तित्व की विशिष्टता का प्रभाव इन दोहों में दिखाई देता है।
2. उनकी भक्ति भावना का परिचय होता है।
3. वे नीति, भक्ति और शृंगार के कवि हैं।
4. उनकी रचनाओं में लौकिक और आदर्शात्मक तत्त्वों की प्रधानता है।
5. उनकी रचनाओं में राधा-माधव युगल के प्रेम का हृदयंगम वर्णन किया गया।
6. एकमात्र रचना सतसई उनकी कीर्ति का आधारस्तंभ है।

3.1. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होइ।।

जवाब-

संदर्भ :- यह दोहा 'बिहारी सतसई' से दिया गया है। कविवर बिहारीलाल से लिखा गया है। आप रीतिकाल के अत्यंत प्रमुख कवि हैं। आपको हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में एक माना जाता है। 'बिहारी सतसई' आपका एकमात्र काव्य तथा आपकी कीर्ति का आधारस्तंभ है। इस काव्य का एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है।

व्याख्या :- इस दोहे में कवि बिहारी लाल राधिका की प्रार्थना करते हुए कहते हैं " हे चतुर राधिके! आप मेरी भव-बाधा को दूर कीजिए। आपके शरीर की परमोज्ज्वल आभा के पड़ने मात्र से श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं।" इसका अंतरार्थ इस प्रकार से लिया जा सकता है- राधा गौर (पीले वर्ण) वर्ण की है और श्रीकृष्ण का शरीर-वर्ण श्याम है। गोरे और नीले रंग के मेल से हरे रंग का उत्पन्न होता है। इस प्रकार कवि ने सफलतापूर्वक श्लेष अलंकार का प्रयोग किया।

विशेषता :- अपने ग्रंथ 'बिहारी सतसई' की निर्विघ्न समाप्ति के लिए कवि ने अपनी इष्ट देवी राधा का भावपूर्ण नमन इस दोहे के द्वारा किया।

2. स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु बृथा, देखि, बिहंग, बिचारि।
बाज पराएं पानि परि, तूं पच्छीनु न मारि।।

जवाब-

संदर्भ :- यह दोहा 'बिहारी सतसई' से दिया गया है। कविवर बिहारीलाल से लिखा गया है। आप रीतिकाल के अत्यंत प्रमुख कवि हैं। आपको हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में एक माना जाता है। 'बिहारी सतसई' आपका एकमात्र काव्य तथा आपकी कीर्ति का आधारस्तंभ है। इस काव्य का एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है।

व्याख्या :- इस दोहे में बिहारी लाल कहते हैं "हे बाज पक्षी! दूसरे के वश में होकर तू अपने स्वजनों (पक्षियों) की निर्मम हत्या मत करना। हे स्वच्छंदविहारी पक्षी! कुछ स्वयं भी विचार कर। इसमें न तो तेरा कोई हित ही है, न पुण्य है अपितु व्यर्थ का श्रम ही है।"

विशेषता :- राजा जयसिंह हिन्दुओं के विरुद्ध मुगल शासक शाहजहाँ की ओर से युद्ध लड़ते थे और स्वजनों (हिन्दू राजाओं) का नाश करते थे। बिहारी ने इस दोहे की रचना राजा जयंसिंह को दृष्टि में रखकर की। दोहे में अन्योक्ति अलंकार है।

3. पत्राहीं तिथि पाइयै, वा घर के चहुं पास।
नित प्रति पून्यौहि रह्यो, आनन-ओप-उजास।।

जवाब-

संदर्भ :- यह दोहा 'बिहारी सतसई' से दिया गया है। कविवर बिहारीलाल से लिखा गया है। आप रीतिकाल के अत्यंत प्रमुख कवि हैं। आपको हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में एक माना जाता है। 'बिहारी सतसई' आपका एकमात्र काव्य तथा आपकी कीर्ति का आधारस्तंभ है। इस काव्य का एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है।

व्याख्या :- इस दोहे में सखी नायिका के मुख की प्रशंसा करते हुए नायक से कहती है "उस सुंदरी के घर के चारों ओर पत्रा द्वारा ही तिथि ज्ञात की जाती है क्योंकि उसके मुख-चंद्र की कान्ति के कारण वहाँ सदैव पूर्णिमा ही रहती है।"

विशेषता :- नायिका के मुख-सौंदर्य का वर्णन किया गया। दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार है।

4. कनक कनक ते सौ गुनौ, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐं बौराइ जग, इहिं पाऐं ही बौराइ।।

जवाब-

संदर्भ :- यह दोहा 'बिहारी सतसई' से दिया गया है। कविवर बिहारीलाल से लिखा गया है। आप रीतिकाल के अत्यंत प्रमुख कवि हैं। आपको हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में एक माना जाता है। 'बिहारी सतसई' आपका एकमात्र काव्य तथा आपकी कीर्ति का आधारस्तंभ है। इस काव्य का एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है।

व्याख्या :- इस दोहे में बिहारी कहते हैं "कनक (धतूरे) की अपेक्षा कनक (स्वर्ण-धन) में सौगुना अधिक नशा रहता है क्योंकि धतूरे का प्रभाव तो उसे खाने के पश्चात् पड़ता है परन्तु धन के तो प्राप्त होते ही मनुष्य बौरा जाता है अर्थात् विवेकहीन एवं अभिमानपूर्ण वार्तालाप करने लगता है।"

विशेषता :- इस दोहे में कनक के दो अर्थ हैं - धतूरा नामक नशीला पदार्थ तथा स्वर्ण। दोहे में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ।

5. तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरै, जे बूड़े सब अंग।।

जवाब-

संदर्भ :- यह दोहा 'बिहारी सतसई' से दिया गया है। कविवर बिहारीलाल से लिखा गया है। आप रीतिकाल के अत्यंत प्रमुख कवि हैं। आपको हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में एक माना जाता है। 'बिहारी सतसई' आपका एकमात्र काव्य तथा आपकी कीर्ति का आधारस्तंभ है। इस काव्य का एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है।

व्याख्या :- बिहारी इस दोहे में कहते हैं कि "जो व्यक्ति तंत्रवाद्यों- सारंगी, सितार आदि में, काव्यानंद में, रसपूर्ण गायन में तथा काम-क्रीड़ा के आनंद में लीन न हुए तथा उनसे अपरिचित ही रह गए उनका जीवन ही डूब गया समझें अर्थात् वे नष्ट हो गये। जो इन सभी में पूर्णतः डूब जाते हैं- मतलब तल्लीन हो जाते हैं मानिए कि वे वस्तुतः सफलता से अपने जीवन-सागर को पार कर गए अर्थात् उनका जीवन सार्थक हो गया।"

विशेषता :- कवि ने सामान्य उक्ति के रूप में यह दोहा लिखा। इसमें जीवन के रसास्वादन के संदर्भों का उल्लेख हुआ। 'बिहारी सतसई' का प्रधान रस शृंगार है।

3.1.9 बोध प्रश्न :-

1. बिहारी के काव्य-सृजन की विशिष्टता क्या है?
2. बिहारी की भक्ति-भावना कैसी है?
3. बिहारी के काव्य की भाषा और शैली के बारे में लिखिए।
4. बिहारी के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में लघु टिप्पणी लिखिए।
5. 'बिहारी सतसई' में राजा जयसिंह को संबोधित करते हुए लिखे किसी एक दोहे का उल्लेख कीजिए।
6. बिहारीलाल के काव्य पर दरबारी वातावरण का प्रभाव कहाँ तक पड़ा? अपने शब्दों में लिखिए।

3.1.10 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. बिहारी नवनीत : रवीन्द्रकुमार जैन
2. काव्य दीप : संपादक- डॉ. बी. राधाकृष्ण मूर्ति
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. गुलाबराय
4. बिहारी-काव्य का मर्म : डॉ. सुनीता टाकभौरे

Dr. P. Neeraja,
Reader, Department of Hindi,
J.M.J. College (Autonomous),
Tenali.

पाठ - 3.2

मातृभूमि

इकाई की रूपरेखा :-

3.2. 1 उद्देश्य
3.2. 2 प्रस्तावना
3.2. 3 कवि मैथिलीशरण गुप्त का परिचय
3.2. 4 कविता का मूलपाठ
3.2. 5 कठिनशब्दों के अर्थ
3.2. 6 कविता का सारांश
3.2. 7 काव्यगत विशेषताएँ
3.2. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
3.2. 9 बोध प्रश्न
3.2.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

3.2. 1 उद्देश्य :-

इस इकाई में आप मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा रचित 'मातृभूमि' नामक कविता का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

1. मैथिलीशरण गुप्तजी का परिचय और उनकी रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. युगीन परिवेश तथा मातृप्रेम के महत्त्व को जान सकेंगे।
3. छात्रों को राष्ट्रीय प्रेम की प्रेरणा प्राप्त होगी।
4. कविता के सारांश और अन्य विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
5. कठिन शब्दों के अर्थों को जानने के साथ-साथ संदर्भ सहित व्याख्याओं का भी अध्ययन करेंगे।

3.2. 2 प्रस्तावना :-

इस इकाई में कवि के विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय पायेंगे। मैथिलीशरण गुप्तजी को द्विवेदी युग के सर्वोत्तम कवि माना जाता है। समय की आवश्यकताओं के अनुरूप आपकी कविता वस्तु परिवर्तित एवं विकसित होती गयी। आधुनिककाल के भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा छायावादी युग की विविध विशेषताएँ गुप्तजी की रचनाओं में उपलब्ध होती हैं। आपका प्रधान उद्देश्य हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा करते हुए लोगों में देश-प्रेम, एकता, स्वाभिमान आदि भावनाओं को जागृत करना था। गुप्तजी ने पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों तथा कथाओं को नये रूप में प्रस्तुत किया। आपने पुराणों में उपेक्षित अनेक पात्रों के माध्यम से नारीजगत् में आत्मविश्वास जगाया।

3.2. 3 कवि मैथिलीशरण गुप्त का परिचय :-

आधुनिक हिन्दी काव्य के द्विवेदीयुगीन कवियों में मैथिलीशरण गुप्तजी का नाम 'राष्ट्रकवि' के रूप में अत्यंत लोकप्रिय है। आपका जन्म 3 अगस्त, 1886 को झाँसी के समीप चिरगाँव में हुआ था। आपको पिताजी रामचरण गुप्त तथा माताजी काशीबाई के द्वारा रामभक्ति, कविता-प्रेम और सुशील व्यक्तित्व संस्कारों के रूप में प्राप्त हुए। आपके पिताजी काव्य के बड़े अनुरागी थे। पिता से ही कवि बनने की प्रेरणा गुप्तजी को मिली। आपने घर पर ही विद्याभ्यास किया और बचपन से ही कविता करना आरंभ किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से आप हिन्दी साहित्य में निरंतर आगे बढ़ते रहे। आपकी कविता में आधुनिक काल की नयी से नयी लाक्षणिक अभिव्यंजना-प्रणाली के दर्शन होते हैं। इसलिए आपको आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रतिनिधि कवि कहा गया।

गुप्तजी का व्यक्तित्व तीन रूपों में परिलक्षित होता है। एक- रामभक्त के रूप में, दूसरा- साहित्य प्रेमी के रूप में तथा तीसरा- राष्ट्रप्रेमी के रूप में। रामभक्ति को आपके व्यक्तित्व का आधार कहा जा सकता है जिस पर आपका समस्त कृतित्व निर्मित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में 'गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता उनकी कालानुसरण क्षमता' है- अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं, काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की क्षमता। गुप्तजी ने कई मौलिक काव्यग्रंथ लिखकर हिन्दी साहित्य जगत् को समृद्ध किया। आप प्रधानतः भक्तकवि हैं। 'साकेत' आपका सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें आपने रामायण में उपेक्षित पात्र 'ऊर्मिला' के चरित्र को कलात्मक रूप से चित्रित किया है।

खड़ीबोली को साहित्यिक भाषा बनाने में गुप्तजी का बहुत बड़ा योगदान रहा। आपकी भाषा सरल बोलचाल शब्दों से युक्त तथा प्रसादगुण-संपन्न है। सरल संस्कृत शब्दों का भी आपने पर्याप्त प्रयोग किया है। हिन्दी के अनेक विस्मृत शब्दों का आपने पुनरुत्थान किया है। गुप्त जी की प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं- 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'भारत-भारती', 'पंचवटी', 'किसान', 'नहुष', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भग', 'सिद्धराज', 'जयभारत', 'कुणालगीत', 'झंकार', 'काबा और कर्बला', 'विष्णुप्रिया', 'प्रदक्षिणा' 'रत्नावली' आदि। इन सभी कृतियों में युगधर्म की सापेक्षता एवं भारतीय परंपरागत राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न स्पष्ट दिखाई देता है। इनकी 'भारत-भारती' कविता तो तत्कालीन जनता के बच्चे-बच्चे की जबान पर अंकित हो गयी थी।

गुप्तजी को राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के प्रतिष्ठित कवि माना जाता है। उनके काव्य का मूलस्वर मानवतावादी रहा। आपने महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक काव्य की परंपरा का पालन किया।

3.2. 4 कविता का मूलपाठ :-

1. जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं
परम हंस-सम बाल्य-काल में सब सुख पाले,
जिसके कारण धूल-भरे हीरे कहलाए।
हम खेले-कूदे हर्ष-युक्त जिसकी प्यारी गोद में
हे मातृभूमि! तुमको निरख मग्न क्यों न हो मोद में।

2. पालन-पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही।
अभ्रकंश प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो...तुझी से तुझ पर सारे।
हे मातृभूमि! जब हम कभी शरण न तेरी पायेंगे
बस तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायेंगे।

3. हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।
हे मातृभूमि! उपजे न जो तुझ पर कृषि अंकुर कभी
तो तड़प-तड़पकर जल मरें जठरानल में हम सभी।

4. पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा।
तेरा प्रत्युपकार कभी हमसे क्या होगा?
तेरा ही यह देह तुझी से बनी हुई है।
बस तेरे ही सुरस सार से सनी हुई है।
फिर अंत समय तू ही इसे अत्यंत निकट अपनायेगी,
हे मातृभूमि! यह अंत में तुझमें मिल जाएगी।

5. जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें सुखदायक होता,
निज स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म-भर जिनसे नाता,
उन सबमें तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है,
हे मातृभूमि! तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है!

3.2. 5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

रज	-	धूल
लोट-लोटकर	-	रेंग-रेंगकर
घुटना	-	जाँघ और टाँग के बीच का जोड़ा
परमहंस	-	परब्रह्म
जीवनाधार	-	जीवन के लिए सहारा, अवलम्बन
निरखि	-	देखकर
वक्षस्थल	-	छाती

अभ्रकंश	-	सुवर्ण/गगनचुम्बी
प्रासाद	-	देवताओं और राजाओं का निवासस्थान
उपजना	-	पैदा होना
जठरानल	-	पेट की आग, भूख
देह	-	शरीर
सुरस	-	रसयुक्त
सनी हुई	-	गीली होकर
नाता	-	संबंध
हर्षित	-	प्रसन्न
स्वजन	-	अपने जन
व्याप्त	-	फैला हुआ
सर्वदा	-	हमेशा
सदृश	-	समान
महत्त्व	-	महिमा
मातृभूमि	-	जन्मभूमि

3.2. 6 कविता का सारांश :-

'मातृभूमि' नामक प्रस्तुत कविता राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी की लेखनी से प्रस्तुत है। इस कविता में गुप्तजी के द्वारा 'मातृभूमि' के प्रति अपार प्रेम और वात्सल्य दर्शाया गया है। गुप्तजी द्विवेदीयुगीन कवियों में अत्यंत लोकप्रिय हैं। आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जनता में राष्ट्रभक्ति और स्वदेश प्रेम जैसी भावनाओं को व्याप्त किया। आपकी अन्य विशेषता है- पौराणिक गाथाओं के माध्यम से समाज में उपेक्षित नारियों पर प्रकाश डालना। प्रस्तुत कविता में आप मातृभूमि के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति व्यक्त कर रहे हैं। मानव को अपने कर्तव्य निभाने और मातृभूमि के ऋण को चुकाने की प्रेरणा भी हमें इस कविता के द्वारा प्राप्त होती है।

कवि मातृभूमि के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट करते हुए कहते हैं- "हम मातृभूमि की धूलि में ही लोट-लोटकर बड़े हुए हैं। घुटनों के बल पर सरक-सरककर खड़े हुए हैं। बचपन में परम हंस के रूप में हमने समस्त सुख भोग लिया है। धूल से भरे शरीर से बचपन में हम खेले-कूदे और धूलभरे हीरे कहलाए। धूल से भरे हुए बच्चों को देखकर माता-पिता एवं अन्य लोग बच्चों को प्यार करते हैं। मातृभूमि की प्यारी गोद में हम खुशी से खेले और कूदे।"

कवि कहते हैं कि 'हे मातृभूमि! तुम्हें देखकर मेरा मन क्यों न प्रसन्न हो'- अर्थात् हर एक व्यक्ति के हृदय में मातृभूमि को देखकर प्रसन्नता की लहरें उमड़ती हैं। बचपन की यादें आ जाती हैं। कवि के अनुसार मातृभूमि ही इस संसार में हमारे पालन-पोषण और जन्म का आधार है। मातृभूमि ने ही हमें अपनी छाती से लगाकर प्यार दिया। आसमान को छूनेवाले ये भवन और बड़े-बड़े महल जो हमने बनाये हैं, उन सभी का आधार यह मातृभूमि ही है। उसीके आधार पर, उसकी सहायता से ही हम सबका जीवन चल रहा है। मातृभूमि के वरदान के कारण ही मानव का उद्धार होता है। अतः कवि कहते हैं- "हे मातृभूमि! जब हम तुम्हारी शरण प्राप्त नहीं कर पायेंगे, उसी समय हम सब प्रलय के पेट में लीन हो

जायेंगे। तुम्हारी शरण में ही हमारी सुख-शांति निहित है। हे मातृभूमि! तुम ही मानव जगत् को फसल पैदाकर अन्न देती हो। इसके बदले में तुम किसी से कुछ नहीं लेती हो। तरह-तरह के खाद्य पदार्थों को प्रदान कर प्रेम के साथ हमारा पालन पोषण करती हो। उन्हें ग्रहण करके मानव स्वस्थ और रोगरहित हो जाता है।"

कवि कहते हैं कि यदि मातृभूमि के हृदय पर कृषि के अंकुर कभी न उपजते हों तो भूख की ज्वाला से मानव तड़प-तड़पकर मर जायेंगे। मानव भोजन के बिना जिंदा नहीं रह सकता। मातृभूमि के वरदान के बिना मानव जीवन संभव नहीं। हमने सब सुखों को मातृभूमि के आधार पर ही प्राप्त किया। हमारी अन्नदात्री मातृभूमि ही है। हम इस पावन धरित्री का ऋण इस जन्म में चुका पायेंगे या नहीं- यह हमें अज्ञात है।

कवि मातृभूमि से कहते हैं "हे मातृभूमि! हमारी प्रगति का आधार तुम ही हो। यह शरीर तुम्हारे पालन-पोषण से ही बना हुआ है। जीवन के सुख और आनंद के अनुभव के बाद जब हम मर जाएंगे तो तुम ही इस शरीर की देख-भाल कर पायेगी। हे मातृभूमि! यह शरीर तुम्हीं में मिल जाता है। मानव जीवन में मित्रों की संगति से हमारे हृदय की मलिनता दूर हो जाती है। मित्रों के प्रेम को पाकर मानव जीवन सुख और आनंद से पुलकित हो जाता है। अपने परिवार के लोगों के रिश्ते से हमारा मन आनंद से भर जाता है और ये नाते कभी टूटते भी नहीं हैं। अपने स्वजनों को देखकर मन हर्षित हो जाता है। इन सभी लोगों में बंधु-बांधवों तथा मित्र-स्वजनों में तुम्हारा तत्त्व ही सदा सर्वदा व्याप्त हो रहा है। हे मातृभूमि! तुम्हारी तरह महा महत्त्व को रखनेवाला इस धरती पर कोई नहीं है। अतः मानव को मातृभूमि के प्रति कृतज्ञ होकर सब तरह के बलिदान करने के लिए हमेशा तैयार रहना होगा। मातृभूमि की सेवा करके उसके उपकारों का बदला चुकाने का प्रयत्न हमें सदा करते रहना चाहिए।"

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्तजी मातृभूमि की विशिष्टता को बताते हुए जनता को राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति की प्रेरणा प्रदान करते हैं। सच में मातृभूमि का ऋण हम चुका नहीं पायेंगे।

3.2. 7 काव्यगत विशेषताएँ :-

1. गुप्तजी कट्ठर वैष्णव भक्त थे। किन्तु उनमें सांप्रदायिकता नहीं आने पायी है।
2. मातृभूमि की विशिष्टता का संदेश और देशभक्ति की प्रेरणा इसमें मिलती है।
3. राष्ट्रभक्ति और देश-प्रेम को व्यक्त किया गया है।
4. भाषा सरल, सरस और सुंदर खड़ीबोली है।
5. कवि मातृभूमि के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

3.2. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं
घुटनों के बल सरक-सरककर खड़े हुए हैं
परम हंस-सम बाल्य-काल में सब सुख पाले,
जिसके कारण धूल-भरे हीरे कहलाए।
हम खेले-कूदे हर्ष-युक्त जिसकी प्यारी गोद में
हे मातृभूमि! तुमको निरख मग्न क्यों न हो मोद में।

जवाब-

संदर्भ :- यह पद्यांश मैथिलीशरण गुप्तजी द्वारा रचित 'मातृभूमि' नामक कविता से दिया गया है। आपका उपनाम 'राष्ट्रकवि' है। आपको द्विवेदीकालीन कवियों में से अत्यंत लोकप्रिय एवं उस युग का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। 'साकेत', 'भारत-भारती', 'यशोधरा', 'द्वापर' इत्यादि आपकी अत्यंत प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। प्रस्तुत कविता में आप देश के प्रति अपना अपार प्रेम प्रकट कर रहे हैं।

व्याख्या :- कवि कहते हैं- "हे मातृभूमि! हम तुम्हारी धूलि में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं। घुटनों के बल पर सरक-सरक कर खड़े हुए हैं। धूलभरे शरीर से बचपन में खेले-कूदे और हीरे कहलाए। इसलिए हे मातृभूमि! तुम्हें देखकर मेरा मन क्यों न प्रसन्न हो। तुम्हें देखते ही बचपन की यादें हरी-भरी हो जाती हैं।"

विशेषता :- कवि के अनुसार मातृभूमि हमारे बचपन का ही नहीं समस्त जीवन का आधार है। उसका किया हुआ उपकार हमें कभी भूलना नहीं चाहिए।

2. पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा।
तेरा प्रत्युपकार कभी हमसे क्या होगा?
तेरा ही यह देह तुझी से बनी हुई है।
बस तेरे ही सुरस सार से सनी हुई है।
फिर अंत समय तू ही इसे अत्यंत निकट अपनायेगी,
हे मातृभूमि! यह अंत में तुझ में मिल जाएगी।

जवाब-

संदर्भ :- यह पद्यांश मैथिलीशरण गुप्तजी द्वारा रचित 'मातृभूमि' नामक कविता से दिया गया है। आपका उपनाम 'राष्ट्रकवि' है। आपको द्विवेदीकालीन कवियों में से अत्यंत लोकप्रिय एवं उस युग का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। 'साकेत', 'भारत-भारती', 'यशोधरा', 'द्वापर' इत्यादि आपकी अत्यंत प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं। प्रस्तुत कविता में आप देश के प्रति अपना अपार प्रेम व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या :- कवि कहते हैं- "हे मातृभूमि! हमने तुम्हारे द्वारा अगणित उपकारों को प्राप्त किया। हमसे क्या उन उपकारों का प्रत्युपकार हो सकेगा? हमारा शरीर तुम्हारे द्वारा ही बनाया गया है और तुम्हारे सुरस सार के द्वारा सराबोर हुआ है। यह शरीर अंतिम समय में पुनः तुम्हारे ही भीतर लीन हो जाएगा। इस शरीर को मृत्यु के समय में तुम्हीं प्यार से अपनाओगी।"

विशेषता :- कवि के अनुसार मातृभूमि की गोद में हमारी मौत हो जाएगी। चाहें जितने भी महान हों, अंत समय में हमें उसी मातृभूमि के अंदर जाना होगा।

3. जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें सुखदायक होता,
निज स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
नहीं टूटता कभी जन्म-भर जिनसे नाता,
उन सबमें तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है,
हे मातृभूमि! तेरे सदृश किसका महा महत्त्व है!

जवाब-

संदर्भ :- यह पद्यांश मैथिलीशरण गुप्तजी द्वारा रचित 'मातृभूमि' नामक कविता से दिया गया है। आपका उपनाम 'राष्ट्रकवि' है। आपको द्विवेदीकालीन कवियों में से अत्यंत लोकप्रिय एवं उस युग का प्रतिनिधि कवि माना जाता है। 'साकेत', 'भारत-भारती', 'यशोधरा', 'द्वापर' इत्यादि आपकी अत्यंत प्रसिद्ध काव्यकृतियाँ हैं। प्रस्तुत कविता में आप देश के प्रति अपना अपार प्रेम व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या :- कवि के अनुसार जिन मित्रों के मिलन से हमारे हृदय की सारी मलिनता दूर हो जाती है, जिस प्रेमी का प्रेम पाकर हमें सुख प्राप्त होता है, जिन बंधुओं को देखकर हमारा हृदय हर्ष से पुलकित हो उठता है, जिनसे कभी हमारा जन्मभर संबंध टूटता नहीं है, उन सब लोगों के अनुराग में वस्तुतः मातृभूमि का ही तत्त्व व्याप्त हुआ है। अर्थात् हम जो भी प्रेम या अनुराग इस जगत् में प्राप्त करते हैं वह सब मातृभूमि के हृदय से ही प्राप्त हुआ है। ऐसी मातृभूमि के समान इस दुनिया में किसका महत्त्व है?

विशेषता :- गुप्तजी इन पंक्तियों में मातृभूमि के अनुराग का भावविभोर हो, गुणगान कर रहे हैं। उनके अनुसार मातृभूमि का अनुराग हर जगह व्याप्त है। कविता में देशप्रेम और राष्ट्रीयता कूट-कूटकर भरी हुई है।

3.2. 9 बोध प्रश्न :-

1. मैथिलीशरण गुप्तजी के जीवन और कृतित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. गुप्तजी की काव्य-कृतियों का विस्तार से विवरण प्रस्तुत कीजिए।
3. 'मातृभूमि' कविता का सारांश लिखकर उसकी विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. 'मातृभूमि' कविता में अभिव्यक्त गुप्तजी की मनोभावनाओं को अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।
5. 'मातृभूमि कविता गुप्तजी की भावविभोरता एवं राष्ट्रप्रेम की सुंदर अभिव्यक्ति है'- इस उक्ति के समर्थन में एक लघु टिप्पणी लिखिए।
6. 'मातृभूमि' कविता की पंक्तियों को कंठस्थ करके लिखिए।
7. मातृभूमि की महत्ता पर अपने शब्दों में एक टिप्पणी लिखिए।

3.2.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
3. गुप्तजी का काव्य संसार - डॉ. वेदप्रकाश झा
4. राष्ट्रकवि गुप्तजी - डॉ. ओम चतुर्वेदी
5. काव्य दीप - संपादक- बि. राधाकृष्ण मूर्ति

Dr. P. Neeraja,
Reader,
Department of Hindi,
J.M.J. College(Autonomous),
Tenali.

पाठ - 4

अशोक की चिन्ता

इकाई की रूप रेखा:-

4. 1 पाठ का उद्देश्य

4. 2 प्रस्तावना

4. 3 कवि जयशंकर प्रसाद का परिचय

4. 4 कविता का मूलपाठ

4. 5 कठिन शब्दों के अर्थ

4. 6 कविता का सारांश

4. 7 काव्यगत विशेषताएँ

4. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ

4. 9 बोध प्रश्न

4.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

4. 1 पाठ का उद्देश्य :-

अ. इस पाठ के द्वारा छायावादी कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद का परिचय प्राप्त करेंगे।

आ. कलिंग युद्ध के बाद अशोक के मन की वेदना और पश्चात्ताप के बारे में इस कविता के द्वारा जानेंगे।

इ. छायावादी शैली से परिचित होंगे।

इ. प्रसाद जी की संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली से परिचित होंगे।

उ. कविता के कठिन शब्दों के अर्थ जानेंगे।

4. 2 प्रस्तावना :-

यह कविता आधुनिक हिन्दी साहित्य के छायावादी कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद के द्वारा रचित है। यह उनकी प्रसिद्ध कविताओं में से एक है। सम्राट अशोक अपनी वीरता, शासन की निपुणता के साथ-साथ हृदय-परिवर्तन के कारण भी इतिहास में चिरस्थान प्राप्त कर चुके हैं। विश्व के इतिहास में सम्राट अशोक के अलावा दूसरा कोई राजा ही ऐसा नहीं मिलता जिसने पश्चात्ताप के कारण युद्धों को त्यागकर अहिंसा-मार्ग का अवलंबन किया हो। कलिंग युद्ध में हुई नर-हिंसा को देखकर अशोक का मन पिघल जाता है। व्याकुल अशोक के मन में युद्ध के खिलाफ घृणा उत्पन्न होती है। यही कविता की पृष्ठभूमि है। युद्ध की भीषणता को देख सम्राट अशोक के मन में उत्पन्न वेदना एवं पश्चात्ताप इस कविता का मुख्य विषय है। कविता में अशोक की मानसिक वेदना एवं पश्चात्ताप आदि हृदयगत भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया गया।

4. 3 कवि जयशंकर प्रसाद का परिचय :-

आचार्य जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी के महान साहित्यकार हैं। आपका जन्म काशी के प्रसिद्ध 'सुँघनी साहु' परिवार में सन् 1881 ई. में हुआ। माता-पिता, भाई तथा पत्नी की अकाल मृत्यु के कारण उनका जीवन छोटी अवस्था में ही वेदनामय हो गया। आपने स्कूली शिक्षा सिर्फ आठवीं कक्षा तक प्राप्त की- परन्तु स्वाध्याय से अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी तथा बंगला के ग्रंथों का विशेष एवं गंभीर अध्ययन किया। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य के प्रति आपकी अपार श्रद्धा रही। उनके संपूर्ण साहित्य पर इन सबका गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। आपने कुछ दिनों तक 'इन्दु' नामक पत्रिका का भी संचालन किया। आर्थिक कठिनाइयों और मानसिक आघातों के कारण सन् 1937 ई. में प्रसाद जी की असमय मृत्यु हो गयी।

प्रसाद जी मुख्यतः छायावाद के प्रवर्तक कवि के रूप में विख्यात हुए। छायावाद अन्तर्मुखी सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति है। सौंदर्य का भावात्मक निरूपण, सूक्ष्म भाव-व्यंजना, प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, मानवीकरण, सुख-दुख, उन्मुक्त प्रणय, वेदना और रहस्यमय अनुभूति तक सीमित है। प्रसाद जी की छायावादी कविताएँ भावात्मक और कल्पनाशील हैं। गंभीर दृष्टि, भावना की मनोवैज्ञानिकता की गहराई और मूर्त्त अभिव्यंजना के कारण प्रसाद जी हिन्दी काव्य-जगत में प्रसिद्ध हैं। प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कलाकार थे। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबंध- सभी विधाओं में उन्होंने अद्‌भुत साहित्य का सृजन किया। उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक और आधुनिक सभी प्रकारों की रचनाएँ कीं। उनकी रुचि भारत के अतीत के गौरव की ओर रही। आपके साहित्य पर बौद्ध धर्म एवं आनंदवादी दर्शन का अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है।

आपकी कुछ प्रमुख काव्य कृतियाँ इस प्रकार हैं- 'आँसू', 'लहर', 'कामायनी', 'झरना', 'प्रेम पथिक' आदि। 'कामायनी' छायावादी शैली में रचित उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसमें जीवन के आध्यात्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सभी पहलुओं की व्याख्या हुई है। इस काव्य की विषय वस्तु 'मनु' की कथा है जो स्मृति-पुराणों में है। इस काव्य में मनु, मन का प्रतीक है तो श्रद्धा हृदय का तथा इड़ा बुद्धि का प्रतीक है। मनु का पुत्र ही आज का मानव है। मानव-जीवन के समग्र विकास के लिए हृदय और बुद्धि के संतुलन तथा समन्वय पर बल दिया गया है।

प्रसाद जी के नाटक अत्यंत प्रसिद्ध हैं। 'अजात शत्रु', 'स्कंदगुप्त' 'चन्द्रगुप्त', 'जनमेजय का नागयज्ञ' इत्यादि प्राचीन भारत के स्वर्णिम काल पर आधृत हैं। इनमें प्रसाद जी का राष्ट्र प्रेम और इतिहास प्रेम स्पष्ट लक्षित होता है। 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' आपके उपन्यास हैं। 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इंद्रजाल' आपके कहानी-संग्रह हैं।

4. 4 कविता का मूलपाठ :-

"जलता यह जीवन पतंग
जीवन कितना? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुंज से कण-कण,
तृष्णा यह अनल-शिखा बन-
दिखलाती रक्तिम यौवन।
जलने की क्यों न उठे उमंग।

है ऊँचा आज मगध-शिर-
पददल में विजित पड़ा गिर,
दूरागत क्रन्दन-ध्वनि फिर
क्यों गूँज रही है अस्थिर-
कर विजयी का अभिमान भंग?

इन प्यासी तलवारों से,
इनकी पैनी धारों से,
निर्दयता की मारों से,
उन हिंसक हुंकारों से,
नत-मस्त आज हुआ कलिंग।

यह सुख कैसा शासन का?
पतन रे मानव मन का!
गिरि-भार बना-सा तिनका,
यह घटाटोप दो दिन का-
फिर रवि-शशि-किरणों का प्रसंग!

यह महादम्भ का दानव-
पीकर अनंग का आसव-
कर चुका महाभीषणरव,
सुख दे प्राणी को मानव
तज विजय-पराजय की कुढ़ंग।

संकेत कौन दिखलाती,
मुकुटों को सहज गिराती,
जयमाला सूखी जाती,
नश्वरता गीत सुनाती,
नहीं थिरकते हैं तुरंग!
वैभव की यह मधुशाला,
जग पागल होनेवाला,
अब गिरा-उठा मतवाला,

प्याले में फिर भी हाला,
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग।
काली काली अलकों में,
आलस, मद नत पलकों में,
मणि मुक्ता की झलकों में,
सुख की प्यासी ललकों में,
देखा क्षण-भंगुर है तरंग।

फिर निर्जन उत्सव-शाला
नीरव नूपुर श्लथ माला,
सो जाती है मधुबाला,
सूखा लुढ़का है प्याला
बजती वीणा न वहाँ मृदंग।
इस नील विषाद गगन में-
सूख चपला-सा दुःख-घन में,
इस मरु-मरीचिका वन में-
उलझा है
चंचल मन-कुरंग।

आँसू कन-कन ले छल छल-
सरिता भर रही दृगंचल
सब अपने में हैं चंचल
छूटे जाते सूने पल,
खाली न काल का है निषंग।
वेदना विकल यह चेतन,
जड़ का पीड़ा से नर्तन,
लय-सीमा में यह कम्पन,
अभिनय है परिवर्तन,
चल रहा यही कब से कुढ़ंग।
करुणा गाथा गाती है,
यह वायु बही जाती है,
उषा उदास आती है,
मुख पीला ले जाती है,

बन मधु पिंगल संध्या सुरंग।
आलोक किरन है आती,
रेशमी डोर खिंच जाती,
दृग पुतली कुछ नच पाती,
फिर तम पट में छिप जाती,
कलरव कर सो जाते विहंग।

जब पल भर का है मिलना,
फिर चिर वियोग में झिलना,
एक ही प्रात है खिलना,
फिर सूख धूल में मिलना,
तब क्यों चटकीला सुमन रंग?
संसृति के विक्षत पग रे!
यह चलती है डगमग रे!
अनुलेप सदृश तू लग रहे!
मृदु दल बिखेर इस मग रे!
कर चुके मधुर मधुपाल भृंग।

भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग,
कंटक मिलते हैं, प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग।
जलता है यह जीवन-पतंग।

4. 5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

पतंग	:	शलभ, आग से आकर्षित होनेवाला कीड़ा
पुंज	:	राशि, समूह
अनल	:	आग
रक्तिम	:	लाल रंग का
तृष्णा	:	प्यास
विजित	:	जीता हुआ

क्रंदन	:	रोदन
गूँज	:	प्रतिध्वनि
अभिमान	:	अहंकार
पैनी	:	तेज़
हुँकार	:	गर्जन
निर्दयता	:	हृदयहीनता
तिनका	:	घास का टुकड़ा
घटाटोप	:	बादलों का घटा जो चारों ओर से घेरे हो
प्रसंग	:	संदर्भ
दानव	:	राक्षस
अनंग	:	मन्मथ
आसव	:	मदिरा
रव	:	आवाज
कुढ़ंग	:	बुरी रीति
नश्वरता	:	अशाश्वत
थिरकना	:	नृत्य की चंचल गति
तुरंग	:	घोड़ा
नीरव	:	मौन
श्लथ	:	शिथिल, ढ़ीला, मंद
लुढ़कना	:	लोटना, ढुलकना
मरु	:	रेगिस्तान
मरीचिका	:	मृगतृष्णा
कुरंग	:	हिरन, मृग
छल-छल	:	जल के प्रवाह की ध्वनि
सरिता	:	नदी
दृगजाल	:	पलक
कंपन	:	काँपना
उदास	:	व्याकुल
पिंगल	:	पीला रंग
डोर	:	धागा
विहंग	:	पक्षी
चटकीला	:	चमकीला
विक्षत	:	घायल

अनुलेप	:	लीपना, उबटन लगाना
कंटक	:	काँटा, बाधा
मग	:	मार्ग
तरंग	:	लहर

4. 6 कविता का सारांश :-

'अशोक की चिन्ता' जयशंकर प्रसाद जी की अनुपम कविता है। ईसा से 251 वर्ष पूर्व अशोक ने कलिंग राज्य पर आक्रमण किया था। इस युद्ध में लगभग एक लाख व्यक्ति मर चुके थे और करीब तीन लाख घायल हुए थे। तब अशोक, जो चण्डाशोक नाम से प्रसिद्ध था- इस नर-संहार को देखकर विचलित हो उठा। उसका मन जीवन से विरक्त हो गया और उसने प्रतिज्ञा की कि भविष्य में वह कभी युद्ध नहीं करेगा।

प्रस्तुत कविता में कलिंग-युद्ध की विजय के पश्चात् रात्रि के समय अपने भवन में बैठे हुए अशोक का वर्णन है जो रात्रि की उस नीरवता में युद्धभूमि से आनेवाली क्रंदन-ध्वनियों को सुनकर घबरा जाता है। वह अपने किए पर पश्चात्ताप करता हुआ सोचता है कि यह जीवन सिर्फ दो क्षण के लिए रहनेवाला है। किन्तु इस क्षणभंगुर जीवन में इतनी तृष्णा और प्यास क्यों भरी हुई है? आज मगध का राज्य जीत गया तथा कलिंग राज्य हार गया है तथा उसके पैरों पर पड़ा हुआ है। इन वीरों ने अपने प्राण दे दिये परंतु सिर नहीं झुकाया। सच्चा शासन तो मन पर होना चाहिए। खून की धारा बहाकर किया गया शासन, प्राप्त किया हुआ अधिकार सच्चा और स्थाई नहीं है।

अशोक फिर सोचता है कि जीवन का रूप परिवर्तनशील है। कभी सुख है तो कभी दुख। जिस प्रकार उत्सवशाला में रात्रि के प्रारंभिक प्रहरों में नाच, गान और उत्सव पूरे जोर पर रहता है परन्तु बाद में सब कुछ खतम हो जाता है और फिर नीरवता और निर्जनता का प्रभाव फैल जाता है, उसी प्रकार सुख के बाद दुख का प्रभाव फैल जाता है। सुख का प्रभाव तो थोड़ी ही देर तक रहता है जैसा कि बादल में बिजली की चमक। परिस्थिति चाहे जो भी हो- काल की गति कभी रूक नहीं जाती। वह तो चलती ही रहती है। सृष्टि के कण-कण में उदासी छाई हुई है।

अंततः अशोक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसे जीवन के लिए तड़पना व्यर्थ है। अतः वह अपने भावी कार्यों को लेकर यह निश्चय करता है कि वह इसी दुखी संसार को शीतलता तथा आराम पहुँचाने के प्रयत्न में शेष जीवन को अर्पित कर देगा। वह संसार के कंटीले मार्ग में फूलों की पंखुडियों की तरह अपने आप को बिखेर देगा तभी उसके जीवन की सार्थकता सिद्ध होगी।

4. 7 काव्यगत विशेषताएँ :-

यह कविता बौद्धधर्म से प्रभावित है। जग को क्षणभंगुर माना गया है। बौद्धधर्म का प्रधान सिद्धांत- अहिंसा एवं करुणा का प्रभाव इस कविता पर पूरी तरह छाया हुआ है। अशोक के हृदय के भावों को बड़ी सफलतापूर्वक चित्रित किया गया है। व्याकुल चित्त का निराशा से भर उठना तथा उसी निराशा में जीवन के सत्य को पहचानना बड़े ही आकर्षक और तार्किक रूप से वर्णित हुआ है। तत्सम शब्दावली से युक्त समासोक्तियों के कारण कविता की भाषा प्रवाहपूर्ण है।

4. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. **"जलता यह जीवन पतंग**
जीवन कितना? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुंज से कण-कण,
तृष्णा वह अनल-शिखा बन-
दिखलाती रक्तिम यौवन।
जलने की क्यों न उठे उमंग?"

जवाब:

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक अपने भवन में बैठे सोच रहे हैं। रणभूमि से आहतों की कराह एवं रुदन-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। वे अपने मन में इस प्रकार सोचने लगते हैं- 'यह जीवन कितना छोटा है। पतंगों की जिंदगी की तरह मानव जीवन भी क्षणभंगुर है। जीवन के क्षण अति लघु हैं। मानव मन की इच्छाएँ उग्र रूप धारण कर आग की लपट का रूप धारण करती हैं और यौवन की लालिमा दिखाकर आकर्षित करती हैं। मनुष्य इन इच्छाओं की पूर्ति करने के प्रयत्न में उसी प्रकार जल मरता है, जिस प्रकार आग की लपटों में पतंग।'

विशेषता :- अशोक के द्वारा जीवन की क्षणभंगुरता का संदेश दिया गया है। निर्वेद एवं निर्लिप्त भावनाओं का सूक्ष्म अंकन हुआ है।

2. **"है ऊँचा आज मगध-शिर-**
पददल में विजित पड़ा गिर,
दूरागत क्रन्दन-ध्वनि फिर
क्यों गूँज रही है अस्थिर-
कर विजयी का अभिमान भंग?"

जवाब:

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक अपने भवन में बैठे सोच रहे हैं। रणभूमि से आहतों की कराह एवं रुदन-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। वे अपने मन में इस प्रकार सोचने लगते हैं- 'आज के युद्ध के बाद मगध का सिर ऊँचा हुआ है। युद्ध में पराजित कलिंग, विजयी मगध-राज्य के पैरों के तले गिरा हुआ। दूर से युद्धभूमि के आहतों की क्रंदन-ध्वनि गूँज रही है। पर लगता है कि इस ध्वनि से मेरे इस विजयी मन के अभिमान का भंग हो रहा है।'

विशेषता :- इन पंक्तियों में अशोक के चंचल-चित्त का चित्रण है। कलिंग युद्ध के बाद अशोक के हृदय पर विजयगर्व की भावना की जगह धीरे-धीरे पश्चात्ताप का भाव छाने लगा।

3. "इन प्यासी तलवारों से,
इनकी पैनी धारों से,
निर्दयता की मारों से,
उन हिंसक हुंकारों से,
नत-मस्तक आज हुआ कलिंग।"

जवाब:

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक अपने भवन में बैठे सोच रहे हैं। रणभूमि से आहतों की कराह एवं रुदन-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इससे उनका मन उदास बन जाता है। वे अपने मन में कलिंग-पराजय को लेकर इस प्रकार सोचने लगते हैं- 'यह युद्ध कितना क्रूर होता है। राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए हम राजा लोग कैसे-कैसे हिंसक मार्ग अपनाते हैं। मगध की इस जीत के पीछे कितनी हिंसा छिपी हुई है। इन प्यासी तलवारों तथा इनकी पैनी धारों से किए गए निर्मम आघातों से आज कलिंग ने पूरी तरह अपना सिर झुका लिया है। वह मगध के विरुद्ध पराजय को स्वीकार कर चुका है।

विशेषता :- अशोक के अनुसार अतीव हिंसा से प्राप्त राज्याधिकार सुखदायक नहीं होता। वह युद्ध की भीषणता को लेकर सोचने लगता है, इसी बिन्दु पर उसका हृदय-परिवर्तन होता है।

4. "यह सुख कैसा शासन का?
पतन रे मानव मन का!
गिरि-भार बना-सा तिनका,
यह घटाटोप दो दिन का-
फिर रवि-शशि-किरणों का प्रसंग!"

जवाब:

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक अपने भवन में बैठे सोच रहे हैं। रणभूमि से आहतों की कराह एवं रुदन-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इससे उनका मन उदास बन जाता है। वे अपने मन में शासन और राज-काज को लेकर

इस प्रकार सोचने लगते हैं- "यह जीवन कितना क्षणभंगुर है। मानव इस जीवन में राज्याधिकार प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठता है। किन्तु यह शासन का सुख कितना तुच्छ है! यह वास्तव में मानव मन का पतन है। बलपूर्वक हिंसा के द्वारा प्राप्त अधिकार सच्चा नहीं होता, इसीलिए आज जीत का आनंद भी पहाड़ जैसा भारी लग लग रहा है। शासन का यह घटाटोप सिर्फ दो दिन का खेल है, फिर जिस प्रकार बादलों के हट जाने से आसमान में रवि और शशि की किरणों का प्रकाश कौंध जाता है, उसी प्रकार शासन के हट जाने से सुख और दुख जीवन में आँख-मिचौनी खेलने लगते हैं।"

विशेषता :- अशोक के द्वारा कलिंग युद्ध की विजय पर पश्चात्ताप प्रकट किया जा रहा है। अतीव हिंसा से प्राप्त राज्याधिकार सुखदायक नहीं होता।

5. **"यह महादम्भ का दानव-**
पीकर अनंग का आसव-
कर चुका महाभीषणरव,
सुख दे प्राणी को मानव!
तज विजय-पराजय की कुढ़ंग।"

जवाब-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- कलिंग विजय के बाद सम्राट अशोक अपने भवन में बैठे सोच रहे हैं। रणभूमि से आहतों की कराह एवं रुदन-ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इससे उनका मन उदास बन जाता है। वे अपने मन में कलिंग-पराजय को लेकर सोचने लगते हैं और स्वयं को इस प्रकार कोस रहे हैं- 'कामदेव का शराब पीकर मैं पागल बन गया हूँ। इच्छाओं से मदमत्त हो मैंने दानव की तरह भयानक गर्व-गर्जना करके सबका वध कर डाला। परन्तु इससे क्या लाभ है? अतः मुझे जीत-हार के इस बुरे खेल को छोड़कर संसार के प्राणियों को सुख देने का प्रयत्न करना चाहिए।'

विशेषता :- अशोक अपने किए पर पछताते हुए अपने को 'दानव' कह रहा है। प्रसाद जी का अभिप्राय यह है कि जो हिंसा करके मनुष्यों का वध करता है वह मानव कहलाने के योग्य नहीं रह जाता।

6. **"फिर निर्जन उत्सव-शाला**
नीरव नूपुर श्लथ माला,
सो जाती है मधुबाला,
सूखा लुढ़का है प्याला
बजती वीणा न वहाँ मृदंग।"

जवाब-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- सम्राट अशोक अपने भवन में बैठे सोच रहे हैं। कलिंग युद्ध समाप्त हो गया और मगध की जीत हो गयी। कलिंग देश का सर्वनाश हो गया। रणभूमि से आहतों की कराहें एवं रुदन-ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही हैं। इससे उनका मन उदास बन जाता है। वे इस जगत की तुलना मधुशाला से करते हुए मन में इस प्रकार सोचते हैं "शाम को मधुशाला में पीनेवाले, पिलानेवाले और नाचनेवाले सभी जोश से भरे रहते हैं। पर कुछ देर के बाद जब सारा जश्न बंद हो जाता है- तब धीरे-धीरे सब चले जाते हैं। नूपुर की ध्वनियाँ मंद पड़ जाती हैं, फूल की माला मुरझा जाती है तथा प्याले इधर-उधर लुढ़क जाते हैं। क्रमशः उत्सवशाला का रंग फीका पड़ जाता है। वीणा, मृदंग भी बंद हो जाते हैं।

विशेषता :- संसार एक मधुशाला है। जब तक लोग जीवित रहे तब तक खाना-पीना, भोग-विलास आदि चलते हैं। पर समय आने पर एक-एक करके सबको जाना पड़ता है।

7. **इस नील विषाद गगन में-**
सूख चपला-सा दुःख-घन में,
इस मरु-मरीचिका वन में-
उलझा है
चंचल मन-कुरंग।

जवाब-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- कलिंग युद्ध के बाद अशोक निर्लिप्त मन से इस जगत के बारे में विचार करते हैं -"नीले विशाल आसमान की भांति जीवन भी दुख से भरा है। इस दुख रूपी बादलों में सुख रूपी बिजली कभी-कभी चमक जाती है। अर्थात् जीवन में दुःख अधिक है और सुख कम। मेरा मन इस मरुस्थल रूपी वन की मरीचिका में भटक गया है।"

विशेषता :- संसार एक मधुशाला है। जब तक लोग जीवित रहें तब तक खाना-पीना, भोग-विलास आदि चलते हैं। पर समय आने पर एक-एक करके सबको जाना पड़ता है।

8. **करुणा गाथा गाती है,**
यह वायु बही जाती है,
उषा उदास आती है,
मुख पीला ले जाती है,
बन मधु पिंगल संध्या सुरंग।

जवाब-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- सम्राट अशोक कलिंग युद्ध की भीषणता से बहुत व्याकुल होते हैं। वे जगत की नश्वरता के बारे में इस प्रकार सोचने लगते हैं- 'सदा बहनेवाली हवा जगत की करुणा गाथा कहती है। उषा भी उदास होकर आती है और पीला मुख लेकर चली जाती है। इसी प्रकार रंगीन शाम भी उदास हो चली जाती है।'

विशेषता :- उषा काल में सारी पृथ्वी निस्तब्ध रहती है मानों उषा का मन उदास हो। उषा काल गुलाबी रंग में आता है किन्तु वह रंग धीरे-धीरे पीले रंग में बदल जाता है और उषा उसी रंग में वापस चली जाती है।

9. **"आलोक किरन है आती,**
रेशमी डोर खिंच जाती,
दृग पुतली कुछ नच पाती,
फिर तम पट में छिप जाती,
कलरव कर सो जाते विहंग।"

जवाब-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता से संकलित हैं। इसके कवि आचार्य जयशंकर प्रसाद हैं। प्रसाद जी छायावाद के श्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने 'कामायनी', 'आँसू', 'लहर' आदि काव्य लिखे। प्रस्तुत कविता 'अशोक की चिन्ता' में आपने अशोक के हृदय की भावनाओं का बड़ी सफलता से चित्रण किया।

व्याख्या :- अशोक कलिंगयुद्ध के बाद चिंतामग्न हो, इस प्रकार से सोचते हैं "जब सबेरा होता है तो ऐसा लगता है कि मानों रंगमंच की काली यवनिका (परदा) को प्रकाश की पतली डोर के सहारे किसीने खींच लिया है। अर्थात् सुबह होने पर कुछ देर तक लोगों की आँखों की पलकें नाचती हैं फिर अंधकार में छिप जाती हैं। भोर होते ही चिड़ियाँ जाग जाती हैं तथा कोलाहल करने लगती हैं पर अंधेरा होते ही वे सो जाती हैं।"

विशेषता :- अशोक की मनोवेदना में भी छायावादी शैली दिखाई गयी। कविता की इन पंक्तियों में प्रकृति का सुंदर चित्रण किया गया।

4. 9 बोध प्रश्न :-

1. छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद की जीवनी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. आचार्य जयशंकर प्रसाद के संपूर्ण साहित्य का परिचय देते हुए एक टिप्पणी लिखिए।
3. 'अशोक की चिन्ता' नामक कविता का सारांश लिखकर उसकी विशेषताएँ बताइए।
4. 'अशोक की चिन्ता' कविता की किन्हीं पंद्रह पंक्तियों की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।
5. 'अशोक की चिन्ता' कविता की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
6. सम्राट अशोक के हृदय-परिवर्तन संबंधी घटना पर लघु टिप्पणी कीजिए।

4.10 उपयुक्त ग्रन्थ-सूची :-

1. कवितान्तर	:	आलोक भारती
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ. नगेन्द्र
4. काव्य-दीप	:	संपादक- बि. राधाकृष्ण मूर्ति
5. प्रसाद का 'प्रसाद'	:	कमलानाथ चौहान

Sri M. Venkateswarlu,
Lecturer,
Department of Hindi,
A.C. College,
Guntur.

पाठ - 5.1

भारत माता

इकाई की रूप रेखा:-

5.1. 1 उद्देश्य
5.1. 2 प्रस्तावना
5.1. 3 कवि परिचय
5.1. 4 कविता का मूलपाठ
5.1. 5 कठिन शब्दों के अर्थ
5.1. 6 कविता का सारांश
5.1. 7 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
5.1. 8 काव्यगत विशेषताएँ
5.1. 9 बोध प्रश्न
5.1.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

5.1.1. उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई में हम श्री सुमित्रानंदन पंत की कविता 'भारत माता' का अध्ययन करेंगे।

1. यह कविता देश प्रेम से संबंधित कविता है।
2. पंतजी छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि हैं।
3. 'भारत माता' कविता संदेशात्मक कविता है।
4. इसमें पंतजी भारत वासियों की स्थिति का वर्णन कर रहे हैं।
5. कवि के अनुसार अपनी संतान की दीनता ही भारत माता की दीन स्थिति का कारण है।
6. भारत माता के गत वैभव को पुनः लाने के लिए संकल्प बद्ध होने का संदेश इसमें दिया गया है।
7. कविता के सारांश और विशेषताओं से अवगत होंगे।

5.1.2. प्रस्तावना:-

श्री सुमित्रानंदन पंत छायावादी कवि हैं। प्रमुख रूप से वे प्रकृति के कवि हैं। बचपन में आल्मोडा जैसी रमणीय प्रकृति की गोद में पलने के कारण उनकी कविता में प्रकृति प्रेम की भावना दिखायी पडती है। इसलिए सुकुमार कल्पना और कोमल भावनाएँ आपकी कविता में परिलक्षित होती हैं। पंतजी स्वच्छंदतावादी कवि भी हैं। उनकी परिवर्तनशील विचारधारा उनके काव्यों में दर्शित होती है। इसलिए उनके काव्यों में छायावाद के अलावा प्रगतिवाद और दार्शनिकता का प्रभाव है। लंबे समय तक हिंदी साहित्य की सेवा करने के कारण पंतजी की विचारधारा में जो परिवर्तन हुआ, वही उनके काव्यों में विषय-विविधता का कारण बना है। वे ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कवि हैं।

22 पंतजी की 'भारत माता' कविता ग्रामीण जीवन-सौंदर्य का वर्णन करनेवाली है। इसमें भारत माता के अतीत की गौरवपूर्ण गरिमा की तुलना में आज की दयनीय स्थिति का वर्णन है। इसमें भारतवासियों के लिए संदेश है कि माता के स्वरूप के पुनर्जीवन के लिए पूर्ण समर्पण भावना, दृढ़ निश्चय तथा शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता है। इसीके आधार पर कवि भारत माता के सुखद भविष्य की आशा प्रकट करते हैं।

5.1.3. कवि परिचयः-

छायावादी काव्य-धारा के परिपोषक तथा प्रकृति के कोमल सुकुमार कवि पंत जी का जन्म 20 मई सन् 1900 ई. को हिमालय के आँचल में स्थित कौसानी गाँव में हुआ। पंतजी का शैशव नाम गोसाई दत्त पंत था। माता सरस्वती देवी तथा पिता पंडित गंगादत्त थे। जन्म लेते ही उन्हें मातृस्नेह से वंचित होना पड़ा। पिता संपन्न जमिंदार थे। प्रकृति की गोद में पले बढ़ने के कारण प्रकृति के प्रति प्रेम की भावना इनकी कविता में आकर, वे प्रकृति-कवि बने। 28 दिसम्बर, 1977 को उनका स्वर्गवास हुआ। पंतजी की प्रारंभिक शिक्षा कौसानी की सरकारी स्कूल में हुई। माध्यमिक शिक्षा वारणासी एवं प्रयाग में हुई। गांधीजी के असहयोग आंदोलन का प्रभाव इनकी अंग्रेजी शिक्षा पर पड़ा। आपने घर पर ही संस्कृत और बंगला का अध्ययन किया।

प्रकृति प्रेम :- प्रकृति की रंगस्थली आल्मोडा में बाल्य और किशोरावस्था बिताने के कारण प्रकृति के प्रति पंतजी का लगाव असाधारण है।

देश प्रेम :- पंतजी पर गांधीजी का अधिक प्रभाव था। भारत माता की स्वतंत्रता की कामना के साथ-साथ स्वतंत्रता- प्राप्ति की खुशी में भी उन्होंने नवप्रभात के गीत गाये। वे ग्राम वासिनी, भूपथ प्रदर्शीनी, लोक जननी के रूप में भारत माता की प्रशंसा करते थे। भारत के अतीत की गैरव पूर्ण गरिमा की फिर से स्थापना की तडप से वे भारत वासियों को जागृत करना चाहते थे।

काव्य रचना :- पंतजी किशोरावस्था से ही काव्य रचना करते थे। यही रचना-क्रम उनके निधन तक चलता रहा। उनकी काव्य रचना लगभग पचास वर्षों के समय तक चली। इतनी लंबी अवधि में विचारों का परिवर्तन स्वाभाविक है। विचार धारा के अनुसार काव्य रचना में भी परिवर्तन सहज है। पंतजी की काव्य-रचना पर उनकी परिवर्तनशील विचारधारा का प्रभाव है। आरंभिक काल में प्रकृति उनके काव्य का आधार है, जो छायावादी विचारधारा के अंतर्गत है। उसके बाद उनकी काव्यरचना का आधार मानवीय दृष्टिकोण बना, जो प्रगतिवादी विचार धारा का प्रभाव है। इसीलिए शोषण के प्रति उन्होंने आवाज उठायी। बाद में उनकी कविता पर जीवन की समस्याओं के समाधान की खोज की दिशा- जो दार्शनिक विचारधारा है- का प्रभाव है। इस विचार धारा के पीछे अरविंद दर्शन का प्रमुख स्थान है। विकास क्रम की दृष्टि से पंतजी के काव्य तीन प्रकारों के माने जाते हैं, यथा-

1. छायावादी दृष्टिकोण युक्त
2. प्रगतिवादी दृष्टिकोण युक्त
3. दार्शनिक दृष्टिकोण युक्त

सन् 1918-1934 तक की रचनाएँ छायावादी दृष्टिकोण की, सन् 1934-46 तक की रचनाएँ प्रगतिवादी दृष्टिकोण की तथा सन् 1946 से की रचनाएँ दार्शनिक दृष्टिकोण की रचनाएँ मानी गयी हैं।

छायावादी रचनाओं की विशेषता :- पंतजी की इस प्रकार की रचनाओं में प्रकृति के प्रति आकर्षण की भावना चरम सीमा तक पहुँच गयी दिखायी पडती है। क्योंकि प्रकृति ही उनके लिए प्रेरणा शक्ति है। आलंबन के रूप में, उद्दीपन के रूप में उपदेशिका के रूप में, रहस्यात्मक रूप में नारी के रूप में, कोमल एवं मधुर के रूप में, कठोर एवं भीषण रूप में- विविध रूपों में उन्होंने प्रकृति का दर्शन किया और अपनी अभिव्यक्ति का सजीव अंकन अपनी काव्य रचना में की। 'वीणा' से 'गुंजन' तक की काव्य रचनाएँ इसके उदाहरण है।

प्रगतिवादी दृष्टिकोण की विशेषताएँ :- पंतजी की विचारधारा में प्रकृति के स्थान पर मानव की श्रेष्ठता तथा मानवीय दृष्टिकोण ने प्रभाव डाला। इसलिए उनका काव्य मानव की महत्ता स्वीकार करते हुए अपने चारों ओर के अत्याचार, शोषण आदि को दूर करने के प्रयत्न में संघर्षरत रहा। भावात्मकता के स्थान पर बुद्धिवादिता का प्रवेश होकर शोषित वर्ग के प्रति यथार्थ सहानुभूति का रूप धारण कर चुका। नये समाज की स्थापना की ओर कवि की प्रवृत्ति झुककर साम्यवाद की आकांक्षा बनी और प्रगतिवादी दृष्टिकोण का रूप धारण कर चुकी। 'युगांत' से 'ग्राम्या' तक की रचनाएँ इस दृष्टिकोण के उदाहरण हैं।

दार्शनिक दृष्टि कोण की विशेषताएँ :- संसार के कल्याण के लिए बौद्धिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति की आवश्यकता है। अरविंद से परिचय के बाद इस आवश्यकता की पहचान समझे पंतजी की विचारधारा में परिवर्तन आया। प्रगतिवादी पंत आध्यात्मवाद की ओर झुके। भौतिकवादी दृष्टिकोण आध्यात्मिकता की राह पकड़कर व्यापक मानवता के निर्माण का सशक्त माध्यम बना। यही पंतजी के दार्शनिक दृष्टिकोण की विशेषता है।

'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'चिदंबरा', 'लोकायतन' आदि इस दृष्टिकोण से प्रभावित रचनाएँ हैं। अव्यक्त सत्ता के साथ संबंध-स्थापन के बाद भौतिकता के प्रति विरक्ति की भावना उत्पन्न होती है। हृदय में जागृत नवीन भावना का आलोक हर चीज को प्रभावित करता रहता है। अर्थात् उनकी आध्यात्मिकता में अज्ञात सत्ता के दर्शन की जिज्ञासा है। इसी कारण से प्रकृति में उस सत्ता के दर्शन की कोशिश दिखायी पडती है।

भाषा :- पंतजी की भाषा तत्सम प्रधान खड़ीबोली है। अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी कहीं-कहीं दिखायी देता है। कोमल कांत पदावली का प्रयोग पंतजी की विशेषता है। लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, चित्रमयता, संगीतात्मकता और अलंकृति के दर्शन पंतजी की भाषा में हैं। शब्दशिल्पी के समान उन्होंने अपनी रचनाओं में भाषा का प्रयोग किया। उनकी भाषा परिमार्जित, सरस एवं सरल है। समयानुसार दूरूहता का भी समावेश है।

अलंकार :- पंतजी के काव्यों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों के साथ-साथ मानवीकरण, विशेषण, विपर्यय आदि पाश्चात्य ढ़गों के अलंकारों का भी प्रयोग हुआ। उनकी दृष्टि में अलंकार वाणी की सजावट के लिए नहीं, बल्कि भाव की अभिव्यक्ति के लिए है।

छंद विधान :- प्राचीन छंदों के स्थान पर नये छंदों का निर्माण पंत की विशेषता है। मुक्तक छंद का भी प्रयोग हुआ है। पंतजी के छंद विधान में भी क्रमिक विकास पाया जाता है जो भावों और विचारों के अनुरूप है।

पंतजी की रचनाएँ:-

1. काव्य रचनाएँ :- 'वीणा', 'पल्लव', 'ग्रंथि', 'युगांत', 'ग्राम्या', 'गुंजन', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', 'उत्तरा', 'युगपथ', आदि।

2. गद्य रचनाएँ :- 'साठ वर्ष एक रेखांकन', 'खादी के फूल', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'सौवर्ण' - निबंध

'ज्योत्स्ना' - नाटक

हार - उपन्यास और कुछ गीति नाट्य

पुरस्कार प्राप्त रचनाएँ :-

कला और बूढ़ा चांद	-	साहित्य अकादमी पुरस्कार
लोकायतन	-	सोवियत भूमि का नेहुरू पुरस्कार
चिदंबरा	-	ज्ञानपीठ पुरस्कार

इनके अलावा पन्तजी को भारत सरकार की ओर से 'पद्मभूषण' की उपाधि भी प्राप्त हुई।

5.1.4. कविता का मूलपाठ:-

"भारत माता ग्राम वासिनी
खेतों में फैला दृग श्यामल
शस्य भरा जन जीवन आँचल
गंगा यमुना में शुचि श्रमजल
शील मूर्ति
सुख दुःख उदासिनी!

स्वप्न मौन, प्रभु पद नत चितवन,
होठों पर हँसते दुःख के क्षण
संयम तप का धरती सा मन
स्वर्ग कला
भूपथ प्रवासिनी!

तीस कोटि सुत, अर्ध नग्न तन
अन्न वस्त्र पीडित, अनपढ़ जन
झाड फूस स्वर के घर के आंगन
प्रणत शीष
तरुतल वासिनी!

विश्व प्रगति से निपट अपरिचित
अर्ध सभ्य जीवन रुचि संस्कृत
रूढ़ि रीतियों से गति कुण्ठिता
राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी!

सदियों का खंडहर निष्क्रिय मन,
लक्ष्य हीन, जर्जर जन जीवन,
कैसे हो भू रचना नूतन
ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!

पंचशील रत, विश्व शांति व्रत :
युग-युग से गृह आँगन श्रीहत
कब होंगे जन उद्यत जाग्रत!
सोच मग्न,
जीवन विकासिनी!

उसे चाहिए लौह संगठन,
सुंदर तन, श्रद्धा दीपित मन,
भू जीवन प्रति अथक समर्पण,
लोक कला मयी,
रस विलासिनी!

5.1.5. कठिन शब्दों के अर्थ:-

ग्राम वासिनी	-	गाँवों में रहने वाली
शस्य भरा	-	सुख समृद्धि से भरा, हरियाली से भरा,
शुचि	-	साफ
श्रम जल	-	पसीना
नत चितवन	-	दृष्टि को नीचा किया हुआ
उदासिनी	-	दुःखी स्त्री
पथ	-	मार्ग
प्रवासिनी	-	अपने घर से बाहर रहने वाली

झाड फूस करना	-	दूसरों की सेवा में जीविका कमाना
प्रणत शीष	-	नत मस्तक
निपटना	-	सामना करना
गति	-	दशा
कुंठित होना	-	मंद पड़ना
ग्रसित	-	निगला हुआ
खण्डहर	-	जीर्ण
जर्जर	-	शिथिल
उद्यत	-	सचेत
अथक	-	बिना थकावट के
शरदेन्दु हासिनी	-	शरच्चन्द्र की ज्योत्स्ना के समान हँसनेवाली
विकासिनी	-	विस्तार करने वाली
लौह संगठन	-	फौलादी संगठन, दृढ़ नेतृत्व
दीपित	-	प्रकाश मान
समर्पण	-	त्याग की भावना

5.1.6. कविता का सारांशः-

प्रस्तुत कविता में कवि पंतजी भारत के अतीत-वैभव का चित्रण कर रहे हैं। उसकी तुलना में वर्तमान दुस्थिति पर प्रकाश डालते हुए पूर्व वैभव पाने के लिए जनता को संदेश दे रहे हैं। यह देशभक्ति पूर्ण कविता है।

भारत माता ग्राम वासिनी है। खेतों की हरियाली भारत माता का धूल भरा अंचल है। गंगा और जमुना पवित्र श्रम जल है। वह शील मुर्ति है। भारतमाता सुख-दुःख उदासिनी है। स्वप्नों की कल्पना के बिना अपनी आँखें नीचा करती हुई खुशी से हँसने वाले होठों पर दुःख की भावना लेती हुई संयमित और सहन-शील मन से स्वर्ग की कला तथा भूमंडल को पथ दिखलानेवाली वह प्रवासिनी बनी हुई है।

भारत माता की तीन करोड़ संतान अर्ध नग्न शरीरधारी हैं। उनके पास खाने के लिए खाना नहीं, पहनने के लिए वस्त्र नहीं। अशिक्षा के कारण रोजी-रोटी के लिए तरसते हुए दूसरों की सेवा करते हुए अपने जीवन बिता रहे हैं। सम्मानपूर्ण जीवन के अभाव से सिर उठाकर जीने के बजाय सिर झुकाकर, पेड़ों के नीचे रहते हुए दीन स्थिति में रह रहे हैं। दुनिया के प्रगति मार्ग पर चलने में असमर्थ भारत वासी, अर्ध सभ्य बनकर अर्थात् रूढ़ियों को मान्यता देते हुए अपनी उन्नति को कुंठित बनाते हुए जीवन बिता रहे हैं। इसलिए भारत माता राहुग्रसित शरद् ऋतु का चाँद हो गयी है।

सदियों पुरानी, लक्ष्य हीन, जर्जर, निष्क्रिय मन से युक्त जन जीवन रहे, तो नूतनता की रचना कैसे संभव होती है? इसीलिए ही दुनिया को गीता रूपी प्रकाश दी हुई भारत माता आज ज्ञान मूढ़ बनी हुई है। भारतमाता ने पंचशील की रचना करके विश्व को शांति का अनुपम वरदान दिया। युग-युगों से हिंसा से पीड़ित दुनिया को पंचशील का सृजन अमृतोपम शांति चिह्न बना। इतनी महिमासंपन्न भारतमाता आज श्रीरहित और दीन है।

जीवनविकासिनी भारतमाता आज सोचमग्न है कि कब उसके पुत्र जागकर उद्यत होंगे और देश की दीनता को कब समाप्त करेंगे। आज भारत को दृढ़ नेतृत्व और फौलादी संगठन की आवश्यकता है। भारत के विकास के लिए तन, मन और धन से समर्पित लोगों की आवश्यकता है। तभी लोककलामयी तथा रस विलासिनी भारतमाता को विश्व में पुनः प्रथम स्थान पर बिठाया जा सकता है।

5.1.7. संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. भारत माता ग्रामवासिनी..... सुख दुःख उदासिनी।

जवाब-

प्रसंग :- यह कवितांश सुमित्रानंदन पंतजी की कविता 'भारत माता' से लिया गया है। पंतजी छायावाद के आधार स्तंभ कवि हैं। आपको 'प्रकृति के सुकुमार कवि' कहा जाता है। प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन उनकी कविता की विशेषता है। छायावाद के साथ-साथ प्रगतिवाद और आध्यात्मवाद से संबंधी रचनाएँ पंतजी ने की हैं।

संदर्भ :- प्रस्तुत प्रसंग भारत माता के गौरवशाली अतीत का चित्रण करने तथा वर्तमान भारत की दुस्थिति को बताने के संदर्भ में है। इसमें भारत माता को 'ग्रामवासिनी' बताया गया है।

व्याख्या :- भारत गाँवों का देश है। इसीलिए भारत माता ग्रामवासिनी है। गाँव के खेतों की हरियाली से भरे हुए जीवन का संकेत है। इसी हरियाली से भारत माता का अंचल भरा हुआ है। भारत के श्रमजीवियों का पसीना गंगा और यमुना के पवित्र जल के समान है। भारत माता शील मूर्ति है। सुख-दुःख की उदासिनी है।

विशेषता :- इस कवितांश में कवि ने भारत का शस्यश्यामला के रूप में वर्णन किया है। यहाँ की मिट्टी स्वर्णिम है। चारों ओर फैली धूल भारत माता के अंचल को हरियाली से भरनेवाली है। अर्थात् धूल गंदगी का चिह्न है लेकिन खेतों से निकलने वाला दूध गंदगी का न होकर जीवन की हरियाली (सुख संपति) का चिह्न है। अर्थात् फसल की उत्पत्ति जीवन को तथा देश को शस्यश्यामल बनाती है। किसान मजदूरों के परिश्रम से निकला श्रम जल अर्थात् पसीना, गंगा -यमुना नदी जल के समान पवित्र है। अच्छे गुणों से युक्त जन जीवन के कारण भारत माता शील मूर्ति है। सुख-दुःख उदासिनी है। अर्थात् सम दर्शिनी है। इस पद्यांश में 'मानवीकरण' है जो छायावादी कविता की विशेषता है। भाषा तत्सम शब्दों से युक्त है।

2. तीस कोटि सुत ..... तरुतल वासिनी!

जवाब-

प्रसंग :- यह प्रसंग श्री सुमित्रानंदन पंत की कविता 'भारत माता' का अंश है। पंतजी छायावादी के आधार स्तंभ हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति के विविध रूपों का परिचय मिलता है। वे प्रकृति के सुकुमार कवि हैं।

संदर्भ :- कवि इस प्रसंग के द्वारा भारत माता की दीन स्थिति का वर्णन कर रहे हैं। शस्यश्यामल, खेतों से लहराती हुई भारत माता जो अन्नपूर्णा कहलाती थी, आज उसकी दीन स्थिति हो गयी है। उस चित्र को अंकित करते हुए कवि ने प्रस्तुत प्रसंग रचा। इसमें गाँवों से शहर की ओर झुकी जनता के प्रति संकेत है।

व्याख्या :- भारत माता की तीस करोड़ संतान अर्ध नग्न तन से, अन्न वस्त्रों के अभाव से पीडित है। अनपढ़ होने के कारण अज्ञान रूपी अंधकार में जीवन बिता रहे हैं। दूसरों के यहाँ झाड-फूस करते हुए जीविका कमा रहे हैं। इसलिए भारत माता अपना सिर झुकाकर तरुतल वासिनी बन गयी है।

विशेषताएँ :- "तीस कोटि सुत" - इससे यह समझ सकते हैं कि यह कविता तब की थी, जब भारत की जनसंख्या तीस करोड की थी। अथवा भारत की अधिकांश जनसंख्या की दुस्थिति का वर्णन है।

भारत माता एक समय शस्यश्यामला, स्वावलंबी, ज्ञान प्रदात्री रही। इसलिए भारतवासी भी सुख-संतोष युक्त स्वावलंबी जीवन बिताते थे। उनके पास अन्न-वस्त्र, सुख-सुविधा आदि की कमी नहीं थी। लेकिन आज स्थिति बदल गयी। सुख समृद्ध भारत माता अपनी संतान के अभावग्रस्त जीवन से दुःखी है। आज भारत की अधिकांश जनता के लिए अन्न-वस्त्रों की कमी है। अशिक्षा के कारण ज्ञान की कमी है। दूसरों की सेवा से अपनी जीविका पाते हैं, अर्थात् वे स्वावलंबी नहीं रहे। परतंत्रता के कारण भारत की स्वावलंबन शक्ति नष्ट हो गयी। भारत की जनता परायों की नौकरी करती हुई अपनी जीविका कमा रहीं है। वे स्वतंत्र रूप से अपना जीवन बिताने में असमर्थ हुए हैं। आज दुनियाँ में उनकी अपनी कोई पहचान नहीं। विश्व प्रगति में भारत का अपना कोई नाम नहीं। जिस प्रकार पेड़ के नीचे रहनेवालों का कोई स्थायी पता या पहचान नहीं होता, उसी प्रकार की स्थिति विश्व प्रगति के संदर्भ में भारत माता की भी है। इस स्थिति से कवि दुःखी हैं। सिर उठाकर अपने जयघोष की प्रशंसा सुनती 'भारत माता' को आज सिर झुकाकर रहना पड़ रहा है।

3. विश्व प्रगति से निपट अपरिचित ..... शरदेन्दु हासिनी।

जवाब-

प्रसंग :- यह प्रसंग 'भारत माता' कविता का अंश है। इसके कवि श्री सुमित्रानंदन पंत हैं। पंतजी छायावादी कविता के आधार स्तंभ हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। वे प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। प्रगतिवादी और दार्शनिक कवि के रूप में भी वे सुप्रसिद्ध हैं।

संदर्भ :- प्रस्तुत संदर्भ में कवि पंतजी भारतीयों के वर्तमान जीवन का वर्णन कर रहे हैं। प्रगति पथ से अपरिचित होकर रूढ़ि ग्रस्त जीवन से अपनी उन्नति कुंठित बनाते हुए भारत वासी किस प्रकार दयनीय स्थिति से गुजर रहे हैं- इसका चित्र प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या :- विश्व प्रगति से अपरिचित होकर, अर्ध सभ्य जीवन व्यतीत करते हुए, रूढ़िगत रीतियों में जकड़कर अपनी प्रगति और कीर्ति को कुंठित बनाते हुए भारत वासियों के कारण भारत माता 'राहु ग्रसित शरदेन्दु हासिनी' हो गयी है।

विशेषता :- इस कवितांश में भारत के अतीत की गौरवपूर्ण कीर्ति और आज की दुगति का वर्णन है। विश्व प्रगति से अपरिचित होकर रूढ़ि-रीतियों से उन्नति को कुंठित बनाकर, भारतवासी अपना जीवन चला रहे हैं। अपनी कुंठित प्रगति और रूढ़िग्रस्त संतान के जीवन से चिंतित होकर, शरच्चंद्रिका के समान ज्योत्स्ना बांटने वाली भारतमाता आज राहुग्रसित हो गयी है। भारत की सभ्यता और संस्कृति का दुनिया भर में आदर और सम्मान है। पर आज भारत माता की स्थिति दयनीय बन गयी। कवि के अनुसार भारतवासियों का आलसीपन एवं मानसिक पराधीनता ही इस स्थिति के कारण हैं। फिर भी वे भारतीय गरिमायुक्त संस्कृति के पुनर्जीवन की आशा भी करते हैं। राहु से ग्रसित चंद्रमा हमेशा के लिए अदृश्य नहीं होता। हाँ, कुछ समय के लिए अपना अस्तित्व खोता जरूर है लेकिन सदा के लिए नहीं। उसी प्रकार भारत माता रूपी चंद्रमा का भी हाल अच्छा होगा- यही आशा और विश्वास इसमें दिखाई देता है।

4.उसे चाहिए लौह संगठन ..... लोक कला मयी रस विलासिनी!

जवाब-

प्रसंग :- यह प्रसंग "भारत माता" कविता का अंश है। इसके कवि सुमित्रानंदन पंत जी हैं। पंतजी हिंदी के सुप्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। वे प्रकृति के सुकुमार कवि हैं। छायावादी कवि के अलावा पंतजी प्रगतिवादी और दार्शनिकवादी कवि भी हैं।

संदर्भ :- भारत माता के गौरवपूर्ण अतीत की तुलना में वर्तमान की विषादमय स्थिति का चित्रण करते हुए कवि भारत के सुखद भविष्य की आस्था रखते हैं। इसलिए भारत वासियों को संदेश दे रहे हैं कि भारत को फिर से गरिमामयी गौरव शाली बनाने का संकल्प करें। उस संकल्प की रूप रेखा बताते हुए कवि ने प्रस्तुत पंक्तियों की रचना की।

व्याख्या :- भारत वासियों की शक्ति का संगठन होना है। वह संगठन लोहे के समान दृढ़वान होना है। देश के प्रति श्रद्धा समर्पण की भावना से आगे बढ़ना है। तब भारत माता फिर से लोककलामयी और रस विलासिनी बन सकती है। विशेषता:- इसमें कवि पंतजी संगठित शक्ति की महानता बता रहे हैं। संकल्प बल की दृढ़ता काम की सफलता की सीढ़ी है। संगठित शक्ति वैयक्तिक शक्ति से महान है। जब संगठित शक्ति संकल्प शक्ति बनती है, तभी वह लोहे के समान दृढ़ बन जाती है और विजय पथ का निर्माण करती हुई मनुष्य को उन्नति के शिखर पर चढ़ाती है। उस संगठित शक्ति का उदाहरण स्वतंत्रता संग्राम है। इन पंक्तियों में कवि की आशावादी भावना के साथ-साथ जनता को सचेत करने का संदेश भी मिलता है। संगठित शक्ति का महत्त्व भी इसमें बताया गया है।

5.1.8. काव्यगत विशेषताएँ :-

यह कविता पंतजी के देश प्रेम तथा राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त कविता है। इस कविता में स्वाधीन भारत के यथार्थ जीवन का चित्रण तथा भावी प्रगति की आशा का संकेत मिलता है। परतंत्रता का प्रभाव एक ओर तथा अशिक्षा, अभावग्रस्त जीवन-निर्वाह दूसरी ओर - इसी कारण भारत माता की स्थिति दयनीय हो गयी है। इस दयनीय स्थिति के कारणों का इस कविता में वर्णन किया गया है।

विश्व में आध्यात्मिकता और संस्कृति के कारण भूपथ प्रदर्शिनी बनी भारत माता को आज अर्ध सभ्य और ज्ञान मूढ़ होना पड़ रहा है। भारत माता की दीन स्थिति से विचलित कवि ने भारत को पुनः उस सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वैभव से युक्त बनाने की प्रेरणा दी। भारत माता के प्रति अपने हृदय गत भक्ति और श्रद्धा का यह कविता एक सुंदर उदाहरण है। इसमें राष्ट्र प्रेम के साथ-साथ राष्ट्र निर्माण की चिंता भी दिखायी पड़ती है। परतंत्रता को दूर करना ही स्वतंत्रता और देश की उन्नति नहीं। स्वतंत्र शासन में देश को अभावग्रस्त नहीं, अभाव मुक्त करना है। खोयी हुई गरिमा तथा वैभव को फिर कमाना है। इसके लिए सामाजिक, धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़िगत भावनाओं पर विजय प्राप्त करनी है। इस विजय प्राप्ति में शिक्षा महत्व पूर्ण भूमिका निभाती है।

शिक्षा के द्वारा अत्याचार, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर निराशा को दूर कर सकते हैं तथा विश्व प्रगति के भागीदार बन सकते हैं। अर्थात् वैज्ञानिक आविष्कारों में अपना भी स्थान और नाम लिख सकते हैं। यद्यपि विज्ञान के नवीन आविष्कारों में भारत का योगदान नहीं के बराबर है, फिर भी सांस्कृतिक योगदान और ज्ञान के क्षेत्र में भारत का महत्व अमर है। स्वाधीन भारत ने विश्व में व्याप्त युद्धों को समाप्त करने तथा युद्धों से उत्पन्न भीषण वातावरण को समाप्त करने पंचशील सिद्धांत का निर्माण किया और शांति स्थापना की ओर अपना योगदान दिया। इस विषय की ओर इस कविता में

संकेत है। आधुनिक दुनिया को पंचशील एक अमूल्य भेंट है। इसीके द्वारा विश्व-मानवता युद्धों की विभीषिका से निर्भय होकर जीने लगी है। 'भारतमाता' कविता में एक ओर भारत की अतीत गरिमा जो सांस्कृतिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों की है उसका वर्णन, पराधीन भारत की दयनीय स्थिति से अत्पन्न कुंठा का प्रभाव, स्वतंत्र भारत की कमियाँ तथा मानवता के क्षेत्र में विश्व को दिये बहुमूल्य भेंट आदि पर प्रकाश है। कवि सुख समृद्ध, प्रगतिशील भारत की कल्पना कर रहे हैं। इस ओर भारत वासियों को जागृत कर रहे हैं। दृढ़ संकल्प से युक्त संगठित शक्ति से निष्क्रिय जीवन को सक्रिय बनाने का संदेश दे रहे हैं। तभी भारत माता पूर्ण रूप से स्वतंत्रता का आनंद ले सकती है। अर्थात् स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के साथ सांस्कृतिक गरिमामय रूप का भी पुनर्जागरण हो सकता है।

5.1.9. बोध प्रश्नः-

1. श्री सुमित्रानंदन पंतजी की कविताओं की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
2. "भारत माता" कविता का सारांश लिखिये।
3. स्वाधीन भारत की स्थिति का कवि ने कैसा वर्णन किया?
4. भारत माता की प्राचीन और वर्तमान स्थितियों के अंतर का वर्णन कीजिए।
5. भारत को प्रगति की ओर बढ़ने के लिए क्या करना है?
6. इस कविता के आधार पर पंतजी की देश-प्रेम भावना पर प्रकाश डालिये।

5.1.10. उपयुक्त ग्रंथ सूचीः-

1. बृहद् साहित्यिक निबंध - मनमोहन देशाय तथा निर्मला सिन्हा
2. छायावाद - डॉ. नामवरसिंह
3. हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - डॉ.उषायादव, डॉ. राजकिशोर सिंह
4. पन्तजी : जीवन तथा काव्य - श्री नारायण अगर्वाल
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र

Dr. U. Naga Sarvari,
Lecturer,
Department of Hindi,
S.R.R.&C.V.R. College,
Vijayawada.

पाठ - 5.2

तोड़ती पत्थर

इकाई की रूप रेखा:-

5.2. 1 उद्देश्य
5.2. 2 प्रस्तावना
5.2. 3 निराला - कवि परिचय
5.2. 4 कविता का मूलपाठ
5.2. 5 कठिन शब्दों के अर्थ
5.2. 6 कविता का सारांश
5.2. 7 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
5.2. 8 काव्यगत विशेषताएँ
5.2. 9 बोध प्रश्न
5.2.10 उपयुक्त ग्रथ-सूची

5.2.1 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई में सूर्यकांत त्रिपाठी निरालाजी की कविता "तोड़ती पत्थर" का अध्ययन करेंगे।

1. यह प्रगतिवादी धारा की कविता है।
2. यह कविता 'अनामिका' में संग्रहीत है।
3. इसमें शोषित वर्ग के प्रति कवि की सहानुभूति दिखायी पड़ती है।
4. शोषित वर्ग और अमीर वर्ग के जीवन के अंतर और शोषित वर्ग की दीनता का मर्मस्पर्शी चित्रण है।
5. कविता का सारांश और उसकी विशेषताओं से परिचित होंगे।

5.2.2. प्रस्तावना:-

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि हैं। छायावाद के चार मूल स्तंभों में उनकी गिनती है। छायावाद के होते हुए भी वे विद्रोही कवि हैं। इसलिए वे छायावाद के एकमात्र विद्रोही कवि हुए हैं। छायावादी के साथ-साथ वे रहस्यवादी, प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवि भी हैं। निरालाजी की स्वाभाविक प्रवृत्ति उनके साहित्य में दिखायी पड़ती है। कवि के अलावा उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक और संपादक के रूप में उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। स्वतंत्र प्रकृति के कारण उनके साहित्य में परिवर्तन शीलता दिखायी पड़ती है। इसीलिए वे विद्रोही और परिवर्तन के कवि रहे।

प्रस्तुत कविता 'तोड़ती पत्थर' शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति भावना का परिचय देनेवाली है। पत्थर तोड़ने वाली स्त्री की दीन और कारुणिक दशा के मार्मिक चित्रण के साथ-साथ श्रम जीवन का सम्मान भी इस कविता में दर्शाया गया है।

5.2.3 निराला - कवि परिचय:-

छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि निरालाजी का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल नामक रियासत में सन् 1896 में हुआ। वस्तुतः वे उत्तर प्रदेश के होने पर भी पिताजी की नौकरी के कारण बंगाल में स्थिर हो गये। निराला जी का जीवन बचपन से ही अभावग्रस्त रहा। माँ की मृत्यु के कारण तीन साल की उम्र में ही अभाव ग्रस्त जीवन का आरंभ हुआ। पिता की कठोर प्रवृत्ति ने इस दुःख को और भी अधिक कर दिया। मातृ प्रेम के साथ साथ पितृ स्नेह से भी उन्हें वंचित होना पडा। इक्कीस वर्ष की अवस्था तक आते-आते पिता और पत्नी की मृयु का दुःख उन्हें सहना पड़ा। बाद में प्रिय बेटी सरोजा की मृत्यु से उनका दुःखमय जीवन और भी दुःखी हो गया। आर्थिक संकट और पारिवारिक सदस्यों के स्नेह से वंचित निराला का जीवन सतत संघर्षमय बना।

शिक्षा एवं बाल्यकाल :- बंगाल प्रांत में रहने के कारण निरालाजी की प्रारंभिक शिक्षा बंगला में हुई। अध्ययन और अध्यवसाय के बल पर उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और हिंन्दी सीखीं। पढ़ाई के अलावा निराला खेल-कूद और संगीत में रुचि लेते थे। पत्नी के सांगत्य ने ही उन्हें हिंन्दी कविता लिखने की प्रेरणा प्रदान की।

वैयक्तिक खूबियाँ :- निराला जी स्वस्थ एवं बलिष्ठ शरीर युक्त लंबे-चौड़े आकार के हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति थे। खाने और खिलाने के शौकीन, पहनाऊ-ओढ़ाऊ और साज-शृंगार के प्रति रुचि रखनेवाले थे। वे उदार स्वभाव के व्यक्ति थे। वे इतने उदार दानशील थे कि दान करते समय उन्हें अपनी चिंता नहीं रहती थी।

संघर्षमय जीवन :- निराला जी के वैयक्तिक और साहित्यिक, दोनों जीवन अत्यंत संघर्षमय रहे। इसी संघर्ष ने उन्हें विद्रोही बनने को मजबूर किया। आपके वैयक्तिक और साहित्यिक जीवन में यह विद्रोह की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। रूढ़ियाँ और सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए उन्होंने अपनी पुत्री सरोजा का विवाह एक होनहार युवक से करवाया। कविता के क्षेत्र में भी उन्होंने बंधनों को तोड़ते हुए मुक्तक छंद में रचनाएँ कीं।

दार्शनिकता :- निरालाजी के जीवन में माता-पिता, पत्नी और पूत्री की मृत्यू से बड़ा आघात पहुँचा। अपने दुःखी मन की सान्त्वना के लिए वे रामकृष्ण मिशन के संपर्क में गये। निराला जी की विचारधारा में रामकृष्ण और विवेकानंद का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। आप अद्वैतवादी विचारधारा रखते हैं।

साहित्यक विशेषताएँ :-

भावपक्ष :- निराला जी की रचनाएँ प्रार्थना परक, प्रकृति परक, प्रेम विषयक, नारीसौंदर्य परक, देश-प्रेम से युक्त, आध्यात्मिक और सामाजिक भावनाओं से ओतप्रोत हैं। उनकी देशभक्तिपूर्ण रचनाओं में भारत माता की दास्य शृंखलाओं को तोड़ने की ओज पूर्ण प्रेरणा मिलती है।

निराला जी की नारी आदर्श और सौंदर्य की मूर्ति है। फिर भी नारी के प्रति सहानुभूति से युक्त दीन-हीन-करुणा का वर्णन आपकी कविता का विषय बनता है। 'विधवा' कविता हिंदू समाज में विधवा की दुस्थिति से विचलित कवि के दुःख का दर्पण है। 'तोड़ती पत्थर' शोषित वर्ग की नारी के प्रति संवेदना का परिचायक है। 'रानी और कानी' निराला की वैविध्यपूर्ण सौंदर्यात्मक दृष्टि का परिचय देनेवाली करुणरसात्मक कविता है। निराला जी की रहस्यवादी प्रवृत्ति में रवींद्रनाथ, रामकृष्ण, विवेकानंद आदि का प्रभाव दिखायी पड़ता है। वे अद्वैतवादी हैं। निराला जी की काव्य-रचना विविध विषयों का समाहार है। उनका भावपक्ष प्रेम, करुणा, राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-वर्णन और साम्यवाद जैसी विरुद्ध भावनाओं से युक्त है। उन्होंने स्वयं लिखा -"मेरे पास कवि की वाणी, कलाकार के हाथ, पहलवान की छाती और दार्शनिक के पैर हैं।"

कला पक्ष :-

भाषा :- कविता के भावों के अनुरूप निरालाजी की भाषा ओजस्वी, मधुर, सरल और बोल-चाल की है। इसमें कोमलता, शब्दों की मधुर योजना, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता आदि छायावादी विशेषताओं के साथ-साथ प्रतीकों की प्रचुरता, रूढ़ियों के विरोध के लिए क्लिष्ट भाषा का प्रयोग मिलता है। निराला जी की भाषा शुद्ध खड़ीबोली है। उस पर संस्कृत, बंगला और फारसी का प्रभाव भी दिखायी पड़ता है।

शैली :- निरालाजी की शैली उनकी प्रवृत्ति के अनुसार निराली है। स्वच्छंद छंदों का प्रयोग इनकी शैली की विशेषता है। मनुष्यों की मुक्ति की तरह वे कविता की भी मुक्ति के पक्ष में हैं। इसलिए उन्होंने मुक्तक और गीति-शैली में रचनाएँ कीं। स्वच्छंदता और नये प्रतीक उनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। निरालाजी की काव्य रचना में मुक्तक छंद और तुकांत छंद का प्रयोग है। जीवन की उन्नति में रूढ़ियों की मुक्ति के समान कविता में भी छंदों से मुक्ति पाने के पक्ष में निराला जी ने मुक्तक छंद का प्रयोग किया। निराला जी की कविता में शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है।

निराला जी की रचनाएँ:-

निराला ने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में रचना की। काव्य, उपन्यास, रेखाचित्र, आलोचना आदि क्षेत्रों को उन्होंने अपनी रचनाओं से सजाया।निरालाजी की पूरी कविताएँ प्रथम चरण, द्वितीय चरण और तृतीय चरण की कविताओं के अंतर्गत रखी गयी हैं। प्रथम चरण के अंतर्गत सन् 1921-36 तक की कविताएँ, द्वितीय चरण के अंतर्गत सन् 1937-46 तक की लिखी कविताएँ और तृतीय चरण के अंतर्गत सन् 1947-61 तक की लिखी गयी कविताएँ हैं। विषय की दृष्टि से प्रथम चरण की रचनाएँ उदात्त और उल्लासपूर्ण कविताएँ हैं। दूसरे चरण की कविताएँ संघर्षपूर्ण प्रवृत्ति के परिचायक हैं। अंतिम चरण की कविताएँ आशा-निराशा से युक्त, वैराग्यप्रधान एवं आध्यात्मिक कविताएँ हैं।

काव्य :- अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा, कुकुर मुत्ता, अणिमा, नए पत्ते, बेला, अर्चना, अपरा, सांध्यकाकली, आराधना आदि।

उपन्यास :- अप्सरा, अलका, प्रभवती, निरुपमा आदि।

कहानियाँ :- लिली, सखी, चतुरी-चमार, सुकुल की बीवी आदि।

रेखाचित्र :- कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

आलोचना :- रवीन्द्र कविता-कानन, प्रबंध पद्म, प्रबंध प्रतिमा और चाबुक।

5.2.4 कविता का मूलपाठ:-

"वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन,

गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार
सामने तरु मालिका, अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगी छा गई,
प्रायः हुई दो पहर
वह तोड़ती पत्थर!
देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्न तार
देखकर कोई नहीं
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं
सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।
एक छन के बाद वह काँपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा
मैं तोड़ती पत्थर!"

5.2.5 कठिन शब्दों के अर्थः-

पथ	-	मार्ग
तल	-	नीचे
नत	-	नीच की ओर
कर्म-रत	-	कर्म में लीन
प्रहार	-	मार (चोट)
प्राकार	-	दीवार
दिवा	-	दिन
झुलसाना	-	जलाना
लू	-	ग्रीष्म ऋतु की गरम हवा

रूई	-	कपास
गर्द	-	धूल
चिनगी	-	अग्निकण
छिन्न	-	टूटा हुआ
तार	-	राग अथवा सुर
माथा	-	मस्तक
ढुलकना	-	नीचे गिरना (ऊपर से नीचे गिरना)
सीकर	-	स्वेद बिंदु, पसीने की बूंद

5.2.6 कविता का सारांश:-

इलहाबाद के मार्ग पर एक स्त्री पत्थर तोड़ रही है। उस दृश्य को कवि ने देखा। पत्थर तोड़नेवाली एक पेड के नीचे बैठकर पत्थर तोड़ रही है। वह पेड छायादार नहीं है। वह स्त्री काले रंग की है और पूर्ण यौवनवती है। अपनी आँखें नीचा करके अर्थात् नीचे की ओर देखती हुई अपने प्रिय कर्म में मन लगाकर लीन हो गयी है। उसके हाथ में बड़ा हथौडा है। उससे वह बार-बार पत्थर पर प्रहार कर रही है।

स्त्री के सामने पेडों के समूह, प्राकारों से युक्त अट्टालिकाएँ हैं। गर्मियों के दिन हैं। धूप तेजी से चढ़ने लगी। दिन का रूप तमतमा रहा है। चारों ओर का वातावरण गर्मी से भरा हुआ है। झुलसानेवाली लू चलने लगी। भूमि रुई के समान जलने लगी। चारों ओर गर्मी के कारण धूलि चिनगारी के समान छा गयी है। प्रायः दो पहर का समय है। ऐसी भयंकर धूप में वह पत्थर तोड़ रही है। पत्थर तोडने वाली स्त्री ने एक क्षण के लिए सामने की अट्टालिकाओं को देखकर फिर कवि की ओर देखा। इसके कारण उस मज़दूरिन के पत्थर तोड़ने से जो संगीत लगातार उत्पन्न हो रहा था- वह रूक गया। कवि को लगा कि एक मधुर संगीत का स्वर-प्रवाह अचानक थम गया। इसलिए कवि ने उसे 'सहज सितार' कहा। उसकी दृष्टि में कवि को लगा कि मानों वह मार खाकर रोयी नहीं। एक क्षण के बाद वह कांपने लगी। उसके माथे से पसीने के कण ढुलक कर नीचे गिर पड़े। फिर भी वह कर्म में लीन हो गयी। कर्म में लीन होती हुई उस स्त्री को देखकर कवि को ऐसा लगा कि वह कह रही है कि 'बस, पत्थर तोड़ना ही मेरा काम है!'

5.2.7 संदर्भ सहित व्याख्याएँ:-

1. सामने तरुमालिका अट्टालिका ..... वह तोड़ती पत्थर ।

संदर्भ :- यह कविता प्रसंग 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता से दिया गया है। उसके कवि श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला है। निराला छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि हैं। उनका जन्म बंगाल में हुआ। 'तोड़ती पत्थर' प्रगतिवादी कविता है। इसमें श्रमिक वर्ग की स्त्री की दयनीय स्थिति का वर्णन है।

व्याख्या :- पत्थर तोडने वाली स्त्री के सामने दूसरी ओर वृक्षों की पंक्ति, भवन और प्रकार है। फिर भी वह गर्मी

के धूप में धूल चिनगारियों के बीच, झुलसाने वाली लू में बिना छायादार पेड़ के नीचे बैठकर पत्थर तोड़ रही है। गर्मियों के धूप से बचना मामूली बात नहीं। फिर भी वह स्त्री दोपहर की भीषण गर्मी में पत्थर तोड़ रही है।

विशेषता :- कवि निराला जी उसमें श्रम और संपन्नता का अंतर दिखा रहे हैं। गर्मियों के दोपहर की धूप में जब श्रामिक वर्ग की स्त्री झुलस रही है तो दूसरी ओर प्राकार युक्त अट्टालिकाओं की शीतल छाया व्यर्थ हो रही है। इसी विडंबना को कवि ने चित्रित किया। श्रम और सुख का वैर इस प्रसंग में देख सकते हैं। कविता में सामाजिक विघटन का शब्द चित्र अंकित है। अपना पेट भरने शोषित और श्रमिक वर्ग को धूप में काम करना पड़ता है तो उसी श्रम से निर्मित अट्टालिकाओं में संपन्न लोग सुख जीवन व्यतीत करते हैं। पूंजीवाद का वैभव और गरीबों की विवशता इसमें चित्रित है।

2. देखते देखा ..... जो थी सुनी झंकार।

संदर्भ:- यह प्रसंग सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की कविता 'तोड़ती पत्थर' से दिया गया। निराला जी छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि हैं। उनकी कविता में विद्रोह की भावना दिखायी पड़ती है। प्रस्तुत कविता प्रगतिवादी कविता है जो 'अनामिका' से ली गयी है। इस प्रसंग के द्वारा कवि निराला जी मानवीयता और संवेदना का चित्रण कर रहे हैं।

व्याख्या :- श्रमिक स्त्री ने कवि की ओर देखा। उसका देखना कवि को ऐसा लगा कि मानो वह मार खा कर भी रोयी नहीं। अर्थात् उस दृष्टि में में नीरव और गहन वेदना छिपी हुई है। उसके इस प्रकार देखने से कवि को लगा कि एक मधुर संगीत-प्रवाह रूक गया और रागों का तार अर्थात सुर छिन्न हो गया। इसीलिए कवि ने उस स्त्री को 'सहज सितार' कहकर संबोधित किया अर्थात् कवि को वह मज़दूरिन मधुर स्वर निकालने वाले सितार की तरह दिखाई दी।

विशेषता :- इसमें पत्थर तोड़ती महिला की मानसिक दशा तथा बेबसी का वर्णन है। जब कवि उसे सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखते हैं तब वह निराशापूर्ण दृष्टि से एक क्षण कवि को तथा सामने के भवनों को देखती है। तुरंत उसे कर्म मार्ग का बोध हो जाता है कि काम करना ही उसका लक्ष्य है और दूसरों की सहानुभूति से स्थिति में परिवर्तन नहीं आयेगा। क्यों कि उसे मालूम है कि प्रतिकूल वातावरण में वह काम कर रही है। अगर वह काम नहीं करती तो जीविका प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिए कडी धूप में झुलसती हुई भी वह इस तरह काम कर रही है कि धूप का उस पर कोई प्रभाव नहीं। "मार खाकर भी रो न पाई" यह उसकी विवशता है। इसी विवशता के कारण से वह अपनी भावनाओं को रोक कर दूसरे ही क्षण अपने काम में लीन हो जाती है। हथौड़ा चलाने से जो आवाज (नाद) आती है वह कवि के लिए सितार की झंकार के समान लगना - कवि की श्रामिक वर्ग के प्रति सहानुभूति का प्रतीक है। श्रम में सौंदर्य और संगीत (आनंद) रहता है। श्रम जीवन का सुंदर नाद सुनने के लिए, समझने के लिए सहानुभूतिपूर्ण हृदय की आवश्यकता है। उसी हृदय से कवि सितार के तार से निसृत झंकार सुन सके।

3. एक क्षण बाद ..... मैं तोड़ती पत्थर।

संदर्भ :- यह प्रसंग सूर्यकांत त्रिपाठी निरालाजी की कविता 'तोड़ती पत्थर' से लिया गया है। निराला जी हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। प्रस्तुत कविता प्रगतिवादी कविता है जो शोषित वर्ग के प्रति निराला जी की सहानुभूति व्यक्त करनेवाली है।

व्याख्या :- अपना काम बंद कर कवि की ओर देखने वाली स्त्री अपनी भवनाओं को बंद करके एक क्षण के बाद कांपने लगी और तुरंत बाद उसका कंपन बंद हुआ। उसके माथे से श्रम के सीकर ढुलककर नीचे गिरे। फिर वह अपने कर्म में ऐसा लीन हो गयी मानों कह रही हो कि "बस, मैं तोड़ती पत्थर।"

विशेषता :- इसमें श्रम जीवन की सुंदरता पर प्रकाश डाला गया है। श्रम के कारण उसके माथे से गिरने वाले पसीने ने उसे कर्मयोगी बना दिया है। वह आत्मबल के साथ अपना परिचय देने में समर्थ हुई। श्रमिक युवती अपने कर्म के द्वारा अपना आत्म सम्मान पाती हुई श्रम शक्ति का सजीव चित्रण प्रस्तुत करती है। वह प्रतिकूल परिस्थितियों को चुनौती समझकर उसमें विजय पाने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन करती है।

5.2.8 काव्यगत विशेषताएँ:-

'तोड़ती पत्थर' निराला जी की सशक्त प्रगतिवादी कविता है। इसमें शोषित वर्ग की दयनीय स्थिति का वर्णन है। अपने जीवन में शोषण और संघर्ष का शिकार बने निराला जी की शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति सहज और स्वाभाविक है। गर्मियों के दिन में दुपहर की वेला में इलहाबाद के मार्ग मर छायाहीन वृक्ष के नीचे बैठी पत्थर तोड़ने वाली स्त्री का दयनीय तथा मार्मिक चित्रण है। श्रमिक लोगों की विवशता यहाँ स्पष्ट गोचर होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उन्हें काम ऐसा करना पड़ता है मानों वही उनका एक मात्र प्रिय काम है। इसलिए कवि ने कहा- 'प्रिय कर्म रत मन'। श्रम जीवन के सौंदर्य से प्रभावित कवि को पत्थर तोड़ने की आवाज सितार की झंकार के समान सुनायी पड़ी।

श्रमिक वर्ग की दयनीय स्थिति, शोषक वर्ग का सुखमय जीवन - इन दो परस्पर विरोधी परिस्थितियों पर इस कविता में प्रकाश डाला गया है। अर्थात् समाज में व्याप्त आर्थिक विषमताओं पर प्रकाश डाला गया है। गर्मियों की तेज धूप तथा वातावरण के भयानक रूप का वर्णन इसमें किया गया है। कविता की भाषा सरल है। शैली में प्रतीकात्मकता है। अलंकारों का प्रयोग कविता की अन्य विशेषता है। 'रूई ज्यों जलती हुई भू' में उपमालंकार का प्रयोग है। पृथ्वी को जलती हुई रुई के समान बताया गया है। 'गर्द चिनगी छा गयी' - इसमें रूपक अलंकार का प्रयोग है। इस कविता में शब्द, लय, कथन आदि में छायावादी प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है। भावपक्ष एवं कलापक्ष के सुंदर समन्वय का यह उदाहरण है।

5.2.9 बोध प्रश्नः-

1. निराला जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिये ।
2. 'तोड़ती पत्थर' कविता का सारांश लिखिये।
3. 'तोड़ती पत्थर' कविता की प्रगतिवादी भावनाओं पर प्रकाश डालिये और काव्य गत विशेषताएँ बताइये।
4. 'तोड़ती पत्थर' कविता में वर्णित श्रमिक स्त्री की दयनीय स्थिति को रेखांकित कीजिए।
5. क्या मज़दूरिन पर लिखी कोई अन्य कविता आप जानते हैं? यदि जानते हैं तो उसके बारे में लिखिए।

5.2.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूचीः-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
2. महाकवि निराला और राग विराग - श्री राकेश
3. निराला की साहित्य-साधना, भाग-1 - रामविलास शर्मा
4. निराला - आत्महन्ता आस्था - दूधनाथ सिंह
5. निराला- कृति से साक्षात्कार - नंदकिशोर नवल

Dr. U. Naga Sarvari,
Lecturer,
Department of Hindi,
S.R.R.&C.V.R. Govt. Degree College,
Vijayawada.

पाठ - 6.1

परिचय

इकाई की रूपरेखा :

6.1. 1 उद्देश्य
6.1. 2 प्रस्तावना
6.1. 3 कवि- 'दिनकर' का परिचय
6.1. 4 कविता का मूलपाठ
6.1. 5 कठिन शब्दों के अर्थ
6.1. 6 कविता का सारांश
6.1. 7 काव्यगत विशेषताएँ
6.1. 8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
6.1. 9 बोध प्रश्न
6.1.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

6.1.1 उद्देश्य :-

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'परिचय' नामक कविता का अध्ययन करना इस पाठ का मुख्य उद्देश्य है। साथ-ही-साथ रामधारीसिंह 'दिनकर' का साहित्यिक परिचय दिलाना भी इस पाठ का उद्देश्य है।

कविता मानव-जीवन की अत्युत्तम उपलब्धियों में से एक है। कविता-पठन मानव-हृदयगत संवेदनाओं तथा अनुभूतियों को जागृत करनेवाला प्रौढ़ संस्कार है। कविता पढ़ना मात्र मनोरंजन की दृष्टि से ही नहीं बल्कि मानव की चित्तवृत्तियों के उदात्तीकारण की दष्टि से भी अपरिहार्य है। जड़वृत्ति को चेतनाभूत बनाकर व्यक्ति को समाजोन्मुख तथा प्रगतिशील बनानेवाली शक्ति कविता में विद्यामान है। उपर्युक्त लक्षणों की दृष्टि से हिन्दी काव्य के आधुनिक युग में रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता मात्र चेतनाशील ही नहीं- मानव मन को झकझोरने में भी सफल मानी जाती है। 'दिनकर' जी आधुनिक हिन्दी- काव्य के निर्माताओं में एक तथा खडीबोली कविता के ओजपूर्ण पार्श्व के प्रतिनिधि हैं। उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से समाज में क्रांति का आह्वान किया तथा अपने काव्य को नये युग का स्वर बनाकर समाज के सामने आदर्शों की अभिव्यक्ति रखी। आधुनिक हिन्दी कविता को नवीन चेतना स्वर, ओजपूर्ण वाणी तथा भाषा सामर्थ्य प्रदान करनेवाले 'दिनकर' जी की काव्यात्मक विशिष्टताओं से छात्रों को परिचित बनाना इस पाठ का आंतरिक एवं महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

6.1.2 प्रस्तावना :-

रामधारीसिंह 'दिनकर' जी की कविता 'परिचय' को पढ़ते समय 'दिनकर' जी के काव्य-युग की जानकारी प्राप्त कर लेना अपेक्षित होगा। अंग्रेजों के शासनकाल के पूर्व यद्यपि भारत सांस्कृतिक रूप से एक था तथापि व्यवहार की नजर से भिन्न-भिन्न राज्यों में बंटा हुआ था। कहना असत्य न होगा कि अंग्रेजों के आगमन के बाद ही भारत में राष्ट्रीयता का पुनर्बोध हुआ। यह आधुनिक काल की ही देन मानी जाती है कि भारत एक राष्ट्र के रूप में पहचाना जाने लगा।

जहाँ तक आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रश्न है- वह भारतेन्दु युग से आरंभ होकर क्रमशः विकास पाती चली आयी। उस विकासक्रम में राधारीसिंह 'दिनकर' एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। आपने आधुनिक हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक धारा को जनसामान्य के सुख-दुःख, आक्रोश एवं वेदना से जोड़ा। काव्य में कल्पनाशीलता एवं सौंदर्यदृष्टि को यथार्थ की कठोर भूमि पर लानेवाले अग्रदूत कवियों में एक 'दिनकर' जी के काव्य में अनेक अनदेखे व अनसुने जनजीवन-दृश्य पाये जाते हैं। उन्होंने अपने समय की देश-कालीन स्थिति को जागरूक होकर देखा और उसे प्रगतिवादी दृष्टि से प्राचीन जीवनमूल्यों के आधार पर खोजना चाहा। 'दिनकर' जी की मौलिकता उनके चिन्तन, परीक्षण एवं आत्मावलोकन में निहित है।

व्यक्तिगत प्रेम एवं सौंदर्यमूलक कविताएँ 'दिनकर' जी ने भी लिखीं। लेकिन अन्य कवियों की तुलना में जीवन के प्रति सहज एवं स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने की प्रवृत्ति उनमें अधिक है इसलिए तथाकथित प्रेम कविताओं तथा सौंदर्यपरक कविताओं में भी सहजता पायी जाती है। प्रस्तुत कविता 'परिचय' भी ऐसी कविताओं की ही कोटि में आती है जिनमें 'दिनकर' जी की भावुकता एवं क्रांतिकारी दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय लक्षित होता है। नयी मानवता की भावावेश-मयी कल्पना का चित्रण भी 'परिचय' कविता में हुआ है।

6.1.3 कवि 'दिनकर' का परिचय :-

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म सन् 1908 ई. को बिहार के मुँगेर जिला स्थित सिमरिया घाट नामक गाँव में हुआ था। आपका किसान परिवार था। दो वर्ष की छोटी उम्र में ही आपके पिताजी चल बसे। अतः आपका बाल्यकाल अत्यंत कठिन परिस्थितियों से गुजरा था। प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने बाद रामधारी सिंह को इतनी विपत्कर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा कि उन्हें भिक्षाटन भी करना पडा था। सन् 1928 में आपने हाईस्कूल की शिक्षा जैसे-तेसे पूरी कर ली थी। सन् 1932ई. में आपको पटना कॉलेज से बी.ए. आनर्स की परीक्षा में सफलता हासिल हुई।

स्नातक शिक्षा के उपरांत परिवार-पालन हेतु आपने एक हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक के रूप में नौकरी करना आरंभ किया था। इसके पश्यात् अथाह परिश्रम से एक-एक पद प्राप्त करते हुए जिंदगी में आगे बढ़े। इस सिलसिले में आपने सब रजिस्ट्रार, बिहार सरकार के प्रचार विभाग के उपनिदेशक आदि पदों का निर्वाह किया। सन् 1950ई. में आप मुजफ्फरपुर के कॉलेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष बने। सन् 1952ई. में आप राज्यसभा के मनोनीत सदस्य के रूप में चुने गये। तत्पश्चात् आप भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति बने। इसके बाद आपने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् तथा भारत सरकार के राजभाषा आयोग के सदस्य व सलाहकार के रूप में भी काम किया।

'दिनकर' जी की रुचि बाल्यकाल से ही काव्य की ओर रही थी। उनकी छाटी-मोटी रचनाएँ तत्कालीन पत्रिकाओं में छपती थीं। पर युवावस्था में उनकी रचनात्मक साधना जोर पकड़ती गयी और निरंतर चिंतन तथा परिश्रम ने उन्हें एक मँजे हुए लेखक के रूप में परिवर्तित किया। दिनकर जी ने इतिहास का भी गंभीर अध्ययन किया और ऐतिहासिक दृष्टिकोण ने उनकी रचनाओं को शाश्वत बना दिया। उन्होंने अपने समय से बराबर जुड़कर रचनाएँ कीं और स्वतंत्रता संग्राम में भी सक्रिय योगदान दिया। उन्हें छायावादोत्तर काल की 'राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक धारा' के सशक्त कवि कहना उचित होगा।

दिनकर जी के काव्य- संकलन इस प्रकार हैं :- 'रेणुका', 'रसवन्ती', 'हुंकार', 'द्वंद्वगीत', 'सामधेनी', 'नील कुसुम', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'ऊर्वशी' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा'। 'अर्द्ध नारीश्वर', 'काव्य की भूमिका', 'रेती के फूल', 'संस्कृति के चार अध्याय', 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'धर्म-नैतिकता और विज्ञान' आदि आपकी गद्य रचनाएँ हैं। 'दिनकर' जी की सर्वोत्तम गद्य कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' हिन्दी-साहित्य की धरोहर मानी जाती है। इस ग्रंथ के लिए आपको साहित्य अकादकी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'ऊर्वशी' काव्य के लिए आपको भारतीय साहित्य-क्षेत्र का अत्युत्तम पुरस्कार 'ज्ञानपीठ' मिला। भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से आपको सम्मानित किया।

प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों से आधुनिक क्रांतिकारी चेतना का सुन्दर समन्वय करनेवाले राष्ट्र कवि 'दिनकर' जी का स्वर्गवास सन् 1974ई. में हुआ।

6.1.4 कविता का मूलपाठ :-

"सलिल-कण हूँ कि पारावार हूँ मैं,
स्वयं छाया स्वयं आधार हूँ मैं।
बँधा हूँ, स्वप्न हूँ, लघु वृत्त में हूँ,
नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं।
समाना चाहती जो बीन-उर में,
विकल वह शून्य की झंकार हूँ मैं।
भटकता, खोजता हूँ ज्योति तम में,
सुना है, ज्योति का आगार हूँ मैं।
जिसे निशि खेजती तारे जलाकर,
उसी का कर रहा अभिसार हूँ मैं।
जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन,
अगम का पा सका क्या पार हूँ मैं?
कली की पंखडी पर ओस-कण में
रँगीले स्वप्न का संसार हूँ मैं,
मुझे क्या, आज ही या कल मरुँ मैं?
सुमन हूँ, एक लघु उपहार हूँ मैं।

जलद हूँ, दर्द हूँ, दिल की कसक हूँ,
किसी का हाय! खोया प्यार हूँ मैं।
गिरा हूँ भूमि पर नन्दन-विपिन से,
अमर-तरु का सुमन सुकुमार हूँ मैं।
मधुर जीवन हुआ कुछ प्राण! जब से
लगा ढोने व्यथा का भार हूँ मैं
रूदन ही एक पथ प्रिय का, इसी से-
पिरोता आँसुओं का हार हूँ मैं।
मुझे क्या गर्व हो अपनी विभा का?
चिता का धूलि-कण हूँ मैं;
पता मेरा तुम्हें मिट्टी कहेगी,
समा जिसमें चुका सौ बार हूँ मैं।
न देख विश्व पर मुझको घृणा से,
मनुज हूँ सृष्टि का श्रृंगार हूँ मैं।
पुजारिन! धूलि से मुझको उठा लो,
तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं।
सुनूँ क्या सिन्धु! मैं गर्जन तुम्हारा?
स्वयं युग-धर्म का हुँकार हूँ मैं।
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का,
प्रलय गाण्डीव की टंकार हूँ मैं।
दबी-सी आग हूँ भीषण क्षुधा की,
दलित का मौन हाहाकार हूँ में।
सजग संसार, तू निज को संभाले,
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूँ मैं।
बँधा तूफान हूँ, चलना मना है।
बँधी उद्दाम निर्झर-धार हूँ मैं।
कहूँ क्या, कौन हूँ? क्या आग मेरी?
बँधी है लेखनी, लाचार हूँ मैं।"

6.1.5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

सलिल-कण	:-	जल की बूँद
पारावार	:-	समुद्र
व्योम	:-	अंतरिक्ष
तम	:-	अंधकार
आगार	:-	कोष / निलय
निशि	:-	रात
अभिसार	:-	प्रतीक्षा / इंतजार
अगम	:-	जहाँ कोई पहुँच न सके / दुर्गम
पंखडी	:-	पुष्प का दल
ओस-कण	:-	भाप के कण
सुमन	:-	पुष्प
उपहार	:-	पुरस्कार
जलद	:-	मेघ / बादल
कसक	:-	पीडा
हाय	:-	दु:खसूचक-शब्द
नन्दन-विपिन	:-	देवलोक का उपवन
अमर-तरु	:-	कल्पवृक्ष
सुकुमार	:-	कोमल
भार	:-	बोझ
ढ़ोना	:-	वहन करना
रूदन	:-	रोने की क्रिया
पथ	:-	मार्ग
पिरोना	:-	हार या माला को गूँथने की क्रिया
विभा	:-	प्रकाश / दीप्ति
चिता	:-	अंतिम संस्कार का अग्नि क्षेत्र
घृणा	:-	द्वेष
शृंगार	:-	अलंकार
पुजारिन	:-	पूजा करनेवाली
सिन्धु	:-	समुद्र
गर्जन	:-	भारी आवाज
निर्घोष	:-	बड़ी ध्वनि
अशनि	:-	बिजली

गाण्डीव	:-	अर्जुन का प्रसिद्ध धनुष
टंकार	:-	धनुष की आवाज
आग	:-	अग्नि
क्षुधा	:-	भूख
दलित	:-	जिसका दलन किया गया हो..
हाहाकार	:-	पीडा सूचक ध्वनि
सजग	:-	जागा हुआ
क्षुब्ध	:-	क्रोधित
निर्झर-धार	:-	प्रवाह की धारा
उद्दाम	:-	शक्तिशाली
लाचार	:-	विवश
बीन	:-	सितार के आकार का वाद्य-यंत्र
निज को	:-	स्वयं को

6.1.6 कविता का सारांश :-

'परिचय' कविता 'दिनकर' जी की गूढ़ संवेदनाओं की क्रांतिकारी अभिव्यक्ति है। कविता पूर्ण रूप से आत्मकथा के रूप में चलती है जो कवि की अनेक भाव-भंगिमाओं को एकसाथ दिखाती है। कवि इस प्रकार कहते हैः-

"मैं एकसाथ दो प्रकार की अवस्थाओं से गुजर रहा हूँ। मैं जल की छोटी बूँद भी हूँ और पारावार भी! मैं एक स्वप्न - सी लघुवृत्ति में बंधा हुआ हूँ-लेकिन चाहे तो मैं आकाश का विस्तार भी प्राप्त कर सकता हूँ। मैं बीन के हृदय में से झंकृत होनेवाली मीठी तान हूँ और आसमान की खुली आवाज भी हूँ। मैं अंधकार में भटककर प्रकाश के लिए खोजता रहता हूँ...लेकिन सुना है कि मैं स्वयं ज्योति का आगार हूँ। अर्थात् वास्तव में मुझे प्रकाश के लिए खोजने की आवश्यकता ही नहीं, क्योंकि मैं स्वयं प्रकाश पुंज हूँ।

रात तारे जलकर जिस शक्ति के लिए अन्वेषण करते हैं, उसीका इंतजार मैं करता हूँ। मैं कई बार जन्म लेकर मर चुका हूँ। पर क्या मैं अपना गंतव्य पहुँच सका? कली की पंखड़ी पर ओस की बूँद में चमकनेवाला रंगीन सपना मैं ही तो हूँ!। मैं इस सुंदर सृष्टि का उपहार स्वरूप जन्मे फूल के समान हूँ। मैं नंदन-वन से भूमि पर उतरा हुआ हूँ। मैं देवताओं के कल्पवृक्ष का सुकुमार पुष्प हूँ। लेकिन मैं हृदय की वेदना का साकार रूप भी हूँ। मैं बादल बनकर किसी के दिल की कसक और दर्द को बरसाता हूँ।

मेरा मधुर जीवन प्रिय के बिछोह के कारण दुखपूरित हो चला है। इस व्यथा का बोझ ढ़ोते मैं बहुत थक-चला हूँ। मेरे प्रिय को पाने का एकमात्र रास्ता रूदन ही है और मैं आँसुओं को हार के रूप में पिरोकर दुख-दर्द की अभिव्यक्ति करता हूँ। मुझे अपना प्रकाश देखकर गर्व नहीं हो सकता। क्योंकि वह रोशनी चिता के धूलि-कण की है। मेरा पता मिट्टी के माध्यम से तुम खूब जान सकते हो- क्योंकि मैं सौ-सौ बार जन्म लेकर इसी मिट्टी में समा चुका हूँ। हे विश्व! तुम मुझे घृणा की नज़र से मत देखो। क्योंकि सृष्टि का अलंकार कहलानेवाला मैं मनुष्य जो हूँ। हे भगवान की पूजा करनेवाली पुजारिन...मैं तुम्हारे आराध्य की कण्ठमाला हूँ। भगवान को भी मुझ पर अनंत प्रेम और सहनुभूति है।

हे समुंदर...मैं तुम्हारा गर्जन क्या सुनूँ मैं युगधर्म का हुँकार जो हूँ। मैं आसमान से गिरनेवाली बिजली का कठोर स्वर हूँ और प्रलयकाल में घोषित होनेवाली गाण्डीव की टंकार हूँ। मेरी भीषणता के कई रूप हैं। मैं अन्नार्तों की क्षुधा (भूख) हूँ और दलित का मौन हाहाकार भी हूँ। हे संसार...तुम अपना बचाव करना! यदि मैं इन रूपों में टूट पड़ा तो क्रोधित समुद्र का ही रूप धारण कर जाऊँगा!

परन्तु मेरे उत्सर्ग के मार्ग में कई बाधाएँ हैं। मैं अनेक बंधनों में जकड़ा हुआ हूँ। मैं अब हाथ-पाँव चलाने में भी विवश हूँ। पर मेरी स्थिति ऐसी है जो बँधे हुए तूफान की और बँधी हुई प्रलय-प्रवाह-धारा की होती है। मैं किसी भी क्षण में प्रलयंकारी रूप ले सकता हूँ।"

6.1.7 काव्यगत विशेषताएँ :-

"परिचय" कविता राधारी सिंह 'दिनकर' जी की सशक्त प्रतीकात्मक कविता है। इसमें उन्होंने स्वयं को 'मानव' कहते हुए आत्मसंवाद की पद्धति अपनायी। कवि के अनुसार मनुष्य सृष्टि का अलंकार है और नाना शक्ति-समन्वित है। वह प्रकृति की सुन्दरतम अभिव्यक्ति है और साथ ही साथ प्रलयंकारी विध्वंसक शक्ति भी। उसमें करुणा, प्रेम, वात्सल्य एवं सौंदर्यबोध जैसे अनेक भाव और गुण पाये जाते हैं। वह अपनी शक्ति को स्वयं नहीं पहचान सकता - लेकिन सारी शक्ति उसीमें समाविष्ट है। वह अंधकार में प्रकाश के लिए खोजने को विवश हो चला पर वह नहीं जानता कि वह स्वयं ज्योतिर्मय रूप है। वह अपने निजस्वरूप को यानी उस परमशक्ति के अमेय रूप को जानकर उससे संबंध स्थापित करने के लिए लगातार कोशिश कर रहा है। इस प्रयास में उसने अनेक जन्म लिये और उस परमसत्य की जानकारी प्राप्त करने हेतु और भी अनेक जन्म लेता रहेगा।

वास्तविक रूप से मानव प्रकृति एवं परमात्मा का सबसे प्रियपुत्र है। वह प्रकृति का उपहार है और भगवान का कण्ठहार है। मनुष्य का प्रलयंकारी रूप दलित के हाहाकार में छिपा है जो समुद्र के गर्जन से भी भीषण है। कवि के अनुसार मानव युगधर्म का हुँकार है - अर्थात् युग का वह सबसे शक्तिशाली आविष्कार है। यदि वह क्रोधित होकर गरजेगा ता सारा संसार हिल जायेगा।

कवि अनेक प्रतीकों तथा गूढ़ बिम्बों से यह निरूपित करना चाहते हैं कि मनुष्यत्व कितना सौंदर्यशाली और शक्तिशाली है। मानवमात्र के लिए कवि की तड़प इस कविता में व्यक्त हुई। वे मनुष्य के बंधनों को तोड़ना चाहते हैं और उनका संदेश है कि मानव स्वयं एक कांतिपुंज है, यदि उसमें आत्मज्ञान का तत्व हो तो वह सारी समस्याओं का सामना कर सकता है। कविता में 'दिनकर' जी की आशावादी दृष्टि का भी साक्षात्कार होता है कि पीडित-ताडित जन की भूख प्रलय बनकर बरसेगी। वे निराशाग्रस्त जनता में चेतना भरते हुए कहते हैं कि 'जागो! तुम स्वयं प्रकाशपुंज एवं प्रलय-प्रवाह हो! अपनी आंतरिक शक्ति को जानकर समस्याओं पर बिजली बन टूट पडो।'

कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति का पुट भी मिलता है जब कवि किसी अज्ञात प्रिय के अन्वेषण की सूचना देते हैं। छायावादी परंपरा में लिखी यह कविता क्रांतिकारी चेतना एवं सशक्त भाव विभोरता का सुंदर समन्वय है। भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं गंभीर है। शैली प्रवाहमयी व सहज है। कहीं- कहीं उर्दू-फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कुल-मिलाकर यह कविता सोद्देश्य व सार्थक शीर्षकयुक्त भी है। मानव की आंतरिक शक्ति एवं उदात्तता से उसका 'परिचय' करवाना ही 'दिनकर' जी का मुख्योद्देश्य है।

6.1.8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

अ) "सलिल कण हूँ कि पारावार हूँ मैं
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूँ मैं।
बँधा हूँ - स्वप्न है - लघुवृत्ति में हूँ।
नहीं तो व्योम का विस्तार हूँ मैं।"

जवाब:-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'परिचय' नामक कविता-पाठ से दी गयी हैं। इस कविता के कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काव्य-युग के निर्माताओं में एक हैं। आपको छायावादोत्तर काव्य परंपरा में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवि माना जाता है। 'रेणुका', 'हुँकार', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'रश्मिरथी' आदि आपके काव्य हैं। 'ऊर्वशी' काव्य के लिए आपने ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। 'संस्कृति के चार अध्याय' आपकी बहुचर्चित गद्य-रचना है। प्रस्तुत कविता में आप मानव की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हैं।

व्याख्या :- 'दिनकर' जी के अनुसार मानव विश्व का सबसे शक्तिशाली प्राणी है लेकिन स्वयं को तुच्छ प्राणी समझ बैठा है। वह जल की छोटी सी बूँद के रूप में स्थित महासमुद्र है। लेकिन उसे अपनी स्थिति को लेकर बडा संशय है। वह यह तय नहीं कर पाता कि 'मैं छाया हूँ या उसका आधार!' वास्तव में वह दुनिया के लघुकार्यों में अटका हुआ है जबकि वह व्योम का विस्तार स्वयं है।

विशेषता :- कवि चिन्तित हैं कि मनुष्य खुद को कई- बंधनों में जकडा हुआ पाता है और बंदी बना हुआ है। उसकी सीमाएँ तय हो चुकी हैं, नहीं तो वह और प्रगति कर सकता है।

आ) "जिसे निशि खोजती तारे जलाकर,
उसीका कर रहा अभिसार हूँ मैं।
जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन,
अगम का पा सका क्या पार हूँ मैं ?"

जवाब:-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'परिचय' नामक कविता-पाठ से दी गयी हैं। इस कविता के कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काव्य-युग के निर्माताओं में एक हैं। आपको छायावादोत्तर काव्य परंपरा में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवि माना जाता है। 'रेणुका', 'हुँकार', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'रश्मिरथी' आदि आपके काव्य हैं। 'ऊर्वशी' काव्य के लिए आपने ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। 'संस्कृति के चार अध्याय' आपकी बहुचर्चित गद्य-रचना है। प्रस्तुत कविता में मानव की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या :- कवि कहते हैं "जब रात तारे जलाकर जिस शक्ति की खोज करती है - मैं भी उसीका इंतजार करता हूँ। मैं इस धरती पर सौ बार जन्म ले चुका हूँ। लेकिन मैं अपने गंतव्य को - उस दुर्गम स्थान को पहुँच सका हूँ या नहीं - यह मैं नहीं जानता।" कवि का अभिप्राय यह है कि मनुष्य निरंतर सत्यान्वेषण कर रहा है। उस परमसत्य को प्राप्त करना ही उसका गंतव्य स्थान है जो बड़ा ही दुर्गम है। इसी प्रयास में मनुष्य ने अनेक जन्म लिये और अपने गंतव्य को प्राप्त करने

तक और भी अनेक जन्म लेता रहेगा।

विशेषता :- 'दिनकर' जी प्रस्तुत पंक्तियों में किसी अज्ञात शक्ति की ओर संकेत करते हैं। इन पंक्तियों में रहस्यवाद की प्रवृत्ति की छाया मिलती है। छायावाद की परंपरा में लिखी यह कविता क्रांतिकारी चेतना एवं सशक्त भावाभिव्यक्ति का सुंदर समन्वय है।

इ) "जलद हूँ, दर्द हूँ, दिल की कसक हूँ,
किसी का हाय, खोया प्यार हूँ मैं।
गिरा हूँ भूमि पर नंदन-विपिन से,
अमर-तरु का सुमन सुकुमार हूँ मैं।"

जवाब:-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'परिचय' नामक कविता-पाठ से दी गयी हैं। इस कविता के कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काव्य-युग के निर्माताओं में एक हैं। आपको छायावादोत्तर काव्य परंपरा में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवि माना जाता है। 'रेणुका', 'हुँकार', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'रश्मिरथी' आदि आपके काव्य हैं। 'ऊर्वशी' काव्य के लिए आपने ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। 'संस्कृति के चार अध्याय' आपकी बहुचर्चित गद्य-रचना है। प्रस्तुत कविता में मानव की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या :- इन पंक्तियों में कवि कहते हैं - "मैं करुण की वर्षा करनेवाला बादल हूँ हृदय-वेदना से पूरित हूँ। मैं किसी दिल की कसक हूँ और किसीका खोया हुआ प्यार भी हूँ। इस प्रकार मैं मनोगत व्यथा का साकार रूप हूँ। वस्तुतः मैं देवलोक के नंदन-वन से इस भूमि पर आ गिरा हूँ। उस कल्पवृक्ष का में सुकुमार पुष्प हँ।" ऐसा कहकर कवि ने मनुष्य की हृदयगत पीड़ा को सफलरूप में दर्शाया है। उनके अनुसार मानव यद्यपि नंदन-वन के पुष्प के समान है तथापि उसका जीवन वेदनाभरित है।

कवि का अभिप्राय यह है कि मानव प्रकृति में सबसे संवेदनशील प्राणी है और उसके प्रेम की पहुँच विश्व के मानवमात्र तक होती है।

विशेषता :- कवि ने इस कविता में मानव की और मनुष्यत्व की नयी व्याख्या कर दी। उन्होंने मनुष्यत्व के कई आयाम इस कविता के माध्यम से दर्शाये। प्रस्तुत पंक्तियों में मानव-समूह की कारुणिक भावना का प्रतिपादन हुआ।

ई) "न देख विश्व पर, मुझको घृणा से,
मनुज हूँ सृष्टि का शृंगार हूँ मैं।
पुजारिन! धूलि से मुझको उठा लो,
तुम्हारे देवता का हार हूँ मैं।"

जवाब:-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'परिचय' नामक कविता-पाठ से दी गयी हैं। इस कविता के कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काव्य-युग के निर्माताओं में एक हैं। आपको छायावादोत्तर काव्य परंपरा में राष्ट्रीय-

सांस्कृतिक धारा के कवि माना जाता है। 'रेणुका', 'हुँकार', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'रश्मिरथी' आदि आपके काव्य हैं। 'ऊर्वशी' काव्य के लिए आपने ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। 'संस्कृति के चार अध्याय' आपकी बहुचर्चित गद्य-रचना है। प्रस्तुत कविता में मानव की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या :- कवि इन पंक्तियों अपना परिचय देते हुए कहते हैं " हे विश्व! तुम मुझे घृणा की नजर से मत देखो! क्योंकि मैं सृष्टि का अलंकार कहलानेवाला मनुष्य जो हूँ! हे भगवान की अर्चना करनेवाली पुजारिन! मैं तुम्हारे आराध्य की कण्ठमाला हूँ। भगवान को भी मुझ पर अपार प्रेम और सहानुभूति है। इसलिए उन्होंने अपनी माला के रूप में स्थान देकर मुझे अपनाया।" कवि का भाव यह है कि मनुष्य प्रकृति के समस्त प्राणियों में बेशकीमत है। अतः उसे हीनता की ग्रंथि से पीडित नहीं होना चाहिए।

विशेषता :- कवि आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग- निर्माता हैं। मानव की शक्ति का आविष्कार आधुनिक युग की सबसे बडी उपलब्धि है। उस युग के प्रतिनिधि के नाते कवि मानव की महत्ता का शंखनाद करते हुए कहते हैं कि 'मानव सृष्टि का अलंकार है।' यूरोपीय पुनर्जागरण (रेनेंसा) के महत्वपूर्ण सिद्धांत 'मानववाद' का प्रभाव कविता की इन पंक्तियों में प्रतिफलित होता है। यह कविता 'दिनकर' जी की विशाल दृष्टि एवं गहन अध्ययन का भी परिचायक है।

उ) "दबी सी आग हूँ भीषण क्षुधा की,
दलित का मौन हाहाकार हूँ मैं।
सजग संसार, तू निज को संभाले,
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूँ मैं।"

जवाबः-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ 'परिचय' नामक कविता-पाठ से दी गयी हैं। इस कविता के कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काव्य-युग के निर्माताओं में एक हैं। आपको छायावादोत्तर काव्य परंपरा में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवि माना जाता है। 'रेणुका', 'हुँकार', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'रश्मिरथी' आदि आपके काव्य हैं। 'ऊर्वशी' काव्य के लिए आपने ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। 'संस्कृति के चार अध्याय' आपकी बहुचर्चित गद्य-रचना है। प्रस्तुत कविता में मानव की उत्कृष्टता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या :- कवि इन पंक्तियों में मनुष्य के विध्वंसकारी रूप का चित्रण करते हैं। वे कहते हैं " मैं नवीन युग के मनुष्यत्व का प्रतिनिधि हूँ। मैं पीडित-ताडित जन की क्षुधा में आग की तरह दबा पडा हूँ। दलितों के मौन हाहाकार के रूप में सही समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे संसार! तू सजग हो जा.. और स्वयं को संभालना.. क्योंकि मैं प्रलयकाल के कृद्ध समुद्र की भांति टूट पडनेवाला हूँ!"

कवि आधुनिक मानव के वास्तविक रूप को पीडितों की भूख तथा दलितों के क्रंदन में देखते हैं। उनके अनुसार भूख ओर वेदना की सीमा समाप्त हो चुकी है और अब तक मौन-निस्पन्द पडी दलित जाति क्षुब्ध सागर की तरह प्रलय रूप धारण करने को उद्यत हो रही है।

विशेषता :- वर्तमान समाज की कठोर वास्तविकता से कवि मुँह नहीं मोड लेते। वे इन पंक्तियों के माध्यम से पीडित- दलित- चेतना को दर्शाते हैं साथ- ही- साथ समाज में क्रांति का आह्वान भी करते हैं।

6.1.9 बोध प्रश्न:-

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' के जीवन का परिचय दीजिए।
2. रामधारी सिंह 'दिनकर' के साहित्य का परिचय दीजिए।
3. रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'परिचय' कविता का सारांश लिखिए।
4. 'परिचय' कविता में अभिव्यक्त 'दिनकर' जी की विचारधारा को स्पष्ट करते हुए उस कविता की काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
5. 'परिचय' कविता की भाषा-शैली का परिचय दीजिए।
6. 'परिचय' कविता के माध्यम से 'दिनकर' जी किसका परिचय करवाना चाहते हैं?- सोदाहरण समझाइए।

6.1.10 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. काव्यदीप	-	बी. राधाकृष्ण मूर्ति
2. संस्कृति के चार अध्याय	-	श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास	-	डॉ. नगेन्द्र
4. आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ	-	डॉ. नगेन्द्र
5. छायावाद	-	नामवर सिंह

Dr. D. Nageswara Rao
Lecturer,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College (Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 6.2

यह दीप अकेला

इकाई की रूपरेखा :-

6.2.1 उद्देश्य
6.2.2 प्रस्तावना
6.2.3 कवि- 'अज्ञेय' का परिचय
6.2.4 कविता का मूलपाठ
6.2.5 कठिन शब्दों के अर्थ
6.2.6 कविता का सारांश
6.2.7 संदर्भ सहित व्याख्याएँ
6.2. 8 काव्यगत विशेषताएँ
6.2. 9 बोध प्रश्न
6.2.10 सहायक ग्रंथ-सूची

6.2.1 उद्देश्य :-

प्रस्तुत इकाई में श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कविता 'यह दीप अकेला' का अध्ययन करेंगे। इसके साथ 'अज्ञेय' का परिचय प्राप्त करेंगे तथा काव्यगत विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'अज्ञेय' प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। उन्हें व्यक्तिवाद का समर्थक भी कहा जाता है। आधुनिक हिन्दी काव्य-युगों में 'प्रयोगवाद' अपने आप में विशिष्ट है। इसकी कालावधि सन् 1943ई. से आरंभ होती है। प्रयोगवाद और नयी कविता में उन रचनाओं को स्थान मिलता है जो परंपरागत मूल्यों का विरोध करके नये मूल्यों और नयी शैली की स्थापना करती हैं। इन कविताओं का सर्वोत्तम प्रकटीकरण 'तार-सप्तक' में हुआ। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में "प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र है।" इस युग की कविताओं में नयी भाव-भंगिमाओं और शिल्पगत चमत्कारों को ज्यादा महत्व दिया गया। प्रयोगवादी कवियों ने अपनी जान-पहचान के जीवन को तथा भोगी हुई अनुभूतियों को ईमानदारी से व्यक्त करने का प्रयास किया।

ठीक इसी बिन्दु पर 'अज्ञेय' की कविता अन्य कविताओं से विशिष्ट जान पड़ती है। उन्होंने समाज की धारा में बहती कविता को व्यक्ति की ओर देखने पर बाध्य किया। आधुनिक युग में व्यक्ति क्रमशः टूटता गया और अकेलापन महसूस करने लगा। 'अज्ञेय' ने इस व्यक्ति की आशा-निराशाओं, रंगीन सपनों और मोहभंग का चित्रण किया। समाज में रहते हुए भी अपने में केंद्रित उसके अकेलेपन पर प्रकाश डाला। अतः 'यह दीप अकेला' कविता के माध्यम से 'अज्ञेय' ने जिन अंतस्संघर्षों और सूक्ष्म अनुभूतियों का चित्रण किया- उनको समझाना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

6.2.2 प्रस्तावना:-

सन् 1940 का दशक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसी समय महायुद्ध के दुष्परिणाम देखे गये और विशेषकर भारत में आधुनिक युग के नकारात्मक फल जनता के अनुभव में आये। यह समय मध्यवर्ग के पतन का समय था। उनकी आकांक्षाएँ तो महान थीं लेकिन वास्तविक स्थिति ठीक उनके विपरीत। भारतीय समाज का व्यक्ति आर्थिक विषमता तथा कठोर सामाजिक बंधनों का शिकार एक साथ हो गया। साहित्य में भी- विशेषकर कविता में भी व्यक्ति को स्थान देने की आवश्यकता महसूस की गयी। अतः समाज केंद्रित 'प्रगतिवाद' के दौर के बाद व्यक्तिकेंद्रित 'प्रयोगवाद' की कविता पनपने लगी।

प्रयोगवाद मुख्यतः व्यक्ति के अंतर्मन की सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इस काव्य में दबी हुई यौन-वासनाओं तथा कुण्ठाओं का विशृंखल चित्र मिलता है। क्योंकि यह सामाजिक बंधनों से संत्रस्त मध्यवर्गीय व्यक्ति की प्रतिक्रिया का फल है। छायावादी कवियों ने नारी-सौंदर्य का कल्पनानुभव किया तो प्रयोगवाद में कल्पना तथा मर्यादाओं रूपी परदा हटाकर दमित वासनाओं का खुला चित्रण किया गया।

'अज्ञेय' की कविताएँ उपर्युक्त सभी दृष्टियों से प्रयोगवाद का प्रतिनिधित्व करती हैं। कलाकार का यह धर्म होता है कि वह अपने परिवेश तथा जीवन की परिस्थितियों का ईमानदारी से चित्रण करे। 'अज्ञेय' ने अपनी कविताओं के माध्यम से यही किया। उन्होंने देखा-परखा और स्वयं जीकर अनुभव किया कि व्यक्ति समाज में रहकर भी अकेलेपन और हीनता-बोध से जीवन यापन कर रहा है। उनके इस परिशीलन की सही अभिव्यक्ति 'यह दीप अकेला' कविता में पायी जाती है।

6.2.3 कवि- 'अज्ञेय' का परिचय :-

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" का जन्म 7 मार्च, 1911 को उत्तरप्रदेश के 'कसिया' नामक गाँव में हुआ था। झआपका जन्म पुरातत्व-खुदाई शिविर में हुआ था।ट आपके पिताजी का नाम हीरानंद शास्त्री था जो प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता थे। 'सच्चिदानंद' कवि का बाल्यनाम अथवा असली नाम था और पिताजी का नाम था 'हीरानंद'। "अज्ञेय" आपकी कलम का नाम था। आपका आरंभिक बाल्य काल लखनऊ, श्रीनगर एवं जम्मू में बीता। आपकी प्ररंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। पण्डित, मौलवी और पादरी के द्वारा आपने संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त की। फिर अपने पिताजी के साथ नालन्दा और पटना में रहे। सन् 1921 से 1925 ई. तक आपका निवास स्थान दक्षिण भारत रहा- विशेषकर उदकमण्डल। फिर मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में इंटरमीडियट की शिक्षा पाकर 1929 ई. में बी.ए. की परीक्षा पास की। तत् पश्चात् आप एम.ए. (अंग्रेजी) में दाखिल हुए लेकिन परीक्षा से पहले ही पढाई छोड़ दी। इस समय उनका परिचय ऐसे क्रांतिकारी दल से हुआ था- जो अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र संघर्ष कर रहा था। सच्चिदानंद उनकी विचारधारा से प्रभावित हुए और उनसे जा मिले। सच्चिदानंद अपने साथियों समेत 1930 ई.में गिरफ्तार कर लिये गये। 1934 ई. तक आपको गिरफ़्तारी या नजरबन्दी का सामना करना पड़ा।

आपने साहित्य की रचना जेल में रहते समय ही आरंभ कर दी। 'हंस' में आपकी कुछ रचनाएँ प्रकाशित भी हुईं। 1936 ई. में आप 'सैनिक' नामक पत्रिका के संपादक बने और इसी बीच मेरठ के किसान आंदोलन से भी जुड़ते आये। आपने 1937-38 ई. में कलकत्ता जाकर 'विशाल भारत' का संपादन कार्य किया। उन पर एम.एन.राय की मानवतावादी विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा था। सन् 1939 से 1942 के बीच आप आकाशवाणी में काम करते रहे। इसी समय आपके नेतृत्व में 'फासिस्ट - विरोधी सम्मेलन' का आयोजन दिल्ली में किया गया। आपका स्वभाव बड़ा क्रांतिकारी और

किसी परंपरा के अधीन रहनेवाला कतई नहीं था। इसलिए उन्होंने भारतीय सेना में नौकरी को भी छोड़ दिया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद उन्हें यूनेस्को के निमन्त्रण पर यूरोप की यात्रा करनी पड़ी। तत् पश्चात् आपने जापान और अमेरिका के विश्वविद्यालयों में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्राध्यापक के रूप में काम किया।

1965 ई. में से 1970 ई. तक आप 'दिनमान' पत्रिका का संपादन कार्य भी निभा चुके। बाद में आपने जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर के रूप में एक साल तक काम किया। पुनश्च विदेश गये और जर्मनी के हॉडेलबर्ग विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर बने। अगले ही साल आपने हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक का काम संभाला। 4 अप्रेल, 1986 ई. को दिल्ली में आपका देहावसान हो गया। उनकी जीवन-रेखाओं को परखने से लगता है कि वे निरंतर यायावार थे और सतत परिवर्तनशील थे। उन्होंने कहीं भी टिककर काम नहीं किया और किसी नियम में बंधना उनके स्वभाव के खिलाफ था।

'अज्ञेय' का साहित्यिक-जीवन बड़ा फलद रहा। उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में रचनाएँ कीं। कविता उनकी सबसे प्रिय विधा थी। 1933 ई. में उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'भग्नदूत' का प्रकाशन हुआ। 'अज्ञेय' के काव्य संकलन इस प्रकार हैं :- 'चिन्ता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इंद्रधनु रौंदे हुए थे', 'अरी, ओ करुण प्रभामय', 'आँगन के पार - द्वार', 'सुनहले शैवाल', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर मुद्रा', 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' आदि। 'छोड़ा हुआ रास्ता' ओर 'लौटती पगडंडियाँ' आपकी कहानियों के संग्रह हैं। 'अज्ञेय' के कुल चार उपन्यास प्रकाशित हुए -'शेखर एक जीवनी' (दो भाग : प्रथम भाग 1941 में तथा द्वितीय भाग 1944 में प्रकाशित), 'नदी के द्वीप' (1952) तथा 'अपने अपने अजनबी' (1961)।

'अज्ञेय' का आलोचनात्मक साहित्य 'त्रिशंकु', 'आत्मनेपद', 'हिन्दी साहित्य-एक आधुनिक परिदृश्य', 'भवन्ती', 'अद्यतन' 'संवत्सर' आदि संग्रहों में प्राप्त है। आपने यात्रासाहित्य की रचना भी प्रचुर मात्रा में की। 'अरे यायावार रहेगा याद' तथा 'एक बूँद सहसा उछली' नामक पुस्तकें उनके यात्रा-वर्णन संबंधी रचनाएँ हैं। इनके साथ आपने अनुवाद भी किये। जैनेंद्र कृत 'त्याग पत्र' तथा शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय कृत बंगला उपन्यास 'श्रीकान्त' का आपने अंग्रेजी में अनुवाद किया। आपने अपनी अनेक कविताओं का भी अंग्रेजी में अनुवाद किया। इनके अलावा आपने अनेक महान ग्रंथों का संपादन भी किया। आपको 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' नथा 'केन्द्रीय साहित्य अकादमी' के पुरस्कार प्राप्त हुए।

सचमुच 'अज्ञेय' का साहित्य हिन्दी की धरोहर है।

6.2.4 कविता का मूल पाठ :-

"यह दीप अकेला स्नेह-भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो!
यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह स्वयं विसर्जित :
यह दीप अकेला, स्नेह-भरा

है गर्व-भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
वह मधु है: स्वयं काल की मौन का युग-संचय,
यह गोरसः जीवन-काम धेनु का अमृन पूत पिय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि ताकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयंभू, बह्म, अयुतः
इसको भी शक्ति दे दो।
यह दीप अकेला, स्नेह - भरा
है गर्व- भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसीने नापा,
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँध आते कडुवे तम में
यह सदा द्रवित, चिर जागरूक, अनुरक्त-नेत्र,
उल्लम्बु बाहु यह चिर-अखण्ड अपनापा।
जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय
इसको भी भक्ति को दे दो।
यह दीप अकेला, स्नेह भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।"

6.2.5 कठिन शब्दों के अर्थ :-

स्नेह	:-	ममता / तैल
मदमाता	:-	बहुत गर्व दिखाता
पंक्ति	:-	कतार, श्रेणी
पनडुब्बा	:-	जो पानी में गोते लगाकर तल की चीजें बाहर लाता है
कृती	:-	निपुण / कुशल
हठीला	:-	जो लडाई में स्थिरता दिखाता है
अद्वितीय	:-	जिसका कोई बराबर न हो / बेजोड़
विसर्जित	:-	जिसका विसर्जन अर्थात् तिरस्कार हुआ
युग-संचय	:-	युग (लंबे समय तक) का संकलन
गोरस	:-	गाय का दूध
कामधेनु	:-	देवताओं की वह गाय जो इच्छापूर्वक मात्रा में दूध देती है

अमृत-पूत	:-	अमृत से युक्त
पय	:-	दूध
अंकुर	:-	बीज
ताकता	:-	देखता
प्रकृत	:-	सहज/स्वाभाविक
स्वयंभू	:-	अपनी इच्छा से जन्मा
अयुत	:-	दस हजार की संख्या / असंबद्ध
लघुता	:-	हीनता
नापना	:-	किसी वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई को प्रमाणित करना
कुत्सा	:-	निंदा
अवज्ञा	:-	निरादार
धुँधआते	:-	धुंधले
सदा-द्रवित	:-	निरंतर गलनेवाला
चिर-जागरूक	:-	बहुन लम्बे समय से जागा हुआ
अनुरक्त-नेत्र	:-	अनुराग से भरे नेत्र
उल्लम्ब-बाहु	:-	जो हाथ को सीधा करके 'तैयार' की मुद्रा में हो!
अपनापा	:-	आत्मीयता
जिज्ञासु	:-	जानने की इच्छा रखनेवाला
प्रबुद्ध	:-	जागा हुआ / बुद्धिमान

6.2.6 कविता का सारांश :-

'यह दीप अकेला' 'अज्ञेय' की छोटी मगर सशक्त कविता है। इसमें उन्होंने मध्यवर्ग की त्रासदी एवं आधुनिक समाज में व्यक्ति के अकेलेपन का प्रभावशाली चित्रण किया। कविता का सारांश इस प्रकार है :

"यह दीप अकेला है जिसमें स्नेह (तेल) पूरी तरह भरा हुआ है। यह गर्व से मदमाता है। इसे पंक्ति को दे देना चाहिए। यह दीप अकेला रहकर भी अनेक गीत गाता है जिन्हें प्रायः और कोई नहीं गा सकता। यह जल में डूबकर, गोता लगाकर तल की चीजें ऊपर लानेवाले पनडुब्बे के समान है। अर्थात् मानव मन की अथाह-गाथाओं को भी यह कठिन परिश्रम करके बहिर्गत करता है। मानव-हृदय रूपी समुंदर में डूबकर सूक्ष्म अनुभूतियों के सच्चे मोती लानेवाला ऐसा कुशल कलाकार कहीं नहीं मिलेगा। यह दीप जनमानस में आग सुलगाने का काम भी बड़ी तत्परता से करता है। उसकी तरह आग जलाने की समिधा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

यह दीप जो अकेला है- वह और किसी का प्रतीक न होकर स्वयं मेरा ही साकार रूप है। अर्थात् मैं (कवि) ही वह अद्वितीय अकेला दीप हूँ जिसमें पूर्णतः स्नेह भरा हुआ है। यह दीप काल के मधु के समान मीठा होता है- अर्थात् सबको मधुर अनुभूति देता है। यह मौन युग का संचय है - अर्थात् संपूर्ण युग का यह प्रतिनिधित्व करता है। यह दीप जीवन-कामधेनु का दिया हुआ अमृततुल्य दुग्ध है। यह धरती को फोड़कर रवि की तरफ निर्भयता से देखनेवाले बीज के समान

है। यह सहज-स्वाभाविक, अपनी इच्छा से जन्मा स्वयंभू है। इसे भी शक्ति दे दो।

यह अपनी लघुता में कांपता नहीं है- अर्थात् यह अपनी कमजोरियों को विश्वास के साथ स्वीकार करता है। यह असीम पीड़ा को भोगता है जिसे इतनी गहराई से अन्य कोई नहीं सह सकता। यह दीप हमेशा निंदा, अपमान एवं अनादार के अंधकार का सामना करता हुआ निरंतर प्रकाश फैलाता है। यह अपनी शक्ति को निरंतर खोते हुए द्रवित होते हुए भी सहायक रहता है। यह दीप फिर भी नेत्रों में अनुराग भरकर दूसरों की मदद हेतु बाहु फैलता है। यह चिर अखण्ड अर्थात् कभी समाप्त न होनेवाला चैतन्यशील प्राणी है। इस दीप में जिज्ञासा, श्रद्धा और बुद्धि भी विद्यमान हैं।

यह दीप अकेला है मगर इसमें स्नेह भरा हुआ है और गर्व के साथ मदमाता है। इसे भी पंक्ति को दे देना चाहिए। अर्थात् इसे भी समाज की स्रवन्ति में भागीदार बनाना चाहिए।"

कवि इसमें दीप को कलाकार के प्रतीक के रूप में आयोजित करते हैं।

6.2.7 काव्यगत विशेषताएँ :-

'यह दीप अकेला' 'अज्ञेय' की प्रतिनिधि कविता है। इसमें उन्होंने एक कलाकार के प्रतीक के रूप में 'दीप' को रखकर उसके माध्यम से अपनी मनोभावनाओं का संप्रेषण किया। 'अज्ञेय' की विशेषता यह है कि किसी आदर्श के चक्कर में पड़कर अपनी आँखों के लिए, अपनी अनंभूतियों के लिए अप्राप्त जीवन को उन्होंने कभी नहीं लिखा। उन्होंने सिर्फ वही लिखा जो खुद जिया-देखा-भोगा और आत्मसात किया हो! इस कविता में भी उन्होंने स्वानुभूति के बल पर एक कलाकार की वेदना, उसकी शक्ति तथा उसके भावों-विचारों को शब्दबद्ध किया।

कलाकार जो स्वयं कवि ही है - दीप के समान होता है। लेकिन इस दीप की स्थिति हमेशा अकेलापन ही है - क्योंकि कलाकार की सोच आम जनता से हटकर होती है। व्यक्ति जब समाज से अलग सोचने लगता है तब पंक्ति से हट जाता है। अतः इस दीप अर्थात् कलाकार को पुनः पंक्ति में श्रेणीबद्ध करने की विनति कविता के द्वारा की गयी। यह कई अनसुने गीतों को गा सकता है। अर्थात् कलाकार समाज के उन लोगों की आवाज सुनाता है - जिनको कभी आवाज सुनाने का मौका नहीं मिला। यह कलाकार उस 'पनडुब्बे' के समान है जो जनमानस में गोता लगाकर उनकी भावनाओं को बहिर्गत कर सकता है। अर्थात् कवि या कलाकार हृदयगत संवेदनाओं तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को भी शब्दबद्ध करने में सफल होता है। इतनी बारीकी से यह काम और कोई नहीं कर सकता, अतः कवि ने इसे 'पनडुब्बा' कहा और सूक्ष्म भावानाओं की अभिव्यक्ति को 'सच्चे मोती' का नाम दिया। इतना ही नहीं, अज्ञेय के अनुसार समाज में कवि/कलाकार का कोई विकल्प नहीं होता- इसलिए उसे कविता में 'कृती' (निपुण/महाकुशल) का नाम देकर सम्मान दिया गया।

कलाकार जनमानस में चिनगारी सुलगाने का काम बड़ी मुस्तैदी से अदा करते हैं। चेतना की आग सुलगाने में यह श्रेष्ठ 'समिधा' की जिम्मेदारी निभाते हैं। कलाकार को अपनी कुण्ठाओं, लघुताओं तथा कमजोरियों से हमेशा लड़ना पड़ता है और अपनी कृतियों के माध्यम से वह इस अपमान और निंदा के अंधकार को भगा देता है। अर्थात् अनादर, अवज्ञा और अपमान झेलकर भी कलाकार समाज का मार्गदर्शन करता है। इस प्रक्रिया में वह स्वयं गल जाता है - इसलिए अज्ञेय ने उसे 'दीप' की संज्ञा दी।

कविता में कलाकार के अकेलेपन, कुण्ठा, संत्रास आदि का चित्रण किया गया। वह समाज में इतनी विषमताओं के मध्य भी प्रकाश देता है-अर्थात् अपनी रचनाओं के द्वारा अनगिनत स्वरों का प्रतिनिधित्व करता है। अतः कवि की प्रार्थना है कि उसे भी 'पंक्ति को दे देने' की आवश्यकता है-अर्थात् उसे भी समाज की धारा में सम्मिलित करें।

'यह दीप अकेला' कई दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण कविता है। यह समाज के द्वारा उपेक्षित कलाकार को सांत्वना देकर उसे अपनी ताकत से अवगत कराती है। इसमें अनेक प्रतीक एवं बिम्बों का उपयोग किया गया। भाषा सरल किन्तु शिल्पगत चमत्कारों से युक्त है। शैली मार्मिक ओर प्रयोगधर्मी है।

6.2.8 संदर्भ सहित व्याख्याएँ :-

1. "यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व-भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो,"

जवाबः-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ "यह दीप अकेला" नामक कविता से दी गयी हैं। इस कविता के कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'अरी ओ करुणामय प्रभात' आदि आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य के लिए आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

व्याख्या :- 'यह दीप अकेला' कविता अज्ञेय की छोटी मगर सशक्त कविता है। उनके अनुसार कवि / कलाकार दीप के समान है जो प्रायः अकेला होता है। इस दीप में स्नेह पूरी तरह भरा हुआ है और यह गर्व से मदमाता है। इसे भी पंक्ति को दे देना चाहिए अर्थात् समाज की धारा में उसे भागीदार बनाना चाहिए। प्रयोगवाद व्यक्ति को केंद्र बनाकर उसकी संवेदनाओं को शब्दबद्ध करता है। इसमें भी एक कलाकार की वेदना और अकेलेपन की पीड़ा को दर्शाने की चेष्टा की गयी।

विशेषता :- इन पंक्तियों में 'दीप' कलाकार का प्रतीक है और 'अकेला' शब्द उसकी खण्डित मनोस्थिति को सूचित करनेवाला शब्द है। अज्ञेय ने इस कविता में उपेक्षित कलाकार को सांत्वना दी है।

2. "यह जन है: गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा?
पनडुब्बा : ये मोती सच्ची फिर कौन कृती लायेगा?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित!"

जवाब :-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ "यह दीप अकेला" नामक कविता से दी गयी हैं। इस कविता के कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'अरी ओ करुणामय प्रभात' आदि आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य के लिए आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

व्याख्या :- कवि इन पंक्तियों में दीप का परिचय देते हुए कहते हैं "यह दीप कई जनों के हृदय-गीतों को गा सकता है। यह जनमानस के सागर में डूबकर सच्चे मोती बाहर लानेवाला कुशल पनडुब्बा है। यह लोगों के दिलों में आग

सुलगानेवाली समिधा है। यह अद्वितीय कलाकार का प्रतिनिधि है" और कवि कहते हैं कि वह दीप स्वयं उन्हींका रूप है।

विशेषता :- इन पंक्तियों में कवि कलाकार की सामर्थ्य का वर्णन करते हैं। कलाकार जनता का प्रतिनिधि होता है और लोगों में चेतना का वाहक भी। उस कलाकार की पीड़ा का चित्रण करना कविता का उद्देश्य है।

3. "वह मधु है : स्वयं काल की मौन का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन - कामधेनु का अमृत-पूत पिय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयंभू, बह्म, अयुत : इसको भी शक्ति दे दो।"

जवाब :-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ "यह दीप अकेला" नामक कविता से दी गयी हैं। इस कविता के कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'अरी ओ करुणामय प्रभात' आदि आपके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य के लिए आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

व्याख्या :- दीप कलाकार का प्रतीक होता है। यह दीप काल के मधु के समान मीठा होता है - अर्थात् सबको मधुर अनुभूति देता है। "यह मौन युग का संचय है" - अर्थात् संपूर्ण युग का यह प्रतिनिधित्व करता है। यह दीप जीवन -कामधेनु का दिया हुआ अमृततुल्य दूध है। यह धरती को फोड़कर रवि की तरफ निर्भयता से देखनेवाले बीज के समान है। यह सहज - स्वाभाविक, अपनी इच्छा से जन्मा स्वयंभू है। इसे भी शक्ति दे दो।"

विशेषता :- कलाकार की दीप के माध्यम से प्रशंसा की गयी। इन पंक्तियों में दीप को स्वयंभू एवं ब्रह्म का स्थान दिया गया।

4. "यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा,
वह पीड़ा, जिसकी गहराई को स्वयं उसीने नापा,
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधआते कड़ुवे तम में,
यह सदा-द्रवित, चिर जागरूक, अनुरक्त नेत्र,
उल्लम्बु-बाहु यह चिर अखण्ड अपनापा।"

जवाब :-

संदर्भ :- ये पंक्तियाँ "यह दीप अकेला" नामक कविता से दी गयी हैं। इस कविता के कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हैं। आप हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रयोगवाद और नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य के लिए आपको ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

व्याख्या :- दीप अपनी लघुता में कांपता नहीं है - अर्थात् यह अपनी कमजोरियों को विश्वास के साथ स्वीकार करता है। यह असीम पीड़ा को भोगता है जिसे इतनी गहराई से अन्य कोई नहीं सह सकता। यह दीप हमेशा निंदा, अपमान एवं अनादर के अंधकार का सामना करते हुए निरंतर प्रकाश फैलाता है। यह अपनी शक्ति को निरंतर खोते हुए- द्रवित

होकर भी मददगार रहता है तथा किसीको सहायता करने हेतु बाहु फैलता है। यह चिर अखण्ड - अर्थात् कभी समाप्त न होनेवाला चैतन्यशील प्राणी है। यह आत्मीयता का चिह्न है।

विशेषता :- कलाकार को अपनी कुण्ठाओं तथा लघुता का बोध है। अनेक कठिनाइयों को झेलकर भी वह समाज के लिए मार्गदर्शन करता है। दीप के साथ कलाकार का सामंजस्य सार्थक बन पड़ा है।

6.2. 9 बोध प्रश्न :-

1. अज्ञेय के जीवन का विस्तार से विवेचन करते हुए उनकी यायावर-प्रवृत्ति का परिचय दीजिए।
2. अज्ञेय के साहित्य का परिचय दीजिए।
3. प्रयोगवाद की उपलब्धि के बारे में एक लघु टिप्पणी लिखिए?
4. 'यह दीप अकेला' कविता का सारांश लिखिए?
5. कवि ने दीप को किसके प्रतीक के रूप में बताया और उनका प्रतीकत्व कहाँ तक उचित प्रतीत होता है?
6. 'यह दीप अकेला' कविता की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।

6.2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें :-

1. 'नयी कविता और अस्तित्ववाद' - डॉ.रामविलास शर्मा
2. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' - डॉ. नगेन्द्र
3. 'कविता के नये प्रतिमान' - नामवर सिंह
4. 'काव्य दीप' - संपादक- बी. राधाकृष्ण मूर्ति
5. आधुनिक हिन्दीकाव्य की प्रवृत्तियाँ - डॉ. नगेन्द्र

Dr. D. Nageswara Rao
Lecturer,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College(Autonomous),
Vijayawada.

हिन्दी साहित्य का इतिहास

पाठ - 7

आदिकाल/वीरगाथा काल और चंदबरदाई

इकाई की रूपरेखा :-

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 काल विभाजन
7.4 नामकरण
7.5 आदिकाल-परिस्थितियाँ
7.5.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ
7.5.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
7.5.3 धार्मिक परिस्थितियाँ
7.5.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ
7.6 आदिकाल की विशेषताएँ
7.7 प्रतिनिधि कवि चन्दबरदाई तथा उनका पृथ्वीराज रासो
7.8 बोध प्रश्न
7.9 सहायक ग्रन्थ-सूची

7.1 उद्देश्य :-

1. इस इकाई में हिन्दी साहित्य के काल विभाजन के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
2. आदिकाल के नामकरण के बारे में विचार करेंगे।
3. आदिकाल की परिस्थितियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
4. आदिकाल के प्रतिनिधि चन्दबरदाई तथा उनके द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' के बारे में परिचय प्राप्त करेंगे।

7.2 प्रस्तावना :-

जिस प्रकार किसी नदी की धारा कई रूप बदलती है- कभी पहाड़ों से गर्जन करती हुई निकलती है, कभी उछलती-कूदती आगे बढ़ती है और मैदानों में आकर शांतभाव से बहने लगती है- उसी प्रकार साहित्य की गति भी सम नहीं होती। वह अनेक रूप बदलती है और हर मोड़ पर अपने पूर्व रूप से भिन्न लगती है। इस आधार पर हमें विभिन्न कालों के साहित्यिक रूपों में जो अंतर दिखाई देता है, वही हमें उसके विभाजन की प्रेरणा देता है। साहित्य का काल विभाजन करके

हम विभिन्न युगों के साहित्य और उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन सुविधापूर्वक कर सकते हैं। साहित्य के इतिहास को देश-काल और समाज की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में समझने की प्रक्रिया में काल विभाजन हमारी सहायता करता है।

7. 3 काल विभाजन :-

हिन्दी साहित्य विस्तृत और विशाल है। इसका लंबा इतिहास है। इस लंबी अवधि में अनेकानेक कवियों ने अनेकानेक रचनाएँ कीं। इन रचनाओं के अध्ययन को सुगम बनाने हेतु हिन्दी साहित्य को कुछ कालों में विभक्त किया गया।

हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित काल विभाजन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में सर्वप्रथम मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने शुक्ल के काल विभाजन और नामकरण में कुछ परिवर्तन किये। इस प्रकार हिन्दी साहित्य का विभाजन निम्न लिखित चार कालों में किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के संपूर्ण इतिहास को मुख्यतः चार खण्डों के अंतर्गत रखा यथा -

1. आदिकाल (वीरगाथा काल - सं. 1050 वि. से लेकर 1375 वि. तक अर्थात् 993ई. से 1318ई. तक)
2. भक्तिकाल (पूर्व मध्य काल - सं. 1375 वि. से लेकर 1700 वि. तक अर्थात् 1318ई. से 1643ई. तक)
3. रीतिकाल (उत्तर मध्य काल - सं.1700 वि. से लेकर 1900 वि. तक अर्थात् 1643ई. से 1843ई. तक)
4. आधुनिक काल (गद्यकाल - सं.1900 वि. से लेकर आज तक अर्थात् 1843ई. से वर्तमान तक)

उन्होंने भक्तिकाल को दो उपभागों में विभक्त किया- 1. निर्गुण भक्तिधारा 2. सगुण भक्तिधारा। इनमें पुनः निर्गुण भक्तिधारा को दो शाखाओं में विभक्त किया : अ) ज्ञानाश्रयी शाख आ) प्रेमाश्रयी शाखा। सगुण भक्तिधारा को भी दो शाखाओं में विभक्त किया : क) रामभक्ति शाखा ख) कृष्णभक्ति शाखा।

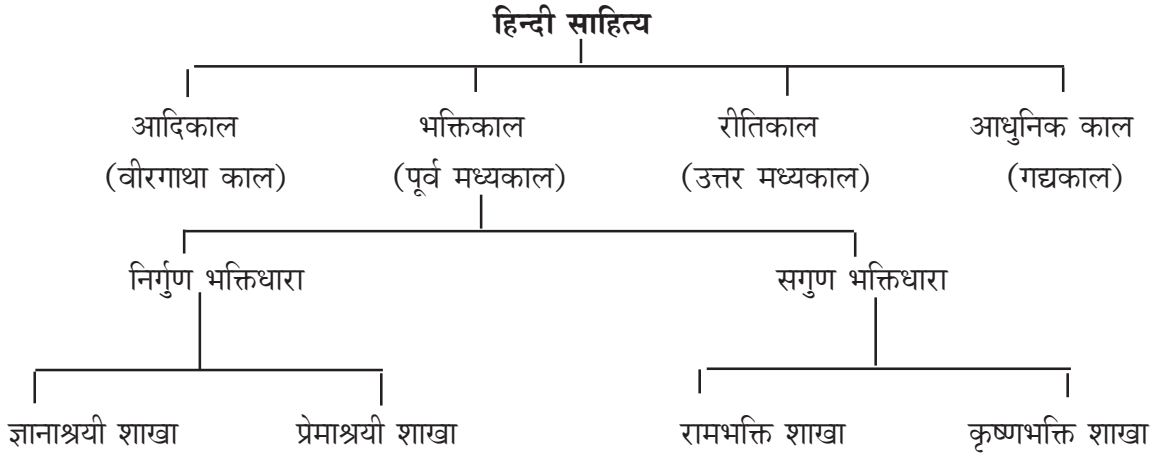

7.4 नामकरण :-

हिन्दी साहित्य के इस युग को विद्वानों ने अनेक नामों से पुकारा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल का नाम 'वीरगाथा काल' रखा। जिस कालखण्ड के भीतर किसी विशेष ढ़ंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई देती है तो उसे अलग काल माना जाता है और उसका नामकरण उन रचनाओं के स्वरूप के अनुरूप किया जाता है। इस युग में वीररसप्रधान रचनाओं की प्रचुरता होने के कारण, इस विशेष प्रवृत्ति के आधार पर इस काल का नामकरण 'वीरगाथा काल' किया गया जो सर्वथा उचित है।

मिश्र बन्धुओं ने इसे 'प्रारंभिक काल' की संज्ञा दी। डॉ. रामकुमार वर्मा ने इस युग को दो खण्डों में विभक्त करके प्रथम खण्ड को 'संधिकाल' कहा और दूसरे खण्ड को 'चारण काल'। राहुल सांकृत्यायन ने इस युग को 'सिद्ध सामन्त युग' कहा। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह 'बीजवपन काल' है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'वीरकाल' की संज्ञा दी। इस युग के लिए जो भी नाम दिये गये- उन सबके संबंध में कोई न कोई आपत्ति उठाई गयी। इस काल को 'आदिकाल' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इससे भाषा और साहित्य के आदिरूप का बोध होता है। सभी इतिहासकारों ने इस नाम के औचित्य को स्वीकार किया।

7.5 आदिकाल - परिस्थितियाँ :-

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में भाव और भाषा-शैली की दृष्टि से जो विविधता दीख पड़ती है, उसका कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ ही हैं। किसी भी कालावधि के साहित्य के विश्लेषण में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों के अध्ययन की अहम भूमिका होगी क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों के बीच साहित्य का आरंभ होता है।

7.5.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ :- आदिकाल विक्रम संवत् 1050 से लेकर 1375 वि. तक माना जाता है। भारतीय इतिहास का यह युग राजनैतिक दृष्टि से अव्यवस्था, विशृंखलता, गृह-कलह और पराजय का युग कहा जाता है। उत्तर भारत में अशांति फैली हुई थी। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद गुप्त साम्राज्य का वैभव नष्ट हो गया। देश अनेक छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त हो गया। इनमें कोई ऐसी केंद्रीय शक्ति न थी जो कि इन सारे टुकडों को एकसूत्र में बांध सके। कनाउज, दिल्ली, अजमेर, गुजरात आदि स्वतंत्र राज्यों के बीच आपसी वैर भाव था। इन राज्यों के शासक अपनी सत्ता-अपनी वीरता का परिचय देने के लिए ज़रा सी बात के लिए युद्ध छेड़ देते थे। राज्य-विस्तार की कांक्षा हर एक राजा में थी। युद्ध आवश्यकतावश नहीं बल्कि यों ही मोल लिये जाते थे। उस समय के नरेश विलासी और निरंकुश थे। उनके राज्यों के भीतर अनगिनत षड्यंत्र हुआ करते थे। राजपूत राजा अपने वैयक्तिक गौरव की अधिक परवाह करते थे। वे अपने राज्य को ही राष्ट्र मानते थे। देश में राष्ट्रीय एकता की भावना नहीं के बराबर थी। हर एक राजा अपने को औरों से बड़ा मानता था। उस समय सामंतवाद का बोलबाला था। राजा को सर्वोपरि सत्ता मानकर उसकी उचित-अनुचित आज्ञा पर मर मिटना ही धर्म माना जाता था। राजा सदा सुंदरी राजकुमारियों की खोज में रहते थे। किसी राजा की कन्या का अपहरण करना बड़प्पन माना जाता था। अतः इन युद्धों का मूल कारण नारी माना गया।

उन्हीं दिनों मुसलमानों के आक्रमण शुरू हुए। वे इस देश को लूटने में मग्न थे तो यहाँ के राजा अपने-अपने राज्य की रक्षा में। पहले मुहम्मद खासिम ने सिंध पर दावा किया। फिर गजनवी के आक्रमण शुरू हुए। उसके बाद मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। इसमें संदेह नहीं कि यहाँ अनेक वीर शासक थे। किन्तु वीरता का कोष प्रायः आपसी युद्धों में खाली किया जाता था। यदि उस समय हिन्दू राजाओं ने संगठित होकर विदेशी आक्रमणों का सामना किया होता तो निस्संदेह भारत का मानचित्र आज कुछ और ही होता। लेकिन उस समय के राजा अपनी संपूर्ण शक्ति को केवल अपने राज्य की रक्षा में ही लगाते थे। विदेशी आक्रमणों के समय में भी हिन्दू राजाओं में पारस्परिक वैर भावना थी। इसी पारस्परिक विद्वेष के कारण ही कनौज के राजा जयचंद ने गोरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने के लिए उकसाया और उसके षड्यन्त्रों के फलस्वरूप गोरी पृथ्वीराज चौहान को पराजित करने में सफल हो गया। इस प्रकार हिन्दू नरेशों के राज्य

एक-एक करके मुसलमानों के अधीन होते जा रहे थे। मुसलमानों की सामूहिक एकता, धर्म के नाम पर एकता, स्वभाव की कठोरता और कूटनीति के कारण मुसलमानों के पैर यहाँ जमते गये।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस युग में देश में आंतरिक और बाह्य संघर्षों के कारण भारत की राजनैतिक दशा अत्यंत अस्थिर थी।

7.5.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :- देश की राजनैतिक दशा का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज पर पड़ता है। अच्छे शासक के अभाव में समाज का समुचित विकास असंभव है। देश में सामाजिक आचार-व्यवहारों में उच्छृंखलता आ गयी। बलवान निर्बल को सताता था। समाज रूढ़िग्रस्त होता जाता था। समाज में मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, शकुन-अपशकुन, तावीज़, भूत-प्रेतों को मानना इत्यादि अंधविश्वास घर कर गये थे। शुद्धता और पवित्रता नहीं रही थी। छुआछूत के नियम कड़े होते जा रहे थे। विवाह, उत्सव, मेला और धार्मिक कृत्य अंत में संघर्ष के रूप में बदल जाते थे। उस समय स्वयंवर प्रथा का विशेषरूप में प्रचार था। स्वयंवरों में शौर्य प्रदर्शन एक साधारण बात थी। शौर्य प्रदर्शन हेतु लड़ाई-झगड़े हुआ करते थे। युद्धों का यह क्रम समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा था। समाज में नैतिक बंधन ढ़ीले पड़ गये। मांस और मदिरा का प्रचार था। समाज में नारी का स्थान गिर गया था। वह केवल भोग-विलास की वस्तु मानी जाती थी। सौन्दर्य नारी के लिए अभिशाप बन गया था। नारी को लेकर भयंकर युद्ध होते थे। स्त्रियों में विधवाएँ अधिक थीं। विधवाओं के लिए सती हो जाना ही आदर्श आचरण-सा बन गया। क्षत्राणियाँ प्रायः अपने पतियों की मृत्यु का समाचार सुनकर जल मरती थीं। राजपूतों के इतिहास में इसे 'जौहर' प्रथा कहा गया और इसे बड़े सम्मान का विषय माना गया। समाज में वेश्याएँ थीं। वे राजवंश से संबंध रखती थीं। बाद में भगवान की पूजा में सहायता देने लगीं। भगवान को प्रसन्न करने के लिए संगीत का कार्य करने लगीं और देवदासी कहलायीं और जनता की जान व माल की रक्षा नहीं थी। विदेशी आक्रमणों से जनता त्रस्त थी। समाज में शांति नाममात्र के लिए भी नहीं थी। चारों ओर हलचल मची हुई थी। सामान्य जनता में मनोबल और आत्मबल की कमी थी। इस तरह हिन्दी साहित्य का आदिकाल संघर्षों का समय था।

7.5.3 धार्मिक परिस्थितियाँ :- इस समय वैदिक व पौराणिक धर्म के विविध रूपों के साथ-साथ बौद्ध और जैन धर्म भी अपने वास्तविक आदर्शों से दूर हटते जा रहे थे। धर्म में बाह्याडम्बरों का समावेश अधिक मात्रा में हो रहा था। आदि शंकराचार्य के प्रहारों से बौद्ध धर्म को आघात पहुँचा। बौद्ध धर्म के द्वारा हीनयान, सहजयान, मंत्रयान, वज्रयान, महायान आदि अनेक शाखाएँ निकलीं। इन सबका व्यावहारिक रूप अत्यंत अनिष्टकारी सिद्ध हुआ। उनमें अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति और प्रदर्शन को सिद्धि मानते थे। गुप्त मंत्रों का जप और आचार विहीन क्रियाओं को प्रधानता मिली। चमत्कारी प्रदर्शन से निरीह जनता को ठगने की प्रवृत्ति बलवती हुई। देश का नैतिक स्तर गिर गया। धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होने लगा। जैन धर्म और वैष्णव धर्म में भी बाह्याडम्बरों को प्रधानता मिलने लगी।

इस समय दक्षिण भारत में भक्ति की धारा विकसित होने लगी। तमिलनाडु के आलवार वैष्णव भक्त, नायनार शैव भक्त बनकर समाज के सामने आये। कालान्तर में श्रीमदादि शंकराचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि आचार्यों ने अपनी-अपनी दार्शनिक विचारधारा का प्रतिपादन किया।

7.5.4 साहित्यिक परिस्थितियाँ :- साहित्य समाज का दर्पण है। इस नियम के अनुसार उस समय के साहित्य पर वीरता की छाप पड़ी। उस समय के चारण कवि राजाओं के दरबार में रहा करते थे। आदिकाल के कुछ समय तक की रचनाओं में किसी विशेष प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। उस समय के चारण कवि अपने आश्रयदाताओं को धर्म, नीति, शृंगार आदि विषयों की रचनाएँ सुनाया करते थे। उनका उद्देश्य राजाओं का मनोरंजन करना था। धार्मिक उपदेशों का प्रचार करना

था। लेकिन मुसलमानों के आक्रमण के समय अर्थात् सं. 1200 वि. से हिन्दी साहित्य में एक विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है। कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की वीरतापूर्ण गाथाओं का वर्णन करना आरंभ कर दिया। इन रचनाओं में वीररस की प्रधानता थी। यह शृंखला सं. 1375 वि. तक रही।

इस युग में प्रधानतः दो प्रकार की रचनाएँ की गयीं- 1.मुक्तक काव्य 2. प्रबन्ध काव्य। कवि राजाओं के दरबार में रहा करते थे। दरबारी कवि होने के कारण उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। जिसकी रोटी उसका गाना हो गया था। अतः इस समय के कवि अपने आश्रयदाताओं की झूठी प्रशंसा में प्रबन्ध काव्य लिखते थे। यह प्रबन्ध परंपरा 'रासो' के नाम से विख्यात है। इस युग में प्रधान रस वीर रस था। इस युग में युद्धों का कारण नारी माना गया। जहाँ राजनैतिक कारणों से युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न करके किसी सुंदरी की कल्पना करके रचना की जाती थी। इस तरह इस युग की रचनाओं में कल्पना की अधिक प्रधानता होती थी। नारी के कारण काव्य में शृंगार रस का वर्णन अनिवार्य हो गया। कवि कलम के साथ-साथ तलवार के भी धनी थे और युद्धभूमि में खड्ग-चालन करते थे। अतः युद्धों का आँखों देखा वर्णन मिलता है।

आदिकाल के काव्य :- भाषा की दृष्टि से आदिकाल के दो भाग किये जा सकते हैं। 1. अपभ्रंश काव्य 2. देशभाषा काव्य। सं. 1050 वि. से 1200 वि. तक की अधिकांश रचनाएँ अपभ्रंश और प्राकृत हिन्दी में रचे गये हैं। अपभ्रंश काव्य का प्राचीन रूप सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य, नाथ साहित्य में मिलता है। सिद्ध हेमचन्द्र कृत 'शब्दानुशासन', सोमप्रभु कृत 'कुमारपाल प्रतिबोध', आदि अपभ्रंश की प्रमुख कृतियाँ हैं।

वीरगाथा काल के द्वितीय चरण में देशभाषा के काव्य रचे गये हैं। देशभाषा काव्यों में प्रमुख इस प्रकार हैं :

1. खुमान रासो
2. बीसलदेव रासो
3. पृथ्वीराज रासो
4. परमाल रासो
5. जयचन्द प्रकाश
6. जयमयंक जसचन्द्रिका
7. विद्यापति पदावली
8. अमीर खुसरो की पहेलियाँ

इन कृतियों में पहली छः वीरगाथाओं से संबंधित हैं तो पिछली दो स्वतंत्र रचनाएँ हैं।

भाषा : वीरगाथा काल की अपनी भाषा थी जो 'डिंगल' नाम से विख्यात है। यह उस समय की राजस्थानी भाषा थी। यह भाषा वीररस-वर्णन के लिए उपयुक्त थी। डिंगल के समानान्तर भाषा थी 'पिंगल'। यह ड़िंगल की अपेक्षा अधिक साहित्यिक थी। पिंगल के कुछ छन्द 'पृथ्वीराज रासो' में मिलते हैं।

छन्द : दूहा, पाघडी, कवित्त, छप्पै आदि डिंगल भाषा के प्रसिद्ध छन्द हैं। वीररस को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने में ये छन्द डिंगल भाषा के सहयोगी हैं। तोमर, तोटक, गाहा आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ।

अलंकार : चारण कवियों ने अपनी रचना को सुंदर बनाने के लिए अनेक अलंकारों का प्रयोग किया। लेकिन अतिशयोक्ति अलंकार का अधिक प्रयोग हुआ।

प्रमुख कवि और उनके काव्य :

दलपति विजय	–	खुमान रासो
चन्द बरदायी	–	पृथ्वीराज रासो
नरपति नाल्ह	–	बीसलदेव रासो
अमीर खुसरो	–	खुसरो की पहेलियाँ
विद्यापति	–	कीर्तिलता, कीर्तिपताका
जगनिक	–	आल्हाखण्ड
भट्ट केदार	–	जयचन्द प्रकाश
मधुकर कवि	–	जयमयंक जसचन्द्रिका

7.6 आदिकाल की विशेषताएँ :-

आदिकाल की विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है -

अ. आश्रयदाताओं की प्रशंसा :- इस युग के कवियों को राजाश्रय प्राप्य था। इसलिए उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त न थी। काव्य का आशय रहा- केवल आश्रयदाता की प्रशंसा करना। इसलिए उनकी वीरता, दान,ऐश्वर्य आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करना आवश्यक हो गया था। यही कारण है कि कवियों को अप्रिय सत्य छिपाने पड़ते थे। राष्ट्रद्रोही जयचन्द की भी उसके दरबारी कवियों ने झूठी प्रशंसा की।

आ. कल्पना की प्रधानता :- इस युग के दरबारी कवियों ने आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते समय कल्पना का हद से ज़्यादा आश्रय लिया। साधारण बातों का भी खूब बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया।

इ. वीर, शृंगार रसों का मिश्रण :- इस युग में वीर रस की प्रधानता थी। काव्य में नारी का होना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य भी था। इसलिए शृंगार रस वर्णन भी अनिवार्य हो गया। अतः वीररस प्रधान रस और शृंगार गौण रस बन गये।

ई. युद्धों का कारण नारी :- इस युग में जितने भी युद्ध हुए सभी नारी को लेकर ही हुए। 'पृथ्वीराज रासो' और 'आल्हाखण्ड' इसके उदाहरण हैं।

उ. युद्धों का सजीव वर्णन :- इस युग के कवि राजा के साथ युद्धभूमि में जाते थे। वे कलम के साथ-साथ खड्ग भी धारण करते थे। वीररस-वर्णन से आश्रयदाताओं को उत्साहित करने के साथ-साथ स्वयं तलवार लेकर युद्धभूमि में जाकर युद्ध करते थे। इसलिए काव्य में आँखों देखा युद्ध वर्णन मिलता है। उनकी कविता में शस्त्रों की खनखनाहट सुनायी पड़ती है।

ऊ. इतिहास-चित्रण पर कवितात्मकता हावी :- कवि का उद्देश्य काव्य लिखना था न कि ऐतिहासिक तथ्यों का पोषण। अतः 'पृथ्वीराज रासो' तथा 'बीसलदेव रासो' में जो ऐतिहासिक घटनाएँ दी गयीं वे इतिहास से मेल नहीं खातीं। कई जगह नामों की गड़बड़ी पायी जाती है। संवतों का वर्णन भी असंदिग्ध है।

ऋ. राजनैतिक अस्थिरता :- हिन्दी साहित्य का आरंभ लड़ाई-झगड़ों के काल में हुआ। उत्तर भारत अनेक छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त हो गया। राज्यविस्तार की अभिलाषा के कारण राजाओं में पारस्परिक होड़ की भावना थी। इसी समय देश पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हो गये। इस तरह देश में अशांति का वातावरण था। व्यक्तिगत

शौर्यप्रदर्शन के कारण देश में राजनैतिक अस्थिरता थी।

ए. सामाजिक दशा :- राजनैतिक हलचल और गृहकलहों का कटु प्रभाव समाज पर पडा। समाज में नारी का स्थान गिर गया। जनता त्रस्त थी।

ऐ. काव्य और भाषा :- इस युग में दो तरह के काव्य लिखे गये- 1.अपभ्रंश 2. रासो। इस युग के काव्यों की भाषा दो प्रकार की है - 1. अपभ्रंश भाषा 2. जनसाधारण भाषा। वीरगाथाओं की अपनी भाषा थी जो डिंगल नाम से जानी जाती थी। यह भाषा वीररस वर्णन के लिए उपयुक्त थी। साहित्य की कोटि में आनेवाले चार अपभ्रंश ग्रंथ हैं -

1. विजयपाल रासो
2. हम्मीर रासो
3. कीर्तिलता
4. कीर्तिपताका

देशभाषा के काव्यों में खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, परमाल रासो मुख्य हैं।

ओ. छन्द और अलंकार :- इस युग के काव्य में कवित्त, छप्पै, दूहा, तोहा, तोटक, पाघड़ी, आर्या, गाहा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ। काव्य को सुंदर बनाने के लिए चारण कवियों ने अपनी रचना में विविध अलंकारों का प्रयोग किया। लेकिन अतिशयोक्ति और अन्योक्ति का अधिक प्रयोग हुआ।

7.7 प्रतिनिधि कवि चन्दबरदायी तथा उनका पृथ्वीराज रासो :-

वीरगाथाकाल के कवियों में चन्दबरदायी का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। वे पृथ्वीराज के राजकवि और मित्र थे। उन्होंने पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की। यही उनकी अक्षयकीर्ति का आधार है। पृथ्वीराज रासो को हिन्दी साहित्य के प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी के महाकाव्यों में यह बड़ा ग्रंथ है। लेकिन इसकी प्रामाणिकता के विषय में संदेह अभी शेष हैं।

चन्दबरदायी का जीवनवृत्त : चन्दबरदायी भारतवर्ष के अंतिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान का राजकवि, सखा और सामन्त थे। महाराजा पृथ्वीराज चौहान हिन्दू जगत के अस्तमान-वेला के सूर्य थे और चन्द हिन्दी साहित्य-जगत के उदयकालीन चन्द्र। चन्दबरदायी भट्ट जाति के जगानिक गोत्री थे। उनका जन्म लाहौर में हुआ था। ऐसा माना जाता है कि पृथ्वीराज और चन्दबरदायी का जन्म एक ही तिथि पर हुआ और एक ही तिथि में दोनों का देहावसान भी हो गया। चन्दबरदायी छः भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी, शौरसेनी) के पण्डित थे। वे व्याकरण, ज्योतिष, मंत्रशास्त्र, पुराण, नाटक, संगीत आदि शास्त्र-कलाओं में भी निष्णात थे। चन्द और पृथ्वीराज में बचपन से ही घनिष्ठ मित्रता थी। अश्वसंचालन, युद्ध, शब्दभेदी बाण, तलवार चलाना आदि में वे निपुण थे।

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के संबंध में मतभेद हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार पं.गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कहना है कि पृथ्वीराज के समय 'चन्द' नामक कवि ही नहीं हुए। इस काव्य में वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक घटनाओं से मेल नहीं खातीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनका समर्थन किया। मिश्रबन्धुओं का कथन है कि चन्दबरदायी तो पृथ्वीराज के समकालीन थे और उन्होंने काव्य अवश्य लिखा। लेकिन आज 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से जो काव्य उपलब्ध है, उसमें बहुत-सारा हिस्सा प्रक्षिप्त है। डॉ.श्यामसुंदर दास भी इस प्रतिपादन का समर्थन करते हैं।

यद्यपि 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के बारे में मतभेद हैं तथापि यह काव्य अपने युग की साहित्यधारा का पूर्णरूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसमें कुल 2500 पृष्ठ तथा 69 समय अर्थात् अध्याय हैं। काव्य का प्रधानरस वीर है और शृंगार का वर्णन गौणरूप से किया गया। अन्य रसों का भी वर्णन सहायक रसों के रूप में किया गया। महाकाव्य होने के कारण चरित्र-चित्रण और प्रकृति-चित्रण की ओर ध्यान दिया गया। काव्य की भाषा मुख्यतः 'डिंगल' है। इसमें संस्कृत, व्रज, अवधी, अरबी, फारसी भाषाओं के शब्द मिलते हैं। भाषा स्थान-स्थान पर बदल गयी। इसमें तोटक, तोमर, कवित्त, दोहा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ। वीररस वर्णन के प्रसंगों में भाषा ओजगुण युक्त है। शृंगार रस वर्णन के प्रसंगों में भाषा माधुर्यगुण से युक्त है। इस काव्य में विविध शैलियों का प्रयोग मिलता है। अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ।

यद्यपि 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता बहुचर्चित विषय है तथापि हिन्दी-साहित्य में यह कृति आदिकाल के प्रतिनिधि काव्य के रूप में, चन्दबरदायी इस काल के प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रख्यात हैं।

7.8 बोध प्रश्न :-

1. आदिकालीन हिन्दी साहित्य की परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए उसकी सामान्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

2. देश की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का हिन्दी साहितय के आदिकाल पर क्या प्रभाव पड़ा?

3. आदिकाल या वीरगाथा काल की विशेषताओं पर निबन्ध लिखिए।

4. आदिकाल के प्रतिनिधि कवि चन्दबरदायी का परिचय दीजिए।

7.9 सहायक ग्रन्थ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. श्रीनिवास शर्मा
2. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाबराय
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र

Smt. M.P. Vardhani,
Lecturer,
Department of Hindi,
Maris Stella College (Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 8

निर्गुण भक्तिधारा और कबीरदास

इकाई की रूप रेखा:-

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 निर्गुण पंथ

8.3.1 ज्ञानाश्रयी शाखा

8.3.2 प्रेमाश्रयी शाखा

8.4 ज्ञानाश्रयी शाखा की विशेषताएँ

8.5 ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय

8.6 कबीर का जीवनवृत्त और काव्यगत विशेषताएँ

8.7 कबीर की भक्ति-पद्धति

8.7.1 एकेश्वरोपासना

8.7.2 माधुर्यभाव

8.7.3 नामस्मरण

8.7.4 गुरु की महत्ता

8.7.5 मध्यम मार्ग का अनुकरण

8.7.6 आचरण की शुद्धता

8.7.7 प्रपत्ति भाव

8.7.8 हठयोग का मिश्रण

8.8 बोधप्रश्न

8.9 सहायक ग्रन्थ-सूची

8.1 उद्देश्य:-

इस इकाई में भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की विशेषताओं पर विचार करेंगे। निर्गुण भक्तिधारा के साहित्य का परिचय भी आपको मिलेगा। निर्गुण भक्तिधारा के अंतर्गत ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी शाखाओं के परिचय के साथ-साथ ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों का और उनके कृतित्व का परिचय भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कबीर की भक्ति पद्धति का संपूर्ण परिचय भी इस पाठ के द्वारा मिलेगा।

8.2 प्रस्तावना :-

आचार्य रामचन्दु शुक्ल पूर्वमध्यकाल को 'भक्तिकाल' कहते हैं। हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल वह काल है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार व प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति-आंदोलन का सूत्रपात हुआ और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण उसने विपुल आंदोलन का रूप धारण किया, जिसमें जनभाषा हिन्दी में भक्ति साहित्य की बाढ़-सी आयी।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में स्पष्ट ही लिखा है कि "असल में दक्षिण का वैष्णव मतवाद ही भक्ति आंदोलन का मूल प्रेरक है।" उन्होंने यह भी बताया था कि स्वामी रामानंद और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की प्रेरणा से ही हिन्दी का भक्ति साहित्य अपने चरमोत्कर्ष को पहुँचा। भक्ति एक रागात्मक प्रवृत्ति है तथा हृदयस्थ भाव है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस काल को 'भक्तिकाल' का नाम दिया गया था, वह इस देश के जीवन में नवीन सांस्कृतिक चेतना का काल था। संपूर्ण भक्ति साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है:- निर्गुण भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा। कुछ भक्त कवियों ने निर्गुण, निराकार और निरंजन भक्ति पद्धति का प्रचार किया तो कुछ लोग सगुण, साकार भगवान की उपासना पद्धति को। निर्गुण भक्तिधारा भी दो शाखाओं में बाँटी गयी है- ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा। उसी प्रकार सगुण मार्ग भी रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखाओं के रूप में बाँटा गया है।

8.3 निर्गुण पंथ :-

धार्मिक समन्वय चाहनेवाले लोगों ने इस्लाम और हिन्दू धर्म के कुछ समान सिद्धांतों को खोज निकाला और उनका प्रचार किया। दोनों में एकेश्वरवाद और प्रेम भावना को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस्लाम में निर्गुण एकेश्वरवाद प्रमुख है। यही सिद्धांत भारतीय उपनिषदों का भी है। इसी प्रकार वैष्णवों की प्रेम भावना इस्लाम में भी प्रसिद्ध है। इस प्रकार के समन्वय से निर्गुण पन्थ की दो शाखाएँ निकलीं- ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी।

8.3.1. ज्ञानाश्रयी शाखा :-

हिन्दू संत कवियों ने इसके द्वारा दोनों धर्मों के लोगों को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न किया। इन्होंने राम और रहीम की एकता को स्थापित किया। रूढियों का विरोध किया। ज्ञान को मुक्ति का मार्ग बताया। इनके साहित्य को 'संत साहित्य' कहा जाता है। इन्होंने गुरु को ईश्वर के बराबर का दर्जा दिया। ये पंडित नहीं थे। महात्मा कबीर, गुरुनानक, दादूदयाल और मलूकदास आदि इस शाखा के प्रमुख कवि हैं। कबीरदास इस धारा के प्रवर्तक और प्रमुख माने जाते हैं। उनकी एकमात्र रचना 'बीजक' है। इसमें ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की बातें हैं।

8.3.2. प्रेमाश्रयी शाखा :-

यह काव्य-धारा मुसलमान फकीरों और सूफियों की सद्भावना का फल है। मुसलमानों का सूफी संप्रदाय हिन्दुओं के सर्वेश्वरवाद के निकट पड़ता है। सूफी ईश्वर को अपने प्रेमपात्र के रूप में देखते हैं। प्रेम को भगवान को पाने का मार्ग मानते हैं। इन्होंने हिन्दुओं में प्रचलित प्रेम-गाथाओं को लेकर काव्य रचना की। इन काव्यों में सूफी सिद्धांतों का प्रदिपादान किया। इनके अनुसार भगवान का स्त्री-रूप है। इस धारा के कवि अधिकतर मुसलमान हैं। इनमें कुतुबन, मंझन और मलिक मुहम्मद जायसी मशहूर हैं। जायसी की महान रचना 'पद्मावत्' है।

भक्तिकाल के किसी भी कवि ने राजाश्रय की परवाह नहीं की बल्कि उसको ठुकरा दिया। निर्गुण पंथ के कबीर और जायसी फक्कड़ और मस्त स्वभाव के थे। उन्होंने स्वांतः सुखाय काव्य की रचना की थी। लोक कल्याण उनके जीवन

का आशय था। वे ज्ञान व प्रेम में तन्मय रहकर रचना करते थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय में सहयोग दिया।

8.4. ज्ञानाश्रयी शाखा की विशेषताएँ :-

इस शाखा के भक्त कवियों ने जिन अनेक स्रोतों से प्रेरणा ग्रहण की है उनमें शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन और उपनिषदों का ज्ञान प्रधान है। इस शाखा के प्रेरणा स्रोतों की दृष्टि से पतंजलि हठयोग और अद्वैतवाद, वैष्णव अहिंसा और प्रपत्तिभाव तथा सूफियों के प्रेमतत्व का उल्लेख किया जा सकता है। ज्ञानाश्रयी शाखा के साहित्य की मूल चेतना ईश्वर की अद्वैतता, उसकी निराकारता और भक्ति द्वारा उसकी उपलब्धि आदि सिद्धान्तों के प्रतिपादन में निहित है।

इस्लाम के आगमन के पहले से ही इस देश में परमसत्ता के संबंध में अद्वैत का विचार वर्तमान था। वैदिक बहुदेववाद का समाहार "एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति" कह कर लिया गया था। इस्लाम धर्मानुयायियों के साथ धार्मिक भावना के स्तर पर सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य को निर्गुणपरक अद्वैतभाव की उपयोगिता के आधार पर बल मिला। यों, भारतीय निर्गुण ब्रह्म संबंधी धारणा और इस्लामी खुदा संबंधी धारणाओं में तात्विक अंतर है। निर्गुण ब्रह्म सभी जीवात्माओं में व्याप्त है। इस शाखा के कवियों ने उसी का अनुकरण किया।

ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्ति साहित्य में जिन विषयों को अभिव्यक्ति मिली है, उन्हें छः विभागों में रखा जा सकता है। पहला धार्मिक/आध्यात्मिक और दूसरा सामाजिक। इन दोनों के भी अलग-अलग दो-दो उप विभाग किये जा सकते हैं- विध्यात्मक और निषेधात्मक। इन विभागों- उपविभागों के अंतर्गत विषय की संक्षिप्त सूची इस प्रकार होगी।

1.धार्मिक-आध्यात्मिक :-

क. विध्यात्मक - ईश महिमा, गुरु महिमा, सत्संग, स्वानुभव।

ख. निषेधात्मक - मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, शास्त्र ज्ञान, कंचन-कामिनी, धार्मिक रूढियाँ और आडम्बर, तीर्थाटन, हिंसा।

2. सामाजिक :-

क. विध्यात्मक - सामाजिक और मानवीय समता।

ख. निषेधात्मक - जाति-पांति-मत भेदभाव, सांप्रदायिक वैमनस्य।

ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्तों ने मुक्तकों के रूप में ही काव्य रचना की है। उन मुक्तकों के साखी, सबद और रमैनी रूप मिलते हैं। साखियों का स्वरूप दोहों का है। इनमें मुख्यतः साम्प्रदायिक शिक्षा और सैद्धांतिक उपदेश व्यक्त हुए हैं। कबीरदास ने 'साखी' को 'ज्ञान की आँख' कहा है। 'साखी' शब्द 'साक्षी' का ही तद्भव रूप है। साखीकार भक्त कवियों ने स्वयं को साक्षी की भूमिका में रखकर जीवन और जगत् की आलोचना की है। 'सबद' गेय पदों का समन्वित रूप है। 'सबद' शब्द तो संस्कृत के 'शब्द' का ही तद्भव रूप है। इसकी रचना शस्त्रीय रागों के आधार पर हुई है। इन रागों में मुख्य है - गौडी. आसावरी, विलम्बल, टोडी आदि। 'रमैनी' की रचना अपभ्रंश की कडवल शैली पर हुई है।

काव्य सौष्ठव और भाषा के परिष्कार, परिमार्जन आदि की दृष्टि से ज्ञानाश्रयी शाखा के काव्य में उच्च साहित्यिक गुणों का अभाव है, फिर भी उसमें सशक्त अभिव्यंजना शक्ति निहित है। इस शाखा के कवि प्रायः समाज के निम्न वर्गों से आये थे। साधन विहीन परिस्थितियों के कारण वे साहित्य, भाषा और व्याकरण आदि के अनुशीलन से वंचित रहे थे। संत कवि पर्यटनशील थे। इसलिए इनकी भाषा में अनेक प्रदेशों की शब्दावली का सम्मिश्रण मिलता है। इनके द्वारा प्रयुक्त व्रज,

अवधी, भोजपुरी, पंजाबी और राजस्थानी के मिले जुले भाषा रूप को विद्वानों ने "सधुक्कड़ी" नाम दिया है। सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करते समय इनकी भाषा में सचेत परुषता और तीखी व्यंग्य वृत्ति रहती है तो भक्ति भावना एवं पूर्ण कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के प्रसंगों में इनकी भाषा सुकुमार, लोचक, लचक से पूर्ण रहती है। इनका काव्य भावों की सफल संप्रेषणीयता अथवा साधरणीकरण की विशेषता से युक्त है।

8. 5 ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों का परिचय:-

इस शाखा के कवि सन्त-कवि कहलाते हैं। इस शाखा के कबीर, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि प्रमुख कवि हैं। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न लिखित है।

कबीरदास :- ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। कहते हैं एक ब्राह्मण विधवा के गर्भ से इनका जन्म हुआ। लोक लज्जा वश इनकी माता ने इसका परित्याग कर दिया था। इसके बाद नीरु और नीमा नामक मुसलमान दम्पति ने इनका पालन-पोषण किया। इनकी शादी लोई नाम की एक स्त्री से हुई थी। कबीर रामानन्द के शिष्य थे। ये महात्मा अत्यंत स्वतंत्र प्रकृति के और फक्कड़ स्वभाव थे। आप रूढ़िवाद के कट्टर विरोधी भी थे। कबीर की वाणी-'बीजक' नामक ग्रन्थ में संग्रहीत है। कबीर ने अपने एक अलग 'पन्थ' की स्थापना की जो 'कबीर पन्थ' के नाम से विख्यात है। कबीर की भाषा 'सधुक्कडी' है।

धर्मदास :- आप कबीरदास के सम्प्रदाय के उत्तराधिकारी थे। आप जाति के वैश्य थे और बाँधोंगढ़ में रहते थे। इन्होंने कबीर-पन्थ में प्रवेश करने पर अपना सारा धन लुटा दिया था। इनकी गद्दी छत्तीसगढ़ में है। 'सुखनिधान' इनके प्राचीन ग्रन्थों में एक है। ये पहले सगुणोपासक थे, तीर्थ यात्रा भी करते थे, परन्तु पीछे से इन्होंने निर्गुण पन्थ में दीक्षा ली थी। कबीर की भाँति इन्होंने भी विरह के छंद लिखे।

उदा. :- "खान गरजै, खन बिजली चमकै, लह उठै शोभावरनि न जाय।
सुन्न महल में अमृत बरसै, प्रेम मगन है साधु नहाय।।"

रैदास :- रैदास भी रामानन्दजी के शिष्यों में से थे। आप जाति के चमार थे। आप मीराँबाई के गुरु के रूप में भी विख्यात हैं। 'रैदास' नाम 'रविदास' का ही अपभ्रंश रूप है। आपके पद 'गुरु ग्रन्थसाहब' में संग्रहीत हैं।

रैदास की कविता जन सुलभ है। उनकी कविता से एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है-

"प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी। जाकी अंग अंग वास समानी।।
प्रभुजी तुम वन-धन मोरा। जैसे चितवन चन्द चकोरा।।
प्रभुजी तुम माली हम बागा। जैसे सो नहि मिलत सुहागा।।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा। ऐसा भगति करै रैदासा।।"

'तुम और मैं' की परम्मरा में वर्तमान युग में बहुत सी कविताएँ लिखी गयी हैं। इसी शीर्षक से निराला जी ने भी एक कविता लिखी जो प्रसिद्ध है। नाभादास जी ने रैदास की प्रशंसा में कहा है -

वर्णाश्रम अभिमान तजि, पद रज वन्दहि जा सकी।
सन्देह ग्रन्थि खण्डन निपुन, बानी विमल रैदास की।।

गुरुनानक :- ये महात्मा सिक्ख्-सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। इनका जन्म कार्तिक पूर्णिमा को तलवण्डी ग्राम, जिला लाहौर में हुआ था। उनके पिता का नाम कस्तूर चन्द और माता का नाम तृप्ता था। नानक का विवाह 'सुलक्षणा' नाम की

कन्या से हुआ। नानक जन्म से ही बड़े त्यागी तथा साधु-सेवी थे। इन्होंने भगवद्भक्ति के भजन गाये थे। इन भजनों में ईश्वर-भक्ति के साथ-साथ सदाचार और संगठन की सरल शिक्षा मिलती है। आपने अपने मत में एकेश्वरवाद का प्राधान्य रखा। इनकी वाणी 'श्री गुरु ग्रन्थ-साहब' में संग्रहीत है। कुछ भजन पंजाबी में है और कुछ देश की प्रचलित काव्य-भाषा हिन्दी में हैं। इनकी वाणी में बड़ी विनय है। नानक को सदाचार के बड़े पक्षपाती कहा जा सकता है।

उदा :-

"जो नर दुख में दुख नहिं माने।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कन्चन माटीजाने।।
नहिं निन्दा नहिं स्तुति जाके, लोभ, मोह अभिमाना।
हरष सोक तें रहैं नियारो, नाहिं मान अपमाना।।
आसा मनसा सकल न्यागि के, जग तै रहै निरासा।
काम क्रोध जोहि परसै नाहिंन, ते हि घट बद्म निवासा।।
गुरु किरपा जेहिं नर पर कीन्हीं, तिन्ह यह जुगति पिछजी।
'नानक' लीन भयौ गोविन्द सों, ज्यों पानी संग पानी।।"

दादूदयाल :- ये महात्मा गुजरात के रहनेवाले थे। इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था। कबीर की भाँति इनके नाम से भी दादू-पन्थ चल रहा है। कुछ लोग इनको मुसलमान बतलाते हैं और कहते हैं कि इनका असली नाम दाऊद था। ये भी निराकार ब्रह्म के उपासक थे। इस पन्थ के लोग सत्तानाम कहकर अभिवादन करते हैं। इन की वाणी हिन्दी के अतिरिक्त राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी में भी पायी जाती है। इनकी रचना में अरबी-फारसी के शब्द अधिक आये हैं और प्रेम-तत्व की व्यंजना अधिक है। इनके प्रेम भाव का निरूपण सरस और गंभीर है। ईश्वर की व्यापकता, सतगुरु की महिमा, जाति-पांति का निरूपण, हिन्दू-मुसलमानों का अभेद, संसार की अनित्यता और आत्मबोध ये ही दादूपन्थ के मूल सिद्धांत हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण-

"केते पारखि पचि मुए कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान है गूँगे का गुड़ खाइ।।
जब मन लाये राम सों तब अनंत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों ऐसै रहै समाइ।।"

सुन्दरदास :- इनका जन्म संवत् 1653 और जन्म स्थान जयपुर राज्य का 'चौसा' नामक ग्राम है। वे जाति के वैश्य थे। इनके पिता का नाम परमानंद और माता का नाम सती था। ये दादूदयाल के शिष्य थे और बहुत काल तक उनके साथ रहे। इन्होंने बहुत कालतक काशी में रहकर संस्कृत, वेदांत और पुराण का भी भली-भाँति अध्ययन किया। ये अपने जीवन पर्यंत ब्रह्मचरी रहे। इन्होंने ज्ञान-चर्चा, नीति और देशाचार आदि विषयों पर बडे सुन्दर पद्य कहे हैं। इनकी रचना साहित्यिक और सरस है। इनका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सुन्दरविलास' है। ये अपने काल के अन्य संत कवियों से बढ़कर सुशिक्षित थे और काव्य के समस्त अंगों के अच्छे ज्ञाता थे। इसलिए इनकी काव्य-रचना अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। इनकी रचना का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है -

"वेद थके कहि, तन्त्र थके कहि, ग्रन्थ थके निसि बासर गात।
शेष थके, शिव इन्द्र थके, मुनि पोख कियौ, बहुँभाँति विधात।।

पीर थके और मीर थके, पुनि धीर थके बहु बोलि गिरत।
सुन्दर मौन गही शिव साधक, कौन कहै उसका सुख गात।।"

मलूकदास :- इनका जन्म कड़ा जिला इलाहाबाद में हुआ था। इनके संबंध में बहुत से चमत्कार या करामतें प्रसिद्ध हैं। इसलिए संतों में इनका नाम बड़ा प्रसिद्ध है। इनकी 'रत्नखान' और 'ज्ञानबोध' नामक दो पुस्तकें अत्यंत विख्यात हैं। इनकी भाषा में फारसी और अरबी शब्दों का बहुत प्रयोग है। फिर भी इनकी भाषा सुन्दर और सुव्यवस्थित है। आपने आत्मबोध, वैराग्य प्रेम आदि आध्यात्मिक विषयों को लेकर बडी सुन्दर रचना की है। इनकी रचना का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है-

"ना वह रीझे जप-तप कीन्हे, ना आतप के जारे।
ना वह रीझे धोती नेती, ना काया के परवारे।।
दया करै धरम मन राखै, घर में रहे उदासी।
अपना सा सुख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी।।"

अक्षर अनन्य :- ये बडे विद्वान और वेदांत के अच्छे ज्ञाता थे। प्रसिद्ध छत्रसाल इनके शिष्य हुए थे। अक्षर अनन्य दतिया रियासत के रहनेवाले थे और कुछ दिनों दतिया के राना पृथ्वीसिंह के दीवान रहे थे। इन्होंने राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यान योग, सिध्दांत बोध, विवेक दीपिका, ब्रह्म ज्ञान, अनन्य प्रकाश आदि योग और वेदान्त के कई सुन्दर ग्रन्थ रचे हैं। इनकी भाषा का एक उदाहरण-

"यह भेद सुनौ पृथ्वीचन्दाराय।
फल चाराह की साधन उपाय।।
यह लोक सधै सुख पुत्र बाम।
परलोक नसै बस नरक धाम।।"

अन्य कवि :- इन कवियों के अतिरिक्त दादूदयाल के पुत्र गरीबदास, निश्चलदास, जगजीवन दास, मानी साहब, बुल्ला साहब, सहजोबाई, दयाबाई, तुलसी साहब, पलटूदास आदि अनेक सन्त कवि हुए, जिन्होंने अपनी मधुर वाणी से हिन्दी साहित्य का भण्डार भरा। इन कवियों में निश्चलदास जी का वेदान्त-सम्बन्धी ग्रन्थ 'विचार सागर' प्रख्यात है।

8.6. कबीर का जीवनवृत्त और काव्यगत विशेषताएँ:-

कहते हैं कि कबीरदास का जन्म एवं विधवा के गर्भ से हुआ था। लोक लज्जा वश उस विधवा ने अपने बच्चे को 'लहरतारा' तालाब के पास छोड़ दिया। बाद में नीरु और नीमा नामक एक मुसलमान दंपति ने उस बालक का पालन-पोषण किया। इस प्रकार कबीरदास जन्म से हिन्दू और संस्कार से मुसलमान थे। शायद कारण यही होगा कि महात्मा कबीर की बानी में हिन्दू और मुसलमान दोनों के धार्मिक तत्व मौजूद हैं। इन्होंने दोनों धर्मावलंबियों की तृटियाँ पहचानीं और दोनों की कड़ी भर्त्सना की। पर आप समन्वयवादी थे। आपने हिन्दू पुसलमान की एकता पर अत्यंत जोर दिया। सदा पुकार-पुकार कर दोनों जातिवालों से कहा है- 'कहै कबीर एक राम जप हूरे, हिंदू तुरक न कोई।'

कबीरदास पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं थे। आपने केवल सत्संग के द्वारा कविता करना सीखा। आपने ज्ञान-मार्ग की सारी बातों का संचय रामानंद जी के उपदेशों से किया। माया, जीव, ब्रह्म-तत्वमसि, आठ मैथुन, त्रिपाटी, छःरिपु इत्यादि शब्दों से इनका परिचय अध्ययन द्वारा ही हुआ।

कबीरदास स्वामी रामानंद जी को अपना गुरु मानते थे। इस पर भी एक रोचक कहानी कही जाती है। मुसलमान होने के कारण कबीरदास स्वामी रामानन्द जी के शिष्य नहीं बन सके। इसलिए उन्होंने एक उपाय सोचा। रोज सबेरे स्वामी रामानंद गंगा-स्नान के लिए मणिकर्णिका घाट पर जाया करते थे। एक दिन उसी समय कबीरदास घाट की सीढ़ियों पर लेट रहे। स्वामीजी आये और सीढ़ियों से उतरते समय उनका पाँव कबीरदास के सिर पर पड़ा। स्वामी जी हक्का-पुक्का सा रहे और 'राम-राम' कहने लगे। कबीरदास ने इस 'राम' शब्द को मंत्र स्वरूप ग्रहण किया और इस तरह रामानन्द के शिष्य बने। कबीर ने गुरु को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसलिए उन्होंने लिखा -

"जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं।।"

कबीर की उपासना निर्गुण परब्रह्म की थी। कबीर के राम दशरथ के पुत्र रामचन्द्र नहीं हैं। उनके 'राम' निर्गुण-निराकार के भी ऊपर ओंकार से भी परे हैं। परब्रह्म इनके हृदय में ही स्थित थे। उन्हें बाहर ढूँढना अन्धापन है। आपका कहना है-

"तेरा साई तुझ में, ज्यों पहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूँढ़ै घास।।"

कबीर की उपासना के दो पक्ष मिलते हैं- ज्ञान तथा भक्ति। ज्ञान पक्ष के अन्तर्गत एक ओर मिथ्या मत-मतांतरी और बाह्य आडंबर का खंडन हुआ है तो दूसरी ओर अद्वैत सिद्धांतों की प्रतिष्ठा का समावेश हुआ है। प्रतिमा पूजन और अवतारवाद के तो ये अत्यन्त विरोधी थे। 'सतराम और सतगुरु' ये ही इनकी भक्ति रूपी उपासना के केन्द्र हैं। कबीर रहस्यवादी कवि थे। सारांश यह है कि कबीरदास ने सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रवृत्तिवाद का मेल करके अपना एक नया पन्थ खडा कर दिया जो 'कबीर पन्थ' के नाम से विख्यात हुआ है।

कबीर अशिक्षित व्यक्ति थे, लेकिन इन्होंने अच्छी तरह भ्रमण किया। इसलिए वे बहुश्रुत महात्मा थे। इसलिए इनकी कविता की भाषा में अनेक प्रकार के शब्द मिलते हैं। इनकी भाषा की एक ही हाँडी में पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी, अवधी, मैथिली, बंगाली, अरबी, फारसी आदि को चढ़ाकर पकाया हुआ सधुक्कड अन्नकूट है। कहीं-कहीं उन्होंने शुद्ध खडीबोली का प्रयोग किया है। कबीर की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव अधिक है और उनकी भाषा सुव्यवस्थित नहीं है। लिंग, वचन, कारक और छन्द के अनेकानेक दोष आपकी कविता में मिलते हैं। आपकी कविता में कहीं-कहीं अस्पष्टता का दोष भी आया है। इसका प्रधान कारण यह है कि इनके भावों की गंभीरता के साथ-साथ इनकी भाषा की असमर्थता है। कहा जा सकता है कि कबीर ने अपनी भाषा के कारण से नहीं बल्कि अपने भावों के कारण ही प्रसिद्धि प्राप्त की।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ को कबीर पन्थी लोग बहुत मानते हैं। इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं- रमैनी, सबद, साखी। इनमें वेदांत तत्व, हिन्दू मुसलमानों को फटकारना, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्ध प्रेम साधना की कठिनता, माया की प्रबलता, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि की असारता इत्यादि अनेक प्रसंग हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि कबीरदास एक पहुँचे हुए महात्मा हैं। इन्होंने जन-कल्याण हेतु अत्यन्त यत्न किया। कबीरदास का सबसे बडा विशेष गुण 'निर्भीकता' है। इन्होंने जो कुछ कहा, डंके की चोट पर कहा। सचमुच कबीरदास अपने समय के सच्चे समाज सुधारक और महात्मा थे।

8.7 कबीर की भक्ति-पद्धति :-

कबीर निर्गुण भक्तिमार्ग के अनुयायी थे। रामानन्द से शिष्यत्व ग्रहण करने के कारण कबीर के हृदय में वैष्णवों के लिए अत्यधिक आदर था। इसी कारण कबीर ने 'मेरे संगी द्वै जाणा, एक वैष्णव एक राम' कहकर वैष्णवों की प्रशंसा की है। कबीर की यह वैष्णव भक्ति एक ओर तो भारतीय अद्वैतवादी भावना से प्रभावित थी और दूसरी ओर इस पर मुसलमानी ऐकेश्वरवाद का भी प्रभाव था। उन्होंने एक ऐसी समन्वय भक्ति का प्रचार किया जिसमें राम और रहीम, कृष्ण और करीम, महदेव और मुहम्मद की एकरूपता स्थापित करके एक ईश्वर की उपासना पर जोर दिया गया था। इसका मूलकारण यह था कि कबीर एक ऐसी भक्ति धारा को प्रवाहित करना चाहते थे, जिसे सभी वर्ग एवं वर्ण बिना किसी हिचकिचाहट के अपना सकें। कबीर के साहित्य में निम्नलिखित विशेषताएँ विद्यमान हैं।

1. परमात्मा की एकता
2. माधुर्यभाव
3. नामस्मरण
4. गुरु की महत्ता
5. मध्यम मार्ग का अनुसरण
6. आचरण की शुद्धता
7. प्रपत्ति भाव का अनुगमन
8. हठयोग का मिश्रण

8.7.1. परमात्मा की एकता :-

कबीर की भक्ति का मूलाधार परमात्मा की एकता है। हिन्दुओं में बहुदेवोपासना का प्रचार होने के कारण उस ईश्वर को कहीं राम, कहीं कृष्ण, कहीं शिव, कहीं दुर्गा, कहीं सरस्वती, कहीं राधा- आदि अनेक रूपों में देखा जाता है। मुसलमान ऐकेश्वरवाद के समर्थक थे। कबीर ने इन दोनों के विरुद्ध एक ईश्वर का प्रचार किया जो घट-घट वासी है, सर्वत्र समा हुआ है और निर्गुण एवं निराकार है।

"हमरै राम रहीम करीमा केसौ अलह राम सनि सोई
बिसमिल मेंटि विशंभर एकै और न दूजा कोई।।"

कहकर कबीरदास राम-रहीम, कृष्ण-करीम, केशव-अल्लाह, बिसमिल- विश्वंभर आदि सब की एकता स्थापित करते हुए परमात्मा की एकता पर जोर देते हैं। इसलिए कबीर ईश्वर-सम्बंधी भावना में एकता की स्थापना करते हुए एक ही निराकार ईश्वर की उपासना पर बल देते हैं।

8.7.2. माधुर्यभाव :-

कबीर की भक्ति भावना में माधुर्य भाव की भक्ति का पुट मिलता है, क्यों कि कबीर ने भक्ति में विभोर होकर आत्मा एवं परमात्मा के पारस्परिक वियोग का जो वर्णन किया, उसमें वैसे ही विरह की तीव्रता दिखाई देती है, जैसी माधुर्य भाव की भक्ति में देखी जाती है। कबीर की आत्मा अपने निर्गुण एवं निराकार परमात्मा के लिए विरह-व्यथित नारी की भाँति छटपटाती हुई अंकित की गई है। "उसे न दिन में सुख मिलता, न रात में। न जागने पर सुख मिलता न स्वप्न में, न धूप में सुख मिलता न छाँह में।" वह तो यहाँ तक तैयार है कि अपना शरीर जलाकर उसको भस्म कर देगी, जिससे

उसका धुआँ आकाश में छा जाए, सम्भवतः उस धुएँ को देखकर ही वे 'राम' उस विरहिणी पर दया करके अपनी कृपा की वर्षा करके उसकी वियोगाग्नि को बुझा दें। इस तरह विरहिणी की भाँति अत्यंत व्यथित आत्मा का चित्रण करके कबीर ने माधुर्यभाव की भक्ति को अपनाया था।

8.7.3. नाम-स्मरण :-

कबीर की भक्ति भावना में नाम-स्मरण का अत्यधिक महत्व माना गया है। परन्तु वह स्मरण हृदय से होना चाहिए। इसी बात पर बल देते हुए कबीरदास जी कहते हैं-

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख मांहि।
मनुआँ तो दस दिसि फिरै, इहि तो सुमिरन नांहि।।"

वे तो चाहते हैं कि स्मरण ऐसा होना चाहिए कि अपने आराध्यदेव का स्मरण करते-करते साधक उसी का रूप ग्रहण कर ले। कबीर कहते हैं- 'तेरा नामस्मरण करते-करते मैं भी तेरा ही रूप धारण कर चुका हूँ। अब मुझ में 'मैं' नहीं रही है, अब तो जिधर देखता हूँ उधर तेरा ही रूप दृष्टिगोचर होता है'

"लाली मेरे लाल की, जित देखूँ उत लाल।
लाली देखन मैं गई, मै भी हो गयी लाल।।"

इस प्रकार कबीर ने नाम-स्मरण का महत्व बताते हुए निष्काम भाव से राम-नाम जपने पर जोर दिया है और नाम जपते-जपते नाम से एकाकार हो जाने का आग्रह किया है।

8.7.4. गुरु की महत्ता :-

कबीर की भक्ति में गुरु के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। उनकी दृष्टि में गुरु, गोविन्द अर्थात् भगवान से भी बढ़कर हैं-

"गुरु गोविंद दोऊ खडे, काके लागो पाँय।
बलिहारी गुरु अपने, गोविन्द दियो बताय।।"

कहकर कबीर ने गुरु की महत्ता का प्रतिपादन किया है और "हरि रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहि गैर" कहकर गुरु को सबसे बड़ा आश्रय-स्थान माना। 'सद्गुरू' अपने शिष्य को ज्ञान का ऐसा दीपक प्रदान करता है, जिससे वह ठीक मार्ग पर चल सके। गुरु सेवा को भक्ति का एक अनिवार्य साधन घोषित करते हुए गुरु-सेवा के द्वारा ही भगवद् भक्ति की प्राप्ति की ओर कबीर ने संकेत किया। शिष्य इस संसार रूपी माया से बचकर उस परमात्मा तक पहुँचने का जो मार्ग है उसे सद्गुरु के द्वारा ही जान सकता है और बाद में भगवान में विलीन हो जाता है।

8.7.5. मध्यम मार्ग का अनुकरण :-

कबीर यह नहीं चाहते थे कि कोई भगवान् की भक्ति के लिए घर छोड़कर वन में जाए तथा अपने अंगों को सुखाकर भगवान के भजन में लीन हो जाए। वे भगवान बुद्ध की भाँति "मध्यम मार्ग" के अनुयायी थे। बुद्ध ने बताया था कि 'यदि शारीर को अधिक कष्ट देकर अथवा तपस्या द्वारा क्षीण बनाकर या उपवास आदि करके भगवान के भजन में लगाया जायेगा तो भक्ति-साधना अधिक दिन तक चल नहीं सकती। उसी प्रकार यदि शरीर विषय-भोगों में लीन रहे तो भगवान् के भजन की ओर मन उन्मुख नहीं हो सकता। अतः एक साधक भक्त को दोनों अतियों का परित्याग करके आसक्ति छोड़कर 'मध्यम मार्ग' का अनुसरण करना चाहिए। इससे वह गृहस्थी के अन्दर ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकारों पर विजय पाता हुआ अनासक्त होकर भगवद् भजन में लीन हो सकता है। मन को वश में रखनेवाला व्यक्ति गृहस्थ

होकर भी वैराग्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है और वन में एकान्तवास करनेवाले व्यक्ति का यदि अपने मन पर नियंत्रण नहीं रहेगा तो वह विरागी होकर भी विषयासक्त गृहस्थ बन जाता है। कबीर ने "एक वैरागी गृह में इस गृही में वैरागी" कहकर उक्त मत का समर्थन किया।

8.7.6. आचरण की शुद्धता :-

कबीर की भक्ति की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उसमें सदाचार पर अधिक जोर दिया गया। कबीर ने अपने साहित्य के माध्यम से आचरण की शुद्धता का आग्रह किया। आचारण की शुद्धता तभी सम्भव है जब माया के रूप कनक-कामिनियों का परित्याग करे। वे कहते हैं- "एक कनक और कामिनी। दुर्गम घाटी दोय"। उन्होंने कनक और कामिनी को भक्ति मार्ग के लिए महान् विघ्न सिद्ध किया। कबीर ने आचरण की शुद्धता के लिए कुसंगति के त्याग पर बल दिया तथा साथ ही सत्सांगत्य के महत्व का प्रतिपादन भी किया।

8.7.7. प्रपत्ति भाव का अनुगमन :-

कबीर ने भक्ति में प्रपत्ति भाव को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया। "प्रपत्ति" का अर्थ है "अनन्य भक्ति।" प्रपत्ति के छः अंग माने गये हैं- 1.अपने इष्ट देव के अनुकूल गुणों को धारण करने का संकल्प, 2.उसके प्रतिकूल गुणों का त्याग, 3. इष्ट देव द्वारा रक्षा का विश्वास, 4. रक्षक का गुणगान, 5. आत्मसमर्पण, 6. दैन्य। कबीर ने अपने संपूर्ण पदों एवं साखियों में निर्गुण एवं निराकार ब्ह्मा के गुणों का ही वर्णन किया। कबीर ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, आशा, तृष्णा आदि के परित्याग का उपदेश देते हुए भगवान् के प्रतिकूल गुणों को छोड़ने की सलाह दी। "अब मोहि राम भरोसा" कहकर कबीर ने स्पष्ट ही भगवान के द्वारा भक्त की रक्षा में विश्वास प्रकट किया तथा "तन-मन-जीवन सौंपि सरीरा" कहते हुए अपने इष्टदेव के प्रति पूर्णतया आत्मसमर्पण का भाव अभिव्यक्त किया।

8.7.8. हठयोग का मिश्रण :-

कबीर की भक्ति भावना में हठयोग का भी मिश्रण मिलता है। कबीर ने "इडा, पिंगला, सुषुन्मा, कुण्डलिनी, अष्ट चक्र" आदि का वर्णन किया। कबीर के पदों में भक्ति के साथ इनका संबंध स्थापित करते हुए हठयोग एवं प्रेम-भक्ति का अद्‌भुत समन्वय किया गया।

इस प्रकार कबीर की भक्ति-भावना का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उसमें निष्काम भाव की प्रबलता है। यह भी विदित होता है कि कबीर-साहित्य में निर्गुण ब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास प्रकट किया गया। उन्होंने मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद को खण्डन करते हुए शुद्धाचरण एवं सत्याचरण पर जोर दिया तथा भगवान् के गुण-कीर्तन को महत्व देते हुए भक्त के 'आत्मसमर्पण' को भक्ति का अनिवार्य अंग घोषित किया। कबीर के साहित्य में सत्संगति, साधुसेवा, इन्द्रिय निग्रह, माया का परित्याग, गुरु-सेवा आदि का महत्व बताते हुए भगवद् भक्ति को अपनाने का आग्रह किया गया।

8.8 बोध प्रश्न:-

1. निर्गुण भक्ति शाखा की विशेषताएँ लिखिए।
2. ज्ञानाश्रयीशाखा की विशेषताएँ लिखिए।
3. ज्ञानाश्रयीशाखा के प्रमुख कविजनों का परिचय दीजिए।
4. कबीरदास और उनके काव्य का परिचय दीजिए।
5. 'समाज सुधारक कबीर' - इस शीर्षक से एक लघु टिप्पणी लिखिए।
6. 'कबीर की भक्ति पद्धति' पर एक लघु निबंध लिखिए।

8.9 उपयुक्त ग्रन्थ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा. नागेन्द्र
2. हिन्दी साहित्य का सबोध इतिहास - बाबू गुलाब राय
3. मध्यकालीन धर्म साधना - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चंद्र गुप्त
5. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

Sri R. Bhaskara Rao
Lecturer,
Department of Hindi,
J.K.C. College (Autonomous),
Guntur.

पाठ - 9

सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा और तुलसीदास

इकाई की रूपरेखा :-

9. 1 उद्देश्य

9. 2 प्रस्तावना

9. 3 हिन्दी साहित्य का इतिहास

9. 4 हिन्दी साहित्य का काल-विभाजन

9. 5 भक्तिकाल

- 9.5.1 भक्तिकाल का सीमांकन
- 9.5.2 भक्तिकाल का परिवेश
- 9.5.3 भक्ति आन्दोलन
- 9.5.4 भक्तिकाल का काल-विभाजन

9. 6 सगुण भक्तिशाखा : पृष्ठभूमि

9. 7 रामभक्ति शाखा

- 9.7.1 रामभक्ति शाखा की विशेषताएँ
- 9.7.2 रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि

9. 8 रामभक्ति शाखा : तुलसीदास

- 9.8.1 तुलसीदास का व्यक्तित्व
- 9.8.2 तुलसीदास का कृतित्व
- 9.8.3 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ
- 9.8.4 तुलसीदास का भक्ति भाव और दार्शनिक मत
- 9.8.5 तुलसीदास का महत्व

9. 9 उपसंहार

9.10 बोध प्रश्न

9.11 सहायक ग्रन्थ सूची

9.1 उद्देश्य :-

1. इस इकाई को पढ़कर भक्तिकाल की विशेषताओं को जान जायेंगे।
2. भक्तिकाल का काल विभाजन, रामभक्तिशाखा की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
3. तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का पूरा ज्ञान प्राप्त करेंगे।

9.2 प्रस्तावना :-

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं। प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है। यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के साथ-साथ साहित्य में परिवर्तन होता जाता है। इसीको साहित्येतिहास कहा जाता है। साहित्य की मूल भाषा संस्कृत है। संस्कृत से पाली, प्राकृत, अपभ्रंश- वहाँ से पुरानी हिन्दी तथा खड़ीबोली हिन्दी का विकास हुआ। हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति 'सिन्ध' शब्द से हुई मानी जाती है। क्रमशः 'सिन्ध' से हिन्दी शब्द का विकास हो गया।

9.3 हिन्दी साहित्य का इतिहास :-

विभिन्न साहित्यकारों ने अपने-अपने मतानुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभजन किया। मिश्रबंधु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, जैसे साहित्यकारों ने भिन्न-भिन्न रूपों में काल विभाजन किया। आचार्य शुक्ल ने साहित्येतिहास के प्रति एक निश्चित व सुस्पष्ट दृष्टिकोण का परिचय देते हुए युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में साहित्य-विकास-क्रम की व्याख्या करने का प्रयास किया। हिन्दी साहित्य लेखन की परम्परा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार हिन्दी साहित्य का आरम्भ ग्यारहवी शताब्दी से हुआ। हिन्दी साहित्य के लगभग 900 वर्षों के इतिहास के अध्ययन की सुविधा के लिए हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किया गया है।

9.4 हिन्दी साहित्य का काल विभाजन :-

हिन्दी साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए चार कालों में विभाजित किया गया है। तत्कालीन साहित्यिक परिवेश को दृष्टि में रखकर इन चार कालों का नामकरण भी किया गया है।

1. आदिकाल या वीरगाथकाल (संवत् 1050-1375)

2. भक्तिकाल (संवत् 1375-1700)

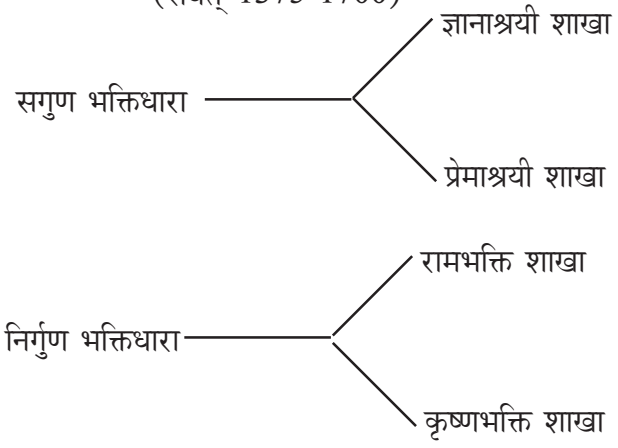

3. रीतिकाल (संवत् 1700-1900 वि. तक)

4. आधुनिक काल (संवत् 1900 से लेकर आज तक)

1. भारतेन्दु युग
2. द्विवेदी युग
3. छायावादी युग
4. प्रगतिवादी युग
5. प्रयोगवाद व नयी कविता-युग

9. 5 भक्तिकाल :-

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना जाता है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल एक प्रकार से लडाई-झगडों का समय था। राजपूतों की वीरता का ह्रास हो चुका था। मुसलमान शासकों के अत्याचारों से ऊबकर जनता की रुचि भक्ति की ओर बढ़ी। भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में भक्ति-मार्ग का विशिष्ट स्थान है। वैदिक युग के यज्ञ सम्बन्धी विधि-विधानों पर केन्द्रित भक्ति का अन्त होकर श्रद्धामूलक भक्ति का आविर्भाव हो गया जो आगे चलकर बहुदेववाद और एकदेववाद में परिणत हो गया। प्राकृतिक शक्तियों के दैवीकरण के बाद देवताओं का मानवीकरण होने लगा, जिसकी परिणति अवतारवाद में हो गई।

9. 5.1. भक्तिकाल का सीमांकन :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार भक्तिकाल का आरम्भ संवत् 1375 से 1700 तक माना जाता है। भक्ति की प्रवृत्ति अधिक होने से इस काल का नाम 'भक्तिकाल' रखा गया।

9.5.2. भक्तिकाल का परिवेश :-

राजनीतिक दृष्टि से भक्तिकाल के समय में भारत पर पठानवंश और मुगलवंशों का शासन रहा। उनके अधीन हिन्दू जनों की स्थिति अस्तव्यस्त थी। सामाजिक दृष्टि से देश की स्थिति उथल-पुथल थी। हिन्दू समाज में वर्णाश्रम धर्म का पालन न होने से अनेक जातियों, उपजातियों की संख्या बढ़ गयी। सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक उत्थान-पतन हुए। धर्माचार के नाम पर अनाचार, मूढ़विश्वास, बाह्याडम्बर बढ़ गए।

9.5.3. भक्ति आन्दोलन :-

मध्ययुगीन धर्मों में जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई जैसे भिन्न-भिन्न धर्म होने पर भी हिन्दू-इस्लाम दो ही प्रधान धर्म रह गए। मुसलमान शासकों के अधीन हिन्दूलोग निराशाग्रस्त थे। इसलिए कुछ सुधारकों ने हिन्दू जाति में भक्ति के द्वारा नयी चेतना लाने का प्रयत्न किया। ये लोग इस्लाम धर्म के विरोधी तो नहीं, किन्तु अपना अलग धर्मिक व्यक्तित्व बनाना चाहते थे। इस कारण से देश के चारों ओर भक्ति आन्दोलन चल पड़ा, जिसका प्रभाव उस समय के साहित्य पर पड़ा।

9.5.4. भक्तिकाल का काल विभाजन :-

मुसलमान शासकों से तंग आकर जनता का मन भक्ति की ओर चला। जनता ने अपने जीवन को सुखी रखने के लिए ईश्वर को सर्वस्व माना। कवि लोग भी जनता में भक्ति भाव जगाने के लिए भक्तिरसात्मक रचनाएँ करने लगे।

आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना छोड़कर कवि 'स्वान्तः सुखाय' रचनाएँ करने लगे। ईश्वर की उपासना को दृष्टि में रखकर भक्तिकाल को दो शाखाओं में और दो उपशाखाओं में विभाजन किया गया है।

1. निर्गुण भक्तिधारा - ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा
2. सगुण भक्तिधारा - रामभक्ति शाखा, कृष्णभक्ति शाखा

निर्गुण भक्तिधारा :- इस शाखा के कवि निराकार, अगोचर ईश्वर के प्रति विश्वास करते हैं। वे गुरु को महानता देते हैं। गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान और प्रेमतत्व से ईश्वर को पाना चाहते हैं। हिन्दू और मुसलमान के भेदभाव को मिटाना, मूर्तिपूजा का विरोध, अंध विश्वासों का खण्डन इस धारा के उद्देश्य हैं। इसकी दो शाखाएँ हैं -

1. ज्ञानाश्रयी शाखा 2. प्रेमाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा :- इस शाखा के कवि संतकवि माने जाते हैं। वे ईश्वर को निराकार मानते हैं। वे ईश्वर से अधिक गुरु को महत्त्व देते हैं। कबीरदास, रैदास, दादूदयाल इस शाखा के प्रमुख कवि थे।

प्रेमाश्रयी शाखा :- इस शाखा के कवियों को 'सूफी कवि' कहा जाता है। वे पीर को महान मानते हैं। ईश्वर और जीव के बीच के प्रेमबन्धन को वे महत्त्व देते हैं। ये कवि लौकिक प्रेमतत्व के द्वारा अलौकिक प्रेम तत्व को पाने का साधन करते थे। मलिक महम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन इस शाखा के प्रमुख कवि थे।

सगुण भक्तिधारा :- ईश्वर की सगुणोपासना पर इस धारा के कवि विश्वास करते हैं। ईश्वर के नाम के आधार पर इस धारा को दो शाखाओं में विभाजित किया गया। वे हैं -

1. रामभक्ति शाखा 2. कृष्णभक्ति शाखा

रामभक्ति शाखा :- श्रीराम को अवतार पुरुष मानने वाले कवि इस शाखा के अन्तर्गत आते हैं। पंडित रामानंद इस शाखा के प्रवर्तक थे। इस शाखा के कवि भगवान श्रीरामचन्द्र को लोककल्याणकारी, मर्यादा-पुरुषेत्तम मानते हैं। उनकी भक्ति दास्य पद्धति पर आधारित है। वे राजाश्रय का परवाह न करके सगुण रूपी श्रीराम पर विश्वास करते हैं। तुलसीदास, हृदयराम, नरहरिदास, प्राणचन्द चौहान इस शाखा के प्रमुख कवि थे।

कृष्णभक्ति शाखा :- इस शाखा के कवि श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मानते हैं। वे कृष्ण को लोकरंजक और लीलापुरुषोत्तम मानते हैं। उनकी भक्ति सख्य पद्धति पर आधारित थी। इस शाखा के कवियों ने राधा-माधव लीलाओं का वर्णन मुक्त कण्ठ से किया। सूरदास, मीराँ बाई, रसखान इस शाखा के प्रमुख कवि थे।

9.6 सगुण भक्तिधारा की पृष्ठभूमिः-

सगुण भक्तिधारा का मूल दक्षिण भारत में है। दक्षिण में रामानुजाचार्य ने 'विशिष्टाद्वैत' संप्रदाय को चलाया। दक्षिण से इस संप्रदाय का प्रचार उत्तर भारत में होने लगा। रामानन्द, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, निम्बार्काचार्य के संप्रदाय इसीसे आगे बढे। इस प्रकार सगुण भक्तिधारा प्रवाहित हो चली।

हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था। हिन्दू जनता मुस्लिम आक्रमणों से भयभीत होने की अपेक्षा अधिक सजग और सचेत हो गयी। घर-घर में देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हो गयीं। यह प्रकृति सगुणभक्ति के अनुकूल पड़ी।

9.7 रामभक्ति शाखा :-

9.7.1. रामभक्ति शाखा की विशेषताएँ :-

सगुण भक्ति शाखा के अन्तर्गत इस शाखा के कवियों ने श्रीराम को लोकरक्षक के रूप में माना। रामकथा का मूल आधार मूल रूप से वाल्मीकी रामायण ही रहा। रामानन्द इस शाखा के प्रवर्तक थे।

ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का समन्वय इस शाखा के कवियों में स्पष्ट मिलता है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम को लोकरक्षक, लोकमंगलकारी के रूप में रखकर आदर्श समाज की स्थापना करना इनका लक्ष्य था। दिशाविहीन समाज को एक निर्दिष्ट दिशा देना इनका मौलिक उद्देश्य था।

9.7.2. रामभक्ति शाखा के प्रमुखकवि :-

गोस्वामी तुलसीदास इस शाखा के प्रमुख कवि थे। उनका महाकाव्य 'रामचरित मानस' रामभक्ति शाखा का प्रतिनिधि काव्य है। केशवदास, स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, नरहरिदास इस शाखा के प्रमुख अन्य कवि थे। केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका', नाभादास का 'भक्तमाल', प्राणचन्द चौहान का 'रामायण महानाटक', हृदयराम का 'हनुमन्नाटक' उस समय के प्रमुख रामकाव्य माने जाते हैं।

9.8 रामभक्तिशाखा : तुलसीदास :-

गोस्वामी तुलसीदास अपने समय के प्रमुख रामभक्त कवि थे। हिन्दूधर्म के मूल सिद्धान्तों का प्रचार करके शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के पारस्परिक मतभेद को दूर करने का प्रयास उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा किया। उन्होंने रामायण की कथा को घटाया - बढ़ाया भी है। 'रामचरित मानस' के माध्यम से समाज को एक दिशा-निर्देशन देने का प्रयास गोस्वामी तुलसीदास ने किया।

9.8.1. तुलसीदास का व्यक्तित्व :-

तुलसीदास जी का जन्म 15वीं शताब्दी माना जाता है। 'गोसाईचरित' के आधार पर उनका जन्म संवत् 1554 वि. है। बहुमत के अनुसार बान्दा जिले में कालिन्दी के तट पर स्थित राजापूर को उनका जन्मस्थान माना जाता है -

"पन्द्रह सौ चौवन विषें, कालिन्दी के तीर।
सावन शुक्ल सप्तमी, तुलसी धरयौ शरीर।।"

उनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। 'गोसाई चरित' में इसका प्रमाण है-

"हुलसी सुत तीरथ राज गये।"

उनका बचपन बडी कठिनाइयों में बीता। उनका विवाह रत्नावली के साथ हुआ। तुलसीदास अपनी पत्नी के प्रति इतने मोहित थे कि उसे छोडकर एक दिन भी रहा नहीं जा सकता। कहा जाता है कि एकबार रत्नावली मैके जाने पर उसे देखने के लिए तुलसीदास आधीरात के समय में नदी में बाढ़ आने पर भी उसे पार करके उसके पास चले गये। इससे लज्जित होकर रत्नावली ने कहा-

"लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहहु हौं नाथ।।
अस्थि चरम मय देह मम, तामे ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम महँ, होति न तव भवभीति।।"

पत्नी की इन बातों से तुलसीदास विरक्त होकर चले गये। उनके मन में राम के प्रति भक्ति का उदय हो गया। अनेक प्रान्तों में उन्होंने भ्रमण किया और अन्त में काशी में बस गये। उनकी मृत्यु लग-भग 16वीं शती में मानी जाती है। इस संदर्भ में उनका यह दोहा प्रचलित है-

"सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ल सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर।।"

9.8.2. तुलसीदास का कृतित्व :-

तुलसीदास जी ने लगभग 12 ग्रन्थ लिखे जिनका विवरण इस प्रकार है-

1. रामचरित मानस (सन् 1631) :- तुलसीदास जी का यह ग्रन्थ रामायण नाम से सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसीके आधार पर तुलसीदास को महाकवि का यश प्राप्त हुआ।

2. रामलला नहछू (सन् 1643) :- यह 20 सोहर छन्दों का छोटा-सा ग्रन्थ है।

3. वैराग्य संदीपनी (सन् 1669) :- यह 62 छन्दों का छोटा-सा ग्रन्थ है। इसमें सन्त महन्तों के लक्षण दिये गये।

4. बरवै रामायण (सन् 1669) :- इसमें बरवै छन्द में रामचरित है। इसके 7 काण्ड और 69 छन्द हैं।

5. पार्वती मंगल (सन् 1643) :- इसमें शिव और पार्वती के विवाह का वर्णन है। इसमें 164 छन्द हैं।

6. जानकी मंगल (सन् 1643) :- इसमें सीता जी की कथा कही गयी है। इसमें 216 छन्द हैं।

7. रामाज्ञा (सन् 1669) :- इसका आधार भी रामायण ही है। इसमें राम-कथा वर्णित है।

8. कवितावली (सन् 1768-1771) :- इसका दूसरा नाम 'कवित्त रामायण' है। इसमें कवित्त, सवैया, धनाक्षरी, छप्पय आदि छन्द हैं। उनकी संख्या 335 है।

9. गीतावली (सन् 1627) :- इसमें अष्टछाप के कवियों की-सी गीत शैली के पद हैं। कथा-प्रसंग कुछ भेद के साथ रामायण से मिलता जुलता है। इसमें भी 7 खंड और 330 छन्द हैं।

10. कृष्ण गीतावली (सन् 1626) :- इसमें कृष्ण कथा का वर्णन है। इसमें कुल-मिलाकर 61 पद हैं।

11. विनयपत्रिका (सन् 1636-1640) :- इसमें विविध राग-रागिनियों पर आधारित विनय सम्बन्धी पद हैं। इसके माध्यम से तुलसीदास ने भगवान श्रीरामचन्द्र को अपनी विनति प्रस्तुत की। इसमें लगभग तीन सौ पद हैं।

12. दोहावली (सन् 1640) :- इसमें दोहों की संख्या 573 है जिसमें 85 दोहे रामचरितमानस में से ही लिये गये हैं। इसके अधिकांश दोहे भक्ति तथा उपदेश से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

9.8.3. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएँ:-

तुलसीदास का 'रामचरितमानस' काव्य जनता में धर्मग्रन्थ के रूप में मान्य हो चुका है। तुलसीदास ने इस ग्रंथ में जीवन के विभिन्न आदर्शों को चित्रित किया। श्रीरामचन्द्र की शक्ति, शील और सौन्दर्य से समन्वित आदर्शों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। अन्य ग्रन्थों के द्वारा भी रामभक्ति का प्रचार उन्होंने किया। 'राम' नाम की महानता को एक दोहे में उन्होंने लिखा-

"राम नाम मणि दीप धरू, जीभ देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहू, जो चाहसि उजियार।।"

वे केवल राम भक्त ही नहीं बल्कि समाज-सुधारक तथा जाति भेद को मिटाने वाले समन्वयकर्ता के रूप में दिखाई पडते हैं। भक्ति के साथ-साथ कर्म और ज्ञान का समन्वय उनमें दर्शित होता है।

उनके दोहों में समाज के लिए सन्देश और उपदेशात्मक दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। साधु लोगों के प्रति आदर भाव व्यक्त करते हुए एक दोहे में उन्होंने लिखा-

"तुलसी सन्त सुअंब-तरु, फूलि-फलहि पर-हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत।।"

जाति-पाँति के भेद भाव को दूर करते हुए उन्होंने कहा -

"धूत कहाँ, अवधूत कहाँ, राजपूत कहाँ, जोलहा कहाँ कोऊ।
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगारि न सोऊ।।"

9.8.4. तुलसीदास का भक्ति भाव और दार्शनिक मत :-

कुछ लोग गोस्वामी तुलसीदास को 'स्मार्त वैष्णव' बताते हैं और कुछ लोग रामानन्दी सम्प्रदाय का मानते हैं। जो भी हो, वे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी के अनन्य भक्त थे और सारे संसार को 'सियाराम मय' देखते थे। तुलसी ने भक्ति और प्रेम-पिपासा में चातक को आदर्श माना है। उनकी भक्ति दास्य-पद्धति की थी। वे सेवक भक्ति के बिना मुक्ति नहीं मानते - 'सेवक-सेव्य भाव बिनु, भव न तरिए उरगारि"। वे मायावाद से भी अवश्य प्रभावित हुए थे, इसीलिए उन्होंने लिखा- "गो गोचर जहँ लगि मन जाई। तहँ लगि माया जानउ भाई।।"

भक्ति-भावना के साथ द्वैत-भावना को भी उन्होंने मान्यता दी। इसलिए उन्होंने ईश्वर और जीव को अलग-अलग ही माना। उनकी दृष्टि से ज्ञान मार्ग की अपेक्षा भक्ति मार्ग ही सुलभ है। तुलसीदास ने ज्ञान को दीपक माना जो संसार की हवा से बुझ सकता है। उन्होंने भक्ति को चिन्तामणि कहा, जिस पर हवा का कोई असर नहीं होगा। भक्ति मात्र साधना ही नहीं, साध्य भी है। इसी भक्ति साधना के कारण उन्होंने सगुणोपासना को प्रधानता दी और वे ब्रह्म के सगुण अवतार 'राम' के वर्णन में सफल हो गये।

9.8.5. तुलसीदास का महत्व :-

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय की जनता के हृदय से हृदय मिलाकर उसके आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त किया। ऐसा कोई रस नहीं, जिसका उनके काव्य में पूर्ण परिपाक न हुआ हो, ऐसा कोई भाव नहीं जिसकी सुन्दर व्यंजना उनके काव्य में न हुई हो।

उन्होंने आरम्भ में ब्रज और बाद में अवधी भाषा को अपनाया। भाषा के सम्बन्ध में वे बड़े उदार और प्रगतिशील थे। संस्कृत के दुरूह होने के कारण उसके द्वारा हिन्दू-धर्म के सिद्धान्तों को व्यापक बनाना कठिन था। इसलिए उन्होंने हिन्दी भाषा को अपनाया। हिन्दी में लिखने के कारण उनको पण्डित समाज के विरोध का भी सामना करना पड़ा। किन्तु उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। वे उत्तम भाव चाहते थे, भाषा के पीछे नहीं पड़े थे। एक दोहे में उन्होंने कहा-

"का भाषा का समसकृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करिअ कुमाँच।।"

9. 9 उपसंहार :-

इस प्रकार तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में केवल रामभक्ति का प्रचार ही नहीं किया अपितु समाज के लोकमंगल रूप को भी देखने की अभिलाषा व्यक्त की। अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में सुधार, हिन्दू-मुस्लिम के बीच समन्वय लाने का प्रयत्न उन्होंने किया और सफल भी हुए। उनकी इन विशेषताओं से वे मध्ययुग के सबसे बड़े लोकनायक माने गये। 'सूर सूर तुलसी ससी' की उक्ति के अनुसार हिन्दी आकाश जगत् में सूरदास 'सूर्य' के समान हैं तो तुलसीदास चन्द्रमा के समान।

9.10 बोध प्रश्न :-

1. भक्तिकाल के काल विभाजन पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. रामभक्ति शाखा की विशेषताओं पर एक लेख लिखिए।
3. तुलसीदास के जीवन और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
4. पाठ के आधार तुलसीदास की संपूर्ण रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।
6. गोस्वामी तुलसीदास को लोकनायक क्यों कहा जाता है? अपने शब्दों में लिखिए।

9.11 सहायक ग्रन्थ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ. नगेन्द्र
2. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास	:	डॉ. गुलाबराय
3. त्रिवेणी	:	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. महाकवि तुलसीदास	:	जयचंद काम्टे
5. रामभक्ति शाखा के कवि	:	डॉ. प्यारे मोहन चन्दानी

Dr.P.V.D. Sreedevi.
Lecturer,
Department of Hindi,
Sapthagiri Degree College,
Vijayawada.

पाठ - 10

सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा और सूरदास

इकाई की रूपरेखा :

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ

10.3.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

10.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

10.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

10.3.4 भक्तिकाल का वर्गीकरण

10.4 सगुण भक्तिधारा - कृष्णभक्ति शाखा

10.4.1 कृष्णभक्ति शाखा की विशेषताएँ

10.5 सूरदास

10.5.1 जीवनी

10.5.2 सूरदास की काव्य-कृतियाँ

10.5.3 काव्यगत विशेषताएँ

10.6 मीराबाई

10.6.1 काव्यगत विशेषताएँ

10.7 बोध प्रश्न

10.8 सहायक ग्रंथ-सूची

10.1 उद्देश्य :-

1. हम इस इकाई को पढ़कर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की परिस्थितियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
2. भक्तिकाल के वर्गीकरण के बारे में जानेंगे।
3. सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा का परिचय प्राप्त करेंगे।
4. कृष्णभक्ति शाखा की विशेषताओं के बारे में जानेंगे।
5. कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व के बारे में भी ज्ञान प्राप्त करेंगे।
6. हिन्दी साहित्य की कवइत्रियों में प्रमुख कवइत्री मीराबाई के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

10.2 प्रस्तावना :-

सुप्रसिद्ध समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में भक्तिकाल का समय संवत् 1375-1700 वि. तक माना। अनेक विद्वान भक्तिकाल को 'स्वर्णयुग' मानते हैं। भक्तिकाल का साहित्य पूर्ववर्ती और परवर्ती साहत्य में निस्संदेह उत्तम है। इस काल के साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति भक्ति है। भगवान के सगुण और निर्गुण रूपों को मान्यता मिली। संतों ने भगवान के निर्गुण-रूप को अपनाया तो कई कवि लोक-मत के अनुरूप भगवान के सगुणरूप की ओर आकर्षित हुए। भक्ति और काव्य का इतना सुंदर मिश्रण और किसी काल में नहीं पाया जाता। निर्गुण भक्तिधारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों ने निर्गुणवाद के द्वारा हिन्दू और मुसलमान जनों के मध्य समन्वय लाने का प्रयास किया। कबीरदास इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। निर्गुण भक्तिधारा की प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने हिन्दू प्रेमाख्यानों के माध्यम से अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। जायसी इस शाखा के प्रतिनिध कवि हैं। तुलसी, सूर आदि कवियों ने भगवान के सगुण या साकार ब्रह्म की उपासना की। इस सगुण भक्ति की दो उपशाखाएँ हुई - रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा।

श्रीमन्नारायण के दस अवतारों में रामावतार और कृष्णावतार को विशेष प्रधानता मिली। रामभक्ति शाखा के कवि राम की विशेष उपासना करते थे। तुलसीदास इस शाखा के प्रतिनिधि कवि तथा समस्त हिन्दी साहित्य के लोकप्रिय कवि के रूप में विख्यात हैं। सूरदास, मीराबाई, अष्टछाप के कब्रि भगवान श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मानते थे। इस शाखा को कृष्णभक्ति शाखा कहते हैं। सूरदास इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में उच्चकोटि के अनेकानेक कवि हुए।

इस इकाई के अंतर्गत सगुण भक्तिधारा की कृष्णभक्ति शाखा का परिचय पायेंगे। सूरदास के जीवन तथा काव्यों के बारे में जानेंगे। मीराँ बाई का भी परिचय प्राप्त करेंगे।

10.3 भक्तिकाल की परिस्थितियाँ :-

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल की संज्ञा दी। भागवत धर्म के प्रचार के फलस्वरूप संपूर्ण भारत में भक्ति आंदोलन चला। इस अवधि में जनभाषा हिन्दी में विपुल भक्ति-साहित्य का सृजन हुआ। उस समय की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य का निर्माण हुआ।

10.3.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ :- आदिकाल लड़ाई-झगड़ों का समय था। हिन्दू नरेश पारस्परिक युद्धों में व्यस्त थे। उसी समय भारत पर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे। इस तरह भारत में राजनैतिक आँधी चल रही थी। लेकिन आँधी के बाद शांति को आना ही है। इसीलिए भारत में तदुपरांत शांति का वातावरण निर्मित हुआ।

भारत पर गजनवी ने अनेक बार आक्रमण किए। वह थानेश्वर और कन्नौज पर विजय प्राप्त कर चुका। उसके पश्चात् गोरी ने भी कई बार चढ़ाइयाँ कीं। पर वह बार-बार हिन्दू नरेशों के हाथ परास्त होता था। लेकिन वह कभी विमुख नहीं हुआ। आखिर वह भारत में अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुआ। उसके बाद दिल्ली की गद्दी पर गुलाम, खिलजी, सैयद और लोदी वंशों ने शासन किया। उसके बाद दिल्ली सल्तनत क्षीण होने लगी। बाबर ने इब्राहीम लोदी को हराकर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। उसकी मृत्यु के उपरांत हुमायूँ तथा उसके पश्चात् अकबर गद्दी पर आसीन हुए। उस समय राजपूतों का बोलबाला था। जब तक उनमें शक्ति और वीरता थी तब तक वीरगाथाएँ उत्साह भरती थीं। भक्तिकाल तक आते-आते राजपूतों की शक्ति क्षीण हो गयी और अब वे उस स्थिति को पहुँचे जहाँ वे न तो परस्पर लड़ सकते थे और न मुसलमानों से। एकता न होने के कारण वे परास्त हो गये। देश में विधर्मियों का शासन जम गया और देशवासियों

की यातनाएँ बढ़ गयीं। हिन्दुओं के सामने उनके देव-मन्दिर गिरा दिये गये। पराजित हिन्दू जाति कुछ कर नहीं सकती थी। कवियों का राजाश्रय समाप्त हो गया। ऐसी दशा में कवि वीरगीतों की रचना भी नहीं कर सकते थे।

राजपूत लोग परास्त होकर आत्मग्लानि का अनुभव कर रहे थे। उनके सामाने सवाल यह था कि अब उन्हें क्या करें। मुसलमान लोग भी युद्धों से ऊब गये। वे भी आराम करना चाहते थे। वे यह भी जान गये कि हिन्दुओं के सहयोग के बिना ज्यादा दिन भारत में शासन करना कठिन है। वे शांति पाने की इच्छा से हिन्दुओं की ओर देखने लगे। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों के मन में सहयोग की भावना तथा मिलाप की प्रवृत्ति के अंकुरित होने का अनुकूल वातावरण सहज ही बन गया।

10.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :- भारत में मुसलमानों का राज स्थिर हो गया। हिन्दू नरेशों को उनके सामने झुकना पड़ा। प्रजा पर शासकों के अत्याचार अधिक हो गये। जनता में हिन्दू समाज का विशेषरूप से शोषण होने लगा। हिन्दुओं से भूमि कर, आय कर, जल कर आदि कर वसूल किए जाने लगे। खेतों में खून पसीना एक करनेवाले किसानों की कमाई का अधिक भाग भूमि कर के रूप में राजकोश में जाने लगा। आजीविका के लिए हिन्दुओं को निरंतर संघर्ष करना पड़ता था। हिन्दुओं के मंदिर तोड़कर अनेक स्थानों पर मसज़िदें बनायी जाने लगीं। इस युग में विलासिता की वृद्धि हुई। हिन्दू और मुसलमान मौलिक रूप से पतित होने लगे। मदिरा का प्रचार था। समाज में अंधविश्वास घुस गये। धार्मिक शिथिलता आ गयी। उस समय दास-प्रथा थी। मुसलमान हिन्दू कन्याओं को खरीदकर अपने घर रखते थे। अबलाओं के मान और पात्रिव्रत्य का मूल्य ही नहीं रह गया। बाल विवाहों को बढ़ावा मिला। सती प्रथा और परदा प्रथा- जो आदिकाल में जन्मीं, अब तक समाज में स्थिर हो गयीं। हिन्दुओं की मान-मर्यादा, प्राण तथा संपत्ति की रक्षा नहीं थी। हिन्दू जाति के लिए जीवन दुर्भर हो गया।

यह बात सत्य है कि जब मनुष्य को अपने बल का सहारा नहीं मिलता तो उस समय वह भगवान की शरण में जाता है। हिन्दू लोग पूर्ण रूप से शक्तिहीन हो गये। अब उन्हें अपनी रक्षा की आशा रह गयी केवल दीनबन्धु, दीनरक्षक, ईश्वर से। इस प्रकार लोगों में भक्ति भावना बढ़ने लगी।

10.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ :- भारत का प्राचीन धर्म वैदिक धर्म था। जैन धर्म और बौद्ध धर्म ने भी समाज को प्रभावित किया। उनके साथ-साथ सिद्ध मत, नाथ पंथ भी सामने आये। उस समय शैव और शाक्त लोगों का भी प्रचार था। विराट् बौद्ध धर्म के दो रूप हुए हीनयान और महायान। आगे चलकर महायान से मंत्रयान, मंत्रयान से वज्रयान निकले। इस तरह बौद्ध धर्म के अनेक रूप हुए। जैन धर्म की भी दो शाखाएँ हुईं- दिगम्बर और श्वेताम्बर। वज्रयानी साधक सिद्ध कहलाते थे। वे तंत्र मंत्रों को ही धार्मिक साधना मानते थे। वे सिद्धियों और चमत्कारपूर्ण प्रदर्शनों से लोगों को गुमराह करते थे। इस प्रकार उस समय शुद्ध सात्त्विक धर्म का लोप था।

सिद्धों में गोरखनाथ प्रमुख थे। उन्होंने हठयोग को प्रोत्साहन दिया। (नाथपंथी साधना पद्धति को ही हठयोग कहा जाता है।) उन्होंने वज्रयान के बीभत्स विधानों से, बौद्धों के निरीश्वरवाद से अलग होकर ईश्वरवाद की प्रतिष्ठा की। जप, तप, मूर्तिपूजा के प्रति उपेक्षा दिखाते हुए उन्होंने ईश्वरवाद को प्रमुखता दी। उन्होंने ईश्वर को घट-घटवासी बताकर, उसे प्राप्त करने के लिए हठयोग साधना को साधन बताया। सिद्धों और योगियों का प्रभाव अशिक्षित और अर्धशिक्षित जनता पर पड़ा।

भारतीय अद्वैतवाद और सूफियों के एकेश्वरवाद के मिलन से निर्गुण भक्तिधारा का जन्म हुआ। इसकी दो उपशाखाएँ हुईं- ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। जब बौद्ध धर्म दब गया तो वैष्णव भक्ति का उत्कर्ष होने लगा। पण्डितों में

शास्त्रार्थ होते रहे। दार्शनिक विचारधाराओं के खण्डन-मण्डन में साहित्य सृजन होने लगा। उपनिषद, गीता भाष्यों की परंपरा चली। उसी समय रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य अपनी-अपनी दार्शनिक विचारधाराओं से सगुण भक्ति का प्रतिपादन कर रहे थे। प्राचीन काल से भारत में ईश्वर को अवतार पुरुष मानकर उसकी उपासना की जा रही है। इस समय भगवान के अवतारों में दो अवतारों को, राम और कृष्ण को विशेषरूप से प्रधानता मिली। रामानुजाचार्य ने रामभक्ति का प्रचार किया। वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति का प्रचार किया।

10.3.4 भक्तिकाल का वर्गीकरण :- भक्ति की धारा इस युग में अबाध रूप से बहती गयी। इस धारा की प्रधानतः दो शाखाएँ हुईं :

1.निर्गुण भक्तिधारा

2. सगुण भक्तिधारा।

इन धाराओं की उपशाखाएँ भी हुईं : ज्ञानाश्रयी शाखा और प्रेमाश्रयी शाखा तथा रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा।

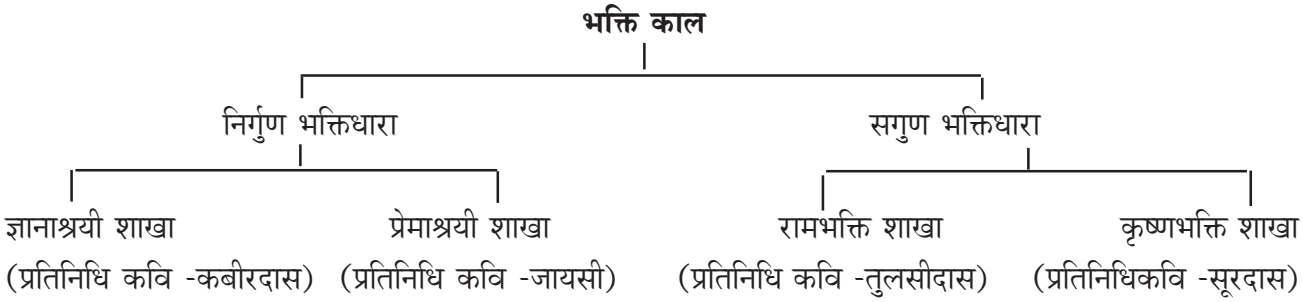

10.4 सगुण भक्तिधारा - कृष्णभक्ति शाखा :-

भारतवर्ष में ईश्वर की प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बताये गये- ज्ञान, भक्ति और कर्म। इनमें कभी किसी की प्रधानता रही तो कभी दूसरे की। लेकिन भक्तिमार्ग मानव प्रवृत्ति के अनुकूल होने के कारण लोकप्रिय हो गया। वैदिक धर्म में कर्ममाण्ड की प्रधानता के कारण बौद्ध धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म के कठोर बंधनों से लोग असंतुष्ट थे। अतः फिर सुधार की आवश्यकता हुई। उसी समय शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उसी समय वैष्णव धर्म काफी लोकप्रिय हुआ। इस युग में भक्ति की प्रधानता रही। लेकिन मार्ग अनेक थे। ईश्वर की सत्ता को सबने स्वीकार किया। सूफियों की मधुरोपासना एक ओर प्रभाव डाल रही थी। निर्गुणोपासक संत कवि सामान्य लोगों का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। दक्षिण में आलवार भक्तों ने वैष्णवभक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। यों तो भारत में अवतारवाद सनातन काल से ही प्रचलित था। महाभारत में श्रीकृष्ण ने कहा

" परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।"

भगवान विष्णु ने साधुओं की रक्षा करने एवं दुष्टों का नाश करने हेतु युगानुरूप अवतार ग्रहण किए। इन अवतारों में किसी को रामावतार अच्छा लगा तो किसी को कृष्णावतार। ये दो अवतार भगवान विष्णु के ही थे। शंकराचार्य के अद्वैतवाद में प्रतिपादित मायावाद सिद्धांत के विरोध में जो आचार्य हुए उनमें वल्लभाचार्य का विशेष स्थान है। वल्लभाचार्य

वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने यह माना कि श्रीकृष्ण परमब्रह्म हैं। वे सत्, चित् और आनंद स्वरूप हैं। वे लीला करने के लिए व्रज में अवतरित हुए। वल्लभाचार्य की विचारधारा को शुद्धाद्वैत कहते हैं। इसीका व्यावहारिक पक्ष 'पुष्टिमार्ग' है। (भगवान के अनुग्रह को ही 'पुष्टि' कहा जाता है।) इनका आराध्य देव 'बालकृष्ण' है। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग को उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया। उन्होंने 'अष्टछाप' मण्डली की स्थापना की। सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, कुंभनदास, चतुर्भुज दास, छीतस्वामी और गोविन्दस्वामी- इन आठ कवियों को अष्टछाप कवि कहा जाता है। इनमें सूरदास कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं।

10.4.1 कृष्णभक्ति शाखा की विशेषताएँ :-

1. कृष्ण की भक्ति :- इस शाखा के कवियों ने भगवान विष्णु के अवतारों में श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट की। कृष्णलीलाओं का वर्णन करके अपनी भक्ति प्रदर्शित की। उनके कृष्ण ब्रह्म भी हैं और उनके सखा भी।

2. लोकरंजक रूप :- इस शाखा के कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का गान किया है। उनके वर्णन में श्रीकृष्ण के लोकरंजक रूप प्रकट होता है। सूरदास के द्वारा वर्णित बाललीला, माखनचोरी, रासलीला भक्त हृदयों को आनंद प्रदान करनेवाली हैं।

3. भक्ति के विविध रूप :- इस शाखा के कवियों ने भक्ति का वर्णन दीक्षित संप्रदाय के अनुसार किया। भक्ति के पाँच विशिष्ट भावों का (शृंगार, सख्य, दास्य, वात्सल्य और शांत) वर्णन सूरदास ने किया। नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन) की अभिव्यक्ति भी इस शाखा के कवियों ने समय-समय पर की है।

4. वात्सल्य और शृंगार रस वर्णन :- इस शाखा के कवियों ने सभी रसों का वर्णन किया लेकिन इनका वात्सल्य और शृंगार वर्णन अद्वितीय है। सूरदास ने ही वात्सल्य को स्वतंत्र रस का स्थान दिलाया। उन्हें वात्सल्य और शृंगार रस सम्राट कहा जाता है। शृंगार के दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) का सुंदर वर्णन किया।

5. प्रकृति वर्णन :- कृष्ण काव्य में प्रकृति चित्रण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। श्रीकृष्ण की लीलाभूमि व्रजगाँव है। ग्रामीण वातावरण में प्रकृति का राज्य होता है।

6. भाषा :- कृष्णभक्ति शाखा के कवियों की भाषा ब्रज भाषा है। उनकी भाषा में सरलता, सरसता, भावानुकूलता, प्रसंगानुकूलता आदि विशेषताएँ पायी जाती हैं। भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं। इस शाखा के कवियों की भाषा सशक्त है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा सजीव बन पड़ी।

7. छन्द :- छप्पै, कुण्डलिया, कवित्त, सवैया, चौपाई आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। कृष्णभक्ति शाखा के साहित्य में पदों का प्रयोग हुआ।

8. अलंकार :- इस शाखा के कवियों ने अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि अलंकार उनके काव्य में खूब मिलते हैं।

9. काव्य-रूप :- कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने मुक्तक काव्यों की रचना की। कुछ विद्वान सूरदास के 'सूरसागर' को प्रबन्धकाव्य मानते हैं।

10. रीति-काव्य :- कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में सूरदास, कुंभनदास तो प्रसिद्ध गायक थे। भगवान की सेवा में गाने के लिए गीतों की रचना उन्होंने की। उन गीतों में भावुकता और तन्मयता है। गीति-काव्य की दृष्टि से कृष्ण भक्ति का साहित्य प्रभावशाली है।

10.5 सूरदास :-

सूरदास 'हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य' माने जाते हैं। आप हिन्दी के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में एक हैं। आप कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। आपकी वाणी में कृष्णलीला का सागर तरंगोमंगित हुआ। डॉ. श्यामसुंदर दास का कहना है "वल्लभाचार्य के शिष्यों में सर्वप्रथम, 'सूरसागर' के प्रणेता, हिन्दी के अमर कवि महात्मा सूरदास हुए जिनकी सरस वाणी से देश के असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और निराश जनता को जीने का नवीन उत्साह मिला।" सूरदास भक्तिकाल की कृष्णभक्ति शाखा के ज्वाज्वल्यमान रत्न हैं।

10.5.1 जीवनी :- सूरदास के जन्म और मृत्यु के संबंध में विद्वानों में एकमत नहीं है। अधिकतर विद्वानों की मान्यता यह है कि उनका जन्म सं.1540 वि. में हुआ। डॉ.श्यामसुंदर दास उनका जन्मस्थान 'सीही' मानते हैं तो कुछ विद्वानों के अनुसार उनका जन्मस्थान 'रुनकता' है। सूरदास जाति के ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि वे मात्र तेरह वर्ष की आयु में घर छोड़कर अपने गाँव से चार कोस की दूरी पर एक तालाब के तट पर रहने लगे। अठारह वर्ष की आयु तक वे वहीं रहे। बाद में आगरा और मथुरा के बीच गऊघाट में रहने लगे। वहीं वल्लभाचार्य से उनकी भेंट हुई। वल्लभाचार्य उनके पद सुनकर चकित हुए। बाद में आचार्य ने सूरदास को श्रीनाथ मंदिर में कीर्तनादि सेवाओं के लिए नियुक्त किया। बाद में वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' कवियों की व्यवस्था की जिनमें सूरदास का स्थान प्रमुख है।

सूरदास से संबंधित और एक विषय के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं कि वे जन्मांध थे या बाद में अंधे हुए। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि वे जन्मांध नहीं बाद में अंधे हुए। सूरदास ने बाललीलाओं का आँखों देखा वर्णन किया। इस प्रकार वर्णन करना प्रत्यक्ष देखे बिना तथा अनुभव किए बिना असंभव है।

10.5.2 सूरदास की काव्य-कृतियाँ :- सूरदास की काव्य-कृतियों के संबंध में भी मतभेद हैं। सूरदास लिखित पाँच ग्रंथों का प्रायः उल्लेख किया जाता है जो निम्नप्रकार से हैं-

1. सूरसागर
2. सूरसारावली
3. साहित्य लहरी
4. नलदमयन्ती
5. ब्याह लो।

अंतिम दो कृतियाँ अप्राप्य हैं।

'सूरसागर' सूरदास की कीर्ति का आधार है। सूरसागर श्रीमद्भागवत की काव्यमयी छाया है। कहा जाता है कि सूर ने सवा लाख पद लिखे लेकिन अब छः हजार ही मिलते हैं। 'सूरसागर' एक विशाल समद्र है जिसमें एक एक पद एक एक रत्न के समान है। 'सूरसारावली' कृति का आधार श्रीमद्भागवत पुराण है। विद्वानों ने इसे 'सूरसागर' की भूमिका माना है। इस ग्रंथ में सूरदास ने अनेक दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। 'साहित्य लहरी' मुख्यतः नायिका-भेद और अलंकार निरूपण की रचना है। इसके प्रत्येक पद में नायिका भेद और अलंकार मिलते हैं। सूरदास ने कहा 'नन्दनन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन'- अर्थात् कृष्णभक्ति के लिए साहित्य लहरी की रचना की।

सूरदास के काव्य में भक्ति और कवित्व का अद्भुत संगम हुआ। कहा जाता है कि सूरदास को एक ऐसी आंतरिक शक्ति मिली कि वे भगवान के स्वरूप और शृंगार का अनुपम वर्णन करते थे। एकबार गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्रों ने सूर की परीक्षा लेनी चाही। सूरदास भगवान के दर्शन के लिए मंदिर में आये। स्वामी जी के पुत्रों ने उस दिन भगवान का

अद्‌भुत शृंगार किया। उन्होंने भगवान को कोई वस्त्र नहीं पहनाया- केवल मोतियों की माला लटका दी कि 'देखें सूरदास क्या वर्णन करते हैं'। मंदिर के द्वार खुलते ही सूरदास ने भजन गाना आरंभ कर दिया -

'देखें री हरि नंगमनंगा ।
जलसुत भूषण अंग विराजत वसन हीन छवि उरत तरंगा।।'

10.5.3 काव्यगत विशेषताएँ :-

रस :- सूरसागर में यद्यपि सभी रसों का निर्वाह हुआ तथापि वात्सल्य और शृंगार रसों की अभिव्यक्ति में सूरदास अद्वितीय मालूम पड़ते हैं। अधिकांश समीक्षक वात्सल्य रस को स्वतंत्र रस न मानकर शृंगार के अंतर्गत ही उसे स्थान देते हैं। लेकिन सूरदास का वात्सल्य रस-वर्णन पढ़ने के बाद उसे स्वतंत्र रस मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। सूरदास वात्सल्य और शृंगार रस सम्राट माने जाते हैं।

सूर की ख्याति में और एक महत्त्वपूर्ण बिंदु उनका शृंगार रस-वर्णन है। संयोग और वियोग- शृंगार के इन दोनों पक्षों का सूर ने सुंदर और व्यापक वर्णन किया। सूर ने अपने शृंगार रस-वर्णन में राधा, कृष्ण और गोपियों के प्रेम का सुंदर वर्णन किया। उनके काव्य में वर्णित संयोग शृंगार रस सुंदर, स्वाभाविक और मनोहर है। सूर ने वियोग शृंगार के भी अद्‌भुत चितेरे हैं। सूरदास ने 'सूरसागर' के भ्रमरगीत में गोपियों की विरहवेदना का जो वर्णन किया वह हिन्दी साहित्य में अमर है। इनमें कल्पना और भावुकता का सहज समावेश पाया जाता है।

प्रकृति चित्रण :- सूर ने प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियों को अपनाते हुए प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन किया। उनके काव्य में गोकुल के मनोहर ग्रामीण वातावरण का सौंदर्य एवं यमुना-तरंगों की कल-कल ध्वनि समान रूप से चित्रित हैं।

भाषा :- सूर की भाषा साहित्यिक ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रजभाषा को साहित्य की प्रामाणिक भाषा का रूप दिया। सूरदास ब्रजभाषा के प्रथम महाकवि माने जाते हैं। सूर की शब्द योजना सराहनीय है और उनकी भाषा सरस, सुबोध और सशक्त है। साथ ही उनकी भाषा माधुर्यपूर्ण एवं प्रसादगुणयुक्त है। उनकी भाषा में लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता भी दर्शनीय है।

अलंकार :- सूर-काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकारों का सुंदर एवं स्वाभाविक प्रयोग हुआ। इनमें उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप और अतिशयोक्ति आदि अलंकार प्रमुख हैं। शब्दों की सुंदरता को बढ़ाने के लिए अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों का भी प्रयोग मिलता है।

छन्द :- सूरदास स्वयं एक अच्छे गायक हैं। इसलिए उन्होंने अपनी रचना के लिए ऐसे छन्द चुने जिनको अच्छा गाया जा सके। उन्होंने चौपाई, रोला, चन्द्रभानु, सवैया, दोहा, घनाक्षरी आदि छन्दों का प्रयोग किया। सूर-काव्य में राग-रागिनियों का सुंदर समावेश है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूरदास का अप्रतिम और अद्वितीय स्थान है। निस्संदेह सूरदास हिन्दी साहित्य- गगन के सूर्य हैं। सूरदास के बारे में चन्द्रबली पाण्डेय के शब्द सार्थक प्रतीत होते हैं - "सूर की कविता, कविता नहीं- हृदय की झंकार है।"

10. 6 मीराँ बाई :-

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की कृष्णभक्ति शाखा के कवियों में मीराबाई का स्थान सूरदास के बाद आता है। उनका जन्म सं.1555 वि. के आसपास हुआ। वे राव रतनसिंह की इकलौती बेटी और दूदा की पौत्री थी। राव दूदा वैष्णव भक्त थे। उनका प्रभाव मीरा पर पड़ा। बचपन से ही मीराबाई श्रीकृष्ण की भक्ति करती थी। मीरा का विवाह महाराणा संगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के कुछ ही दिनों बाद पति की मृत्यु हो गयी। पति की मृत्यु के बाद वे कृष्णभक्ति में लीन हो गयीं। वे दिन रात कृष्णप्रेम में मतवाली होकर भजन गाती थीं। राजमहल में साधु-संतों से मिलकर सत्संग करती थीं। उनके व्यवहार से असंतुष्ट होकर उनके देवर राणा ने उन्हें बहुत यातनाएँ दीं। अंत में वे राजमहल छोड़कर चली गयी। अपने जीवन के अंतिम चरण में मीरा द्वारिका में रहने लगीं। उनकी चार कृतियाँ उपलब्ध हैं - 1.नरसी जी का मायरा 2. गीतगोविन्द की टीका 3. राग गोविन्द 4.राग सोरठा के पद। उनकी मृत्यु सं.1603 वि. में हुई।

10.6.1 काव्यगत विशेषताएँ :-

1. मीरा के काव्य मुक्तक काव्य हैं।

2. मीरा के काव्य में शांत और शृंगार के साथ-साथ वियोगजन्य करुण रस का भी वर्णन मिलता है। शृंगार रस के दोनों पक्षों का वर्णन मिलता है।

3. मीरा के काव्य में हमें प्रकृति-वर्णन का विशुद्ध रूप देखने को मिलता है।

4. मीरा की भक्ति माधुर्य प्रधान है। मीराबाई ने अपने पदों में श्रीकृष्ण का अपने प्रिमतम के रूप में वर्णन किया।

5. मीरा के पदों में गीति तत्त्व की प्रधानता है।

6. उनके पदों में सहज आत्मनिवेदन है तथा हृदय की पुकार है।

7. मीरा की भाषा मिश्रित भाषा है जिसमें गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और ब्रज के शब्द मिलते हैं।

8. मीरा के काव्य में भाषा की सरलता, शैली-प्रवाह, भावों की मधुरता, संगीतात्मकता आदि विशेषताएँ पायी जाती हैं।

9. मीरा के पदों में लगभग 15 प्रकार के छंद हैं। इनमें सार, सरसी, दोहा, सवैया आदि प्रमुख हैं।

10. मीरा के काव्य में रूपक अलंकार की प्रधानता पायी जाती है। उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों का भी सुंदर समावेश पाया जाता है। अलंकारों का सर्वथा सहज प्रयोग हुआ।

10.7 बोध प्रश्न :-

1. भक्तिकाल की परिस्थितियों का चित्रण कीजिए।
2. कृष्णभक्ति शाखा की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. सूरदास के जीवन और साहित्य का विस्तारपूर्वक परिचय दीजिए।
4. कृष्णभक्ति शाखा का परिचय देते हुए उस समय के प्रमुख कवियों का साहित्यिक परिचय दीजिए।
5. मीराँ बाई का साहित्यिक परिचय दीजिए।
6. मीराँ बाई की काव्य-कृतियों के संदर्भ में प्रस्तावित माधुर्य प्रेम का विवरण दीजिए।

10.8 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास – बाबू गुलाबराय
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ.श्रीनिवास शर्मा
4. सूर-साहित्य – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. सूरदास – डॉ. ब्रजेश्वर शर्मा
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र
7. त्रिवेणी – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

Smt. M.P. Vardhani,
Lecturer,
Department of Hindi,
Maris Stella College (Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 11

रीतिकाल और बिहारीलाल

इकाई की रूप रेखा :-

11. 1 पाठ का उद्देश्य

11. 2 प्रस्तावना

11. 3 नामकरण

11. 4 परिस्थितियाँ :-

- 11.4.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ
- 11.4.2 सामाजिक परिस्थितियाँ
- 11.4.3 धार्मिक परिस्थितियाँ
- 11.4.4 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

11. 5 रीतिकालीन मुख्य प्रवृत्तियाँ :-

- 11.5.1 रीति-निरूपण
- 11.5.2 शृंगाररस की अधिकता
- 11.5.3 भक्ति प्रवृत्ति
- 11.5.4 नीति प्रवृत्ति
- 11.5.5 स्वच्छंद धारा

11. 6 रीतिकालीन कवि :-

- 11.6.1 रीतिबद्ध कवि
- 11.6.2 रीतिसिद्ध कवि
- 11.6.3 रीतिमुक्त कवि

11. 7 रीतिकाल की विशेषताएँ और बिहारीलाल

11. 8 रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी

11. 9 स्मरण रखने योग्य बातें

11.10 बोध प्रश्न

11.11 सहायक ग्रंथ-सूची

11. 1 पाठ का उद्देश्य :-

1. इस इकाई में आप हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल की विशिष्टता के बारे में समझ सकेंगे।
2. इस इकाई के माध्यम से बिहारी की काव्यगत विशेषताओं को जानेंगे।
3. इस इकाई में रीतिकाल की सामान्य परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करेंगे।
4. इस इकाई में रीतिकाल के प्रमुख कवियों का परिचय भी समझ सकेंगे।

11. 2 प्रस्तावना :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के उपरांत जो काल आता है, उसे 'रीतिकाल' का नाम दिया गया। इसका समय संवत् 1700 वि. से लेकर सं.1900 वि. तक माना जाता है। इस काल को कुछ विद्वानों ने 'शृंगारकाल' का नाम दिया। इस समय की कविता लक्षण ग्रंथों के आधार पर बन्धी बन्धाई कविता थी जिसमें काव्य के अंतर्गत सौंदर्य की अपेक्षा कवियों ने बाह्य सौंदर्य पर ही अधिक ध्यान दिया था। शृंगारकाल के अतिरिक्त वीररस की प्रधानता इस काल की एक विशेषता कही जा सकती है। इस काल के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारीलाल हैं। देव, पद्माकर, भूषण इत्यादि अन्य प्रमुख कवि हैं।

11. 3 नामकरण :-

रीतिकाल के नामकरण के संदर्भ में पर्याप्त वाद-विवाद रहे हैं। इसे रीतिकाल, अलंकृतकाल, कलाकाल और शृंगारकाल आदि अनेक नामों से अभिहित किया गया है। मिश्र बंधुओं ने इस काल को 'अलंकृतकाल' कहा तो आचार्य विश्वनाथ प्रसाद ने इस काल को 'शृंगारकाल' माना है। यों तो रामचन्द्र शुक्ल जी ने इसे 'रीतिकाल' की संज्ञा दी। इस काल के कवियों ने काव्य के लक्षणों अर्थात् रीति के अनुसार कविता करने में बड़ी लगन दिखाई। उन्होंने काव्य के सभी अंगों का समग्र वर्णन प्रस्तुत किया। इसलिए इसे 'रीतिकाल' कहना ही अधिक समीचीन होगा।

11. 4 परिस्थितियाँ :-

11.4.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ :- रीतिकाल के पूर्व सम्राट अकबर ने अपनी सहिष्णुतात्मक नीति के द्वारा और हिन्दू तथा मुसलमान दोनों जातियों के पारस्परिक सांस्कृतिक समन्वय के द्वारा विशाल मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा की। अकबर के बाद जहाँगीर ने राज्य के संबंध में कोई योगदान नहीं दिया है। उसकी सुरा और सुंदरी के प्रति लोलुपता और लालसा उत्तराधिकारियों को विरासत में अवश्य मिली। शाहजहाँ में एक ओर तो धार्मिक सहिष्णुता थी और दूसरी ओर उसमें सांस्कृतिक एवं कलागत उदारता भी। यह समय प्रायः सुख और समृद्धि का काल था। शाहजहाँ रोगग्रस्त हुआ तो राजगद्दी के लिए उसके पुत्रों के बीच संघर्ष पैदा हुआ। औरंगजेब का समय भारतीय राजनैतिक इतिहास में अत्यंत कोलाहलपूर्ण अध्याय था। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वीरगाथाकाल की अपेक्षा रीतिकाल तक आते आते राजनैतिक परिस्थितियों में सुधार आया और मुगलों का अधिकार भारत पर स्थिर हो गया। शासकों की विलासिता प्रवृत्ति दृढ़ होती गयी और भोगप्रधान विषयों पर उनका ध्यान केंद्रित हो गया।

11.4.2 सामाजिक परिस्थितियाँ :- 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली उक्ति इस काल पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। कुल मिलाकर इस युग को विलासप्रधान युग कहा जा सकता है। नारी को केवल मनोरंजन और विलास की सामग्री समझा गया। जन साधारण में अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों की प्रबलता थी। उस समय की जनता में विलास की प्रधानता के कारण भक्ति की भावना मंद पड़ गयी। प्रायः जनता अशिक्षित थी और उनमें बालविवाह और बहुविवाह की प्रथाएँ प्रचलित थीं। इस प्रकार सभ्यता और संस्कृति के पतन के साथ-साथ उस युग को महान आर्थिक संकटों का सामना भी करना पड़ा।

11.4.3 धार्मिक परिस्थितियाँ :- रीतिकाल का समय धर्म की दृष्टि से पतन का युग कहा जा सकता है। नैतिक बंधन ढ़ीले होने लगे और अनुदिन बौद्धिक पतन भी हो रहा था। इस युग में अंधविश्वासों, रूढ़ियों और बाह्याडंबरों ने धर्म का स्थान ग्रहण कर लिया था। पण्डित और मुल्ला लोग इसका फायदा उठा रहे थे। कृष्णभक्तों की रागात्मक भक्ति के रहस्य को समझने की शक्ति न तो रीतिकाल के कवियों में थी और न ही उस समय की जनता में। इसीलिए धार्मिक युगल राधा-कृष्ण का साहित्य में प्रस्तुतीकरण कुछ अलग ढ़ंग से ही किया गया।

11.4.4 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ :- इस युग में जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान कलाक्षेत्र में प्रदर्शन की प्रवृत्ति की ही प्रधानता रही। सामन्ती वातावरण में फूलने-फलनेवाली कला में वासनात्मकता का आ जाना नैसर्गिक था। रीतिकाल में परंपराबद्ध दृष्टिकोण का निर्वाह होता रहा। उसमें मौलिक प्रतिभा का नितांत अभाव है।

11. 5 रीतिकालीन मुख्य प्रवृत्तियाँ :-

11.5.1 रीति-निरूपण :- रीति ग्रंथकार या रीतिबद्ध कवियों ने रीति-निरूपण को अपना लक्ष्य बनाया। उन्होंने सभी प्रकार के काव्यांगों या किसी विशिष्ट अंग का लक्षण निरूपण किया। रीतिबद्ध कवियों ने काव्यास्वादन के मानदण्ड बनाये तो रीतिसिद्ध कवियों ने उन मानदण्डों को दृष्टि में रखकर श्रेष्ठ काव्यों की रचना की। चिंतामणि त्रिपाठी, कुलपति मिश्र, पद्माकर आदि रीतिबद्ध कवि हैं तो बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं।

11.5.2 शृंगाररस की अधिकता :- शृंगाररस रीतिकाव्य का प्राण है। विलासी आश्रयदाताओं का प्रोत्साहन पाकर रीतिकवियों ने संयोग के नग्न चित्रों और नायकों की धृष्टताओं के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते समय किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं किया। इन कवियों ने नारी के प्रति सामंतीय दृष्टि अपनायी। फिर भी इन्होंने गार्हत्यिक प्रेम को ही अधिक स्वीकृति दी।

11.5.3 भक्ति प्रवृत्ति :- भक्तिप्रवृत्ति रीतिग्रंथों के मंगलाचरणों और समाप्ति पर आशीर्वाद के रूप में लिखे गये छंदों में दिखायी देती है। कुछ कवियों ने राम, कृष्ण और अन्य देवी-देवताओं की स्तुति की है। आश्रयदाताओं की अभिरुचि के अनुरूप शृंगार वर्णन करते-करते जब कवियों को अरुचि होती थी, तब वे भक्तिभाव पूर्ण कविता भी कर लेते थे।

11.5.4 नीति प्रवृत्ति :- संघर्षमय दरबारी जीवन से उत्पन्न मानसिक द्वंद्व से मुक्ति पाने के लिए कुछ कवियों ने नीति की शरण ली। इसीलिए आत्मोपदेश और अन्योक्तिपरक छंदों में कवियों के वैयक्तिक अनुभवों की छाप मिलती है।

11.5.5 स्वच्छंद धारा :- रीतिकाल में इन प्रवृत्तियों से अलग एक स्वच्छंद धारा भी पायी जाती है। इस धारा के कवि किसी प्रकार की प्रेरणा या प्रलोभन से काव्य नहीं लिखा बल्कि अपनी स्वतःप्रेरणा से ही रचनाएँ कीं। ये रीतिकालीन शृंगारेतर प्रवृत्तियाँ मुख्यतः चार रूपों में देखी जा सकती हैं-

क. स्वच्छ प्रेम का चित्रण

ख. वीररसात्मकता

ग. भक्ति की निश्छल प्रवृत्ति

घ. नीति तथा अन्य स्फुट काव्य-प्रवृत्तियाँ

क. स्वच्छ प्रेम का चित्रण :- घनानंद जैसे कवियों ने प्रेम का ऐसा चित्र खींचा कि वे प्रेम के वीर कहलाए। श्री रामधारीसिंह दिनकर ने उनकी प्रशंसा में यों लिखा "किराये के रोनेवालों की भीड़ में ये सच्चे आँसू बहानेवाले कवि हैं। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्घाटन जैसे इन्होंने किया, वैसे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।" घनानंद के अनुसार प्रेममार्ग अत्यंत सरल है जहाँ पर तनिक भी चालाकी और कुटिलता नहीं होती। सच्चा व्यक्ति इस मार्ग पर अहंभाव छोड़कर चल सकता है।

"अति सूधों सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानम बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चले तजि आपुनयी झझके कपटी जे निसांक नहीं।"

अर्थात्- जो कपटी और शंकालु हैं, वे इस मार्ग पर चलने से झिझकते हैं। जो प्रेम तत्त्व से हीन है, घनानंद के अनुसार वे त्याज्य हैं।

ख. वीररसात्मकता :- रीतिकालीन कवियों में भूषण कवि अपने वीररसपूर्ण काव्य के लिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं। भूषण को राष्ट्रीय भावनाओं का गायक कहा जा सकता है। वे देश की संस्कृति का गान करते हैं। उन्होंने महाराज शिवाजी की प्रशंसा करते हुए 'शिवाबावनी', छत्रसाल की प्रशस्ति में 'छत्रसाल दशक' की रचना की। 'शिवराज भूषण' में भी अलंकारों का निरूपण करते हुए भूषण ने वीररसात्मक काव्य की रचना की।

ग. भक्ति की निश्छल प्रवृत्ति :- रीतिकाल के साहित्य में भक्ति की धारा भी समानांतर रूप से प्रवाहित होती आयी। निर्गुण और सगुण दोनों प्रकारों का भक्तिकाव्य प्रचुरमात्रा में रचा गया। निर्गुण में ज्ञानाश्रयी शाखा का जो आरंभ कबीरदास आदि ने भक्तिकाल में किया था, वही रीतिकाल में अबाधगति से विकास प्राप्त करता गया।

घ. नीति तथा अन्य स्फुट काव्य-प्रवृत्तियाँ :- इस समय के प्रमुख नीतिपरक कवि वृंद, गिरिधर कविराज, बैताल, दीनदयाल गिरि आदि हैं। वृंद ने अपनी सतसई में सरल और कवित्वपूर्ण भाषा में जीवन के छोटे-छोटे अनुभवों को सूक्तिबद्ध किया। गिरिधर की कुण्डलियों में बहुत सूक्ष्मता से बताया गया है कि मनुष्य को अपने घर, गाँव, राजदरबार तथा समाज के अन्य क्षेत्रों में कब कैसा व्यवहार करना चाहिए।

11. 6 रीतिकालीन कवि :-

रीतिकालीन ग्रंथों को प्रामाणिक मानकर, उपलब्ध सामग्री के अनुसार उनका अध्ययन करने पर हमें स्पष्ट होता है कि इस काल के कवि तीन प्रकार के हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त कवि।

11.6.1 रीतिबद्ध कवि :- इनका लक्ष्य काव्य लिखना न होकर काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना करना था। इन्होंने विभिन्न काव्यांगों का विवेचन करने के बाद उदाहरण देने हेतु काव्य की रचना की। यों रीतिबद्ध कवि पहले आचार्य थे और बाद में कवि।

रीतिबद्ध कवियों के दो प्रकार हैं। सर्वांग निरूपक तथा विशिष्टांग निरूपक। सर्वांग निरूपक आचार्य वे हैं, जिन्होंने सभी प्रकार के काव्यांगों -यथा रस, अलंकार, छंद आदि- का लक्षण-निरूपण किया हो। चिंतामणि त्रिपाठी तथा देव इस कोटि के कवियों में आते हैं। उसी प्रकार जिन आचार्यों ने किसी विशिष्ट काव्यांग को लेकर लिखा, वे विशिष्टांग निरूपक आचार्य हुए। पद्माकर ने 'पद्माभरण' में केवल अलंकारों पर, बेनी प्रवीन ने 'नवरस तरंग' में केवल रस-विवेचन पर तथा

सुखदेव मिश्र ने 'वृत्तविचार' में केवल छंदों पर लिखा।

11.6.2 रीतिसिद्ध कवि :- रीतिबद्ध कवियों और रीतिसिद्ध कवियों में अंतर है। रीतिबद्ध कवियों ने काव्यास्वादन के जो मानदण्ड बनाए, उन मानदण्डों को दृष्टि में रखकर रीतिसिद्ध कवियों ने श्रेष्ठ काव्यों की रचना की। इस काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारीलाल हैं।

11.6.3 रीतिमुक्त कवि :- रीति-निरूपण की परंपरा से हटकर और दरबारी संस्कृति से यथासंभव दूर रहकर जो कविता लिखते थे वे रीतिमुक्त कवि हुए। इसे स्वच्छंद कहने का कारण भी यही है कि इन कवियों ने अपने हृदय की सच्ची अनुभूति से कविता लिखी। किसीकी आज्ञा से या किसी को प्रसन्न करने की दृष्टि से इन्होंने काव्य नहीं लिखा। इस धारा के प्रमुख कवि घनानंद हैं।

11. 7 रीतिकाल की विशेषताएँ और बिहारीलाल :-

भक्तिकाल में भक्तकवियों ने अपने आराध्य देवताओं की विविधरूपों में आराधना की। कृष्णकाव्य में मुख्यरूप से शृंगार और भक्ति का सहज और सुंदर सामंजस्य देखने को मिलता है। भक्ति का सुंदर रूप राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं में मिलता है। लेकिन रीतिकाल में यह भक्ति लुप्त हो गयी और राधा-कृष्ण नायक तथा नायिका बन गए। कविता का आलंबन मात्र बनकर राधा और कृष्ण इस कविता में सामने आए। वास्तव में रीतिकालीन कवियों के लिए अपनी शृंगार प्रवृत्ति के पोषण के लिए राधा-कृष्ण चाहिए थे।

भक्तिकाल में भक्त कवियों ने जो कविता स्वांतःसुखाय के लिए लिखी थी वही कविता रीतिकाल तक आते-आते दरबारी बन गयी। कविता आपसी प्रतिद्वन्द्विता के लिए की जाती थी। प्रायः सभी कवि किसी न किसी प्रकार अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना चाहते थे। इसके लिए कवियों ने संस्कृत और प्राकृत साहित्य में प्राप्त वर्णनों को नए रूप में रखने का प्रयास किया। संस्कृत में काव्यांगों और अलंकारों आदि पर उन्होंने कई ग्रंथ लिखे। काव्य के स्वरूप और अंगों के संबंध में हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने परवर्ती ग्रंथों का मत ग्रहण किया। हिन्दी रीति ग्रंथों की परंपरा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। उन्हीं से रीतिकाल का प्रारंभ माना जा सकता है।

कवियों ने कविता लिखने की प्रणाली बना ली। लक्ष्य-लक्षण ग्रन्थ लिखे जाने लगे। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन तथा नये सिद्धांतों के प्रतिपादन आदि की आवश्यकता थी वह लुप्त हो गयी। उस समय गद्य का विकास भी नहीं हुआ था। जो कुछ भी लिखा जाता वह पद्य में ही था। इस काल में शृंगार रस के अंतर्गत अनेक मुक्तकों की रचना की गयी। इस रस का इतना अधिक विस्तार और किसी काल में नहीं हुआ। नायिका के नख शिख वर्णन के अनेकों ग्रंथ लिखे गए। कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर अपनी रचनाओं को रूप दिया। इस काल में राजाओं ने मुसलमानों की सत्ता स्वीकार कर ली थी। इसी कारण से विलासिता की प्रचुरता इस काव्य में मिलती है। इस काल में कवियों का पाण्डित्य प्रदर्शन और संस्कृत ग्रन्थों का अनुकरण उनकी महत्वाकांक्षा का परिचय देता है। इस काल में शृंगार रस के साथ वीररसात्मक कविता भी मिलती है- भूषण का काव्य इसका उदाहरण है।

काव्य छंदों में मुख्यरूप से कविता और सवैये की प्रधानता रही। कवित्वों का संबंध विशेषरूप से वीर रस से रहा। सवैये का प्रयोग शृंगार तथा करुण रसों में प्रयुक्त हुआ। रसों और अलंकारों के लक्षण प्रायः दोहों में लिखे गए। रीतिकाल की काव्य-भाषा ब्रज और अवधी के मिश्रण से बनी थी। फारसी शब्दों का आधिक्य था।

11. 8 रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी :-

बिहारीलाल रीतिसिद्ध कवि थे। इनकी एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है। इसमें कुल 713 दोहे हैं। एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना जाता है। सतसई मुक्तक काव्य है। यह मुख्यतः शृंगार रस का ग्रंथ है। आलोचकों ने शृंगार सतसइयों में बिहारी सतसई को न केवल काल की दृष्टि से अपितु काव्य-कला की दृष्टि से भी सर्वप्रथम माना है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "हिन्दी शृंगार-सतसइयों की परंपरा का आरंभ कविवर बिहारी की सतसई से मानना चाहिए।" परंतु द्विवेदी का यह कथन सर्वमान्य नहीं हो सकता। क्योंकि बिहारी सतसई के आरंभ और समाप्त होने से पूर्व ही 'मतिराम' अपनी सतसई के अधिकांश दोहे लिख चुके थे। अब प्रश्न उठता है कि बिहारी सतसई बाद की रचना होते हुए भी हिन्दी जगत् को पहले आकृष्ट क्यों और कैसे कर सकी। इसके लिए दो ही कारण दृष्टिगोचर होते हैं। एक- मतिराम के दोहों को संग्रह का रूप प्राप्त होने में विलंब हो गया और वह बिहारी सतसई के प्रकाशित होने के बाद ही सामने आया। दूसरा- मतिराम का 'रसराज' उतना प्रसिद्ध नहीं था जितना बिहारी सतसई। साथ ही बिहारी के दोहे काव्य की दृष्टि से अधिक समृद्ध हैं।

बिहारी सतसई के संबंध में शुक्ल जी का कथन पूर्णतः सत्य है। उनका कहना है- "शृंगाररस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं। उसका एक-एक दोहा एक-एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएँ रची गयीं।" इसके साथ-साथ बिहारी सतसई के विभिन्न भाषाओं में हुए अनुवाद भी इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं। उसकी श्रेष्ठता का कारण यह है कि इसमें एक ओर शृंगार रस का व्यापक चित्रण है, अनुभवों की रमणीक योजना है, प्रेम की विभिन्न दशाओं का सम्यक वर्णन है और दूसरी ओर अर्थ गांभीर्य, भाषा की कसावट, कल्पना की समाहार शक्ति और अलंकारों की छटा भी।

कविवर बिहारी मूलतः शृंगार के कवि हैं। डॉ. रणधीर सिन्हा ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कविवर बिहारीलाल-उनका युग' में लिखा है- "बिहारी सतसई का प्रधानरस शृंगार है। इसमें अधिकांश दोहे शृंगार रस के हैं। इसमें भावों की सुकुमारता के साथ शृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का सजीव निरूपण हुआ है, जिनमें से वियोग में विरह की अतिशयता का चित्रण कही-कहीं हास्यास्पद भी हो गया है, किन्तु संयोग वर्णन अत्यधिक सुंदर है।" भारतीय सौंदर्यशास्त्र नारी का गौरवशाली रूप -वर्णन ही उचित मानता है। बिहारी श्वेतवर्ण की शुक्लाभिसारिका का सौंदर्य वर्णित करते हुए लिखते हैं -

"जुवति जोन्ह में मिलिगई, नेंक न होति लखाइ।
सौंथे के डारैं लगी, अली चली संग जाइ।।"

अर्थ यह हुआ कि गौरवर्णी शुक्लाभिसारिका युवती नायिका चंद्रमा की चांदनी में एकदम मिल गयी। अतः तनिक भी दिखाई नहीं पड़ती। ऐसे समय उसकी सखी उसके शरीर से निकलनेवाली सुगंध के डोरे के सहारे ही उसके पीछे चल पाती है। सौंदर्य वर्णन की एक अति प्रचलित साहित्यिक परंपरा है- नख-शिख वर्णन। कवि इस पद्धति में नायक अथवा नायिका के शरीर के विभिन्न अवयवों यथा- नख से लेकर शिख तक के सौंदर्य का आकर्षक वर्णन करते हैं। इस वर्णन के अंतर्गत बिहारी ने केश, मुख, दाँत, नेत्र, कपोल, चिबुक, उरोज, कटि, नितम्ब आदि का मनोरम वर्णन किया।

बिहारी एक दोहे में नायिका की मुख-ज्योति का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

"पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योही रह्यो, आनन-आप उजास।।"

उसके घर के चतुर्दिक पत्रा द्वारा ही तिथि का पता लग सकता है। चंद्रमा के अनुसार तिथि का पता लगना वहाँ संभव नहीं है क्योंकि नायिका के मुख की आभा के कारण वहाँ प्रतिदिन पूर्णिमा जैसा ही होता है।

बिहारी ने संयोग का वर्णन करते हुए उन बाह्य व्यापारों का भी वर्णन किया जिनमें नायक और नायिका अद्‌भुत आनंद का अनुभव किया करते हैं। इनमें पतंगबाजी, कबूतर बाती आदि कितने ही प्रेम व्यापार उस समय चला करते थे। इसका वर्णन यों है-

"उडति गुडि लखि ललन की, आँगन-आँगन मांहि।
बौरी लों दौरी फिरति, छुवनि छबीली छाँट।।"

प्रिय से उडायी गयी पतंग की छाया प्रिया के घर के आँगन में पड़ी तो प्रिया पगली सी उस छाया को पकड़ने दौड़ती है। वियोग शृंगार चार प्रकार का होता है- पूर्वराग, मान, प्रवास, करुणा। बिहारी ने इन सबका वर्णन अपने काव्य में किया। इनमें 'प्रवास' को अधिक महत्व दिया गया क्योंकि तीव्र वेदना इसी से उत्पन्न होती है। इसका उदाहरण देखिए-

"कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
कहि है सबु तेरौ हियौ, मेरो हिय की बात।।"

पति से वियुक्ता नायिका अपने परदेशी प्रिय को पत्र लिखने में किस प्रकार की विवशता का अनुभव करती है- उसका उल्लेख प्रस्तुत दोहे में किया गया है। नायिका कहती है कि मैं अपनी मार्मिक व्यथा को कागद पर लिख नहीं पाती हूँ और लज्जा के कारण न उसे किसी संदेशवाहक द्वारा भेज पाती हूँ। अतः तुम अपने हृदय से पूछोगे तो वह मेरे हृदय की वेदना के बारे में बताता है। तुम्हारी हालत जिस प्रकार है, मेरी हालत भी ठीक उसी प्रकार की है।

प्रिय विरह में प्रिया बहुत कमजोर पड़ जाती है, इसके वर्णन में बिहारी ने लिखा-

"इति आवति चलि जाति उत, चली छः सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे से रहे, लगी उसासनु साथ।।"

प्रिय के वियोग के कारण नायिका इतनी अधिक दुर्बल हो जाती है कि उसके अंदर से निकलनेवाली प्रबल उच्छवासों के साथ वह इधर से उधर लगभग छः सात हाथ की दूरी तक चली जाती है। जिसे देखकर लगता है मानो वह हिंडोरे (झूले) पर चढ़ी हो। इस प्रकार बिहारी ने संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अत्यंत सुंदर वर्णन किया। किन्तु वे एक राजदरबारी कवि थे। तत्कालीन राजनैतिक दुर्दशा कैसी थी इसका उल्लेख भी उन्होंने किया। जनता और राजा का संबंध शोषित और शोषक का संबंध था। इसका उदाहरण इस प्रकार है-

"दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बढ़ै दुख-दंदु।
अधिक आँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चंद।।"

देशी राजाओं की स्थिति कठपुतली मात्र थी, ये लोग विदेशी शासकों के इशारे पर नाचनेवाले थे। यों दो शासकों के दुखमय शासन में प्रजा जनों का दुख बढ़ने से क्यों रुकेगा। अर्थात् वह बढ़ेगा ही। जैसे अमावास्या को एकसाथ मिलकर सूर्य और चंद्रमा मिलकर संसार में अत्यधिक अंधेरा करते हैं। इतना ही नहीं ये राजा लोगों में अपने पक्ष के हित का भी ध्यान नहीं रह गया था। उनका सारा श्रम, सारा उद्योग सम्राट की शक्ति एवं ऐश्वर्य को पुष्ट करने में लगा था।

स्वदेशी राजाओं की इस मानसिक स्थिति को देखकर चिंतित बिहारी ने लिखा-

"स्वारथु सुकृत न श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि, तूँ पँछीनु न मारि।।"

मिर्जा जयसिंह मुगलों के शासन के अधीन रहकर अपने लोगों पर आक्रमण करने लगा अर्थात् हिन्दू राजाओं के खिलाफ संघर्ष करने लगा तो इसकी प्रतिक्रिया में बिहारी ने यह दोहा लिखा। उसी प्रकार जब वे वार्षिक वृत्ति लेने जयसिंह के दरबार में पहुँचे उस समय राजा संपूर्ण राजकाज को छोड़कर नववधू के प्रेम में आबद्ध होकर अपने महल में ही पड़ा रहा। बिहारी ने एक दोहे से राजा को कर्तव्य-बोध का ज्ञान दिलाया-

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल।
अलिं कली ही सों बंध्यो आगे कौन हवाल।।"

अर्थ यह है कि हे भौंरे! तू अभी इस पुष्प की कली जो अपूर्ण विकसित है- में ही आसक्त है। इसमें तो न पराग आया और न ही मकरंद । जब यह पूर्ण विकास पायेगी तब तुम्हारी क्या हालत होगी। इससे स्पष्ट होता है कि बिहारी देश और समाज के प्रति सजग कवि थे। उन्होंने सामाजिक स्थितिगतियों को नजदीक से देखा। समाज में सज्जन व्यक्तियों का न तो सम्मान होता है न उनका कार्य सिद्ध हो पाता है। जबकि खोटे लोगों का सब काम आसानी से हो जाता है। इसके प्रति दृष्टि डालते हुए कवि ने कहा-

"बसै बुराई जासु तन, ताहि को सनमानु।
भलौ भलौ कहि छाँडिये खोटे ग्रह जप दानु।।"

धर्म के क्षेत्र को भी बिहारीलाल ने अच्छी तरह से देखा। वे धार्मिक क्षेत्र का बनावटीपन एवं आड़ंबरों से भली भांति परिचित थे। बाह्याडंबरों पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने एक दोहा लिखा-

"जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे रामु।।"

डॉ. गियर्सन का कहना है कि यूरोप की किसी भाषा में इस प्रकार कम शब्दों में अधिक भाव व्यक्त करनेवाला सतसई जैसा काव्य नहीं है। अतः किसीने ठीक ही कहा-

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगै, घाव करैं गंभीर।।"

डॉ. हरिवंशराय शर्मा इस प्रकार कहते हैं- "जिस कवि की कला ने जन साधारण से लेकर राजा-महाराजा तक, सामान्य हिन्दी का ज्ञान रखनेवालों से लेकर संस्कृत के प्रकाण्ड पंडितों तक, व्रज क्षेत्र से लेकर गुजराती, मराठी आदि प्रांतीय भाषाओं के क्षेत्र तक प्रभावित किया, वह सामान्य स्रष्टा नहीं हो सकता। निस्संदेह बिहारी हिन्दी के यशस्वी महाकवि और विश्व के महाकलाकार हैं।"

सभी विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से घोषित किया कि हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में बिहारीलाल ही सर्वोत्तम कवि हैं। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि बिहारीलाल हिन्दी साहित्य के अनुपम कवि हैं।

11. 9 स्मरण रखने योग्य बातें :-

अ. रीतिकाव्य राजदरबारी वातावरण में सृजित हुआ।

आ. शृंगार और वीर रस प्रधान काव्य ही अधिकांश कवियों ने लिखा।

इ. संस्कृत के लक्षण ग्रंथों की परिपाटी हिन्दी के कवियों ने भी ग्रहण की।

ई. शृंगाररस के साथ नीति के दोहे भी रीतिकाल में मिलते हैं।

उ. कहीं-कहीं हास्य रस का पुट तथा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी मिलता है।

ऊ. शारीरिक सौंदर्य-वर्णन को इस काल के कवियों ने विशेष महत्त्व दिया।

ऋ. इस काल की कविता में पाण्डित्य-प्रदर्शन की अधिकता पायी जाती है।

ए. बिहारी इस काल के सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

11.10 बोध प्रश्न :-

1. रीतिकाल की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. रीतिकालीन परिस्थितियों पर विस्तारपूर्वक लेख लिखिए।
3. रीतिकालीन मुख्य प्रवृत्तियों पर अपना मंतव्य प्रकट कीजिए।
4. "रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारीलाल हैं" - इस कथन का निरूपण कीजिए।
5. रीतिकाल संबंधी राजदरबारी मनोवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
6. बिहारी सतसई के संयोग तथा वियोग शृंगारपरक दोहों की चर्चा कीजिए।
7. क्या बिहारी ने अपने देश तथा समाज के बारे में भी कुछ लिखा? यदि लिखा तो उदाहरण दीजिए।

11.11 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ. नगेन्द्र
2. बिहारी-सौरभ	:	डॉ. विजयपाल सिंह
3. कविवर बिहारीलाल और उनका युग	:	रणधीर सिन्हा
4. रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ	:	डॉ. हीरालाल झा तथा डॉ. मनोरंजन सेनापति
5. बिहारी-नवनीत	:	डॉ. रवीन्द्रकुमार जैन

Sri M. Venkateswarlu,
Lecturer,
Department of Hindi,
A.C. College,
Guntur.

पाठ - 12

आधुनिक काल

हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास तथा प्रेमचंद

इकाई की रूपरेखा :-

12. 1 उद्देश्य
12. 2 प्रस्तावना
12. 3 उपन्यास का उद्‌भव
12. 4 प्रेमचंदपूर्व उपन्यास-साहित्य
12. 5 प्रसाद-प्रेमचंद युगीन उपन्यास साहित्य
12. 6 प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य
12. 7 उपन्यास की वर्तमान स्थिति
12. 8 उपन्यास के प्रकार
12. 9 उपन्यास के तत्त्व
12.10 मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक परिचय
12.10.1 जीवनी
12.10.2 साहित्यिक विशेषताएँ
12.11 हिन्दी उपन्यास को प्रेमचंद की देन
12.12 बोध-प्रश्न
12.13 सहायक ग्रन्थ-सूची

12. 1 उद्देश्य :-

अ. आधुनिक साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा उपन्यास के उद्‌भव और विकास से विद्यार्थियों को अवगत कराना इस पाठ का मुख्योद्देश्य है।

आ. हिन्दी में मौलिक उपन्यास के आरंभ होने से पूर्व हिन्दी में लिखे गये उपन्यासों का हाल बताना भी इस पाठ का उद्देश्य है।

इ. हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को भी इस पाठ में दिखाया गया है।

ई. हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों तथा प्रमुख उपन्यासकारों का उल्लेख कालक्रमानुसार इसमें प्रस्तुत किया गया है।

उ. उपन्यास सम्राट प्रेमचंद की जीवनी के साथ-साथ हिन्दी उपन्यास को उनका योगदान स्पष्ट करना भी इस पाठ का उद्देश्य है।

12. 2 प्रस्तावना :-

उपन्यास आधुनिक युग की सबसे प्रसिद्ध विधा है। यह सतत विकासशील साहित्यिक रूप है। मानव-जीवन के यथार्थ से इसका सीधा संबंध है। उपन्यास को 'आधुनिक युग का महाकाव्य' माना गया है। आधुनिक युग के वैज्ञानिक चिंतन, भौतिक सभ्यता, औद्योगिक पूँजीवादी संस्कृति और यथार्थवादी चेतना के साथ उपन्यास का जन्म हुआ। उपन्यास में जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति है, मनोरंजन है, नैतिक मूल्यों की विवेचना है, वर्ग संघर्ष का चित्रण है, समय के अनुसार बदलते लोगों के भाव-विचार हैं। संक्षेप में हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा अत्यंत रोचक, रोमांचक और प्रशंसनीय है।

12. 3 उपन्यास का उद्‌भव :-

आज हिन्दी उपन्यास का जो अर्थ लिया जाता है, वह पश्चिमी उपन्यास साहित्य की देन है और अंग्रेज़ी के 'नॉवेल' का समानार्थी है। यों तो प्राचीन भारतीय साहित्य में 'दशकुमारचरित', 'वासवदत्ता', 'हर्षचरित' और कादम्बरी' भी उपन्यास जैसी ही रचनाएँ हैं, परंतु उपन्यास शब्द के आधुनिक अर्थ में उन्हें ग्रहण करना संभव नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उपन्यास जैसी साहित्यिक विधा की एक लंबी परंपरा भारतीय साहित्य में मिलती है और हिन्दी का प्रारंभिक उपन्यास साहित्य उससे अवश्य प्रेरणा ग्रहण करके विकसित हुआ है। 'कथासरित्सागर' जैसे विशाल ग्रंथ की प्रेरणा प्रारंभिक उपन्यासों में विद्यमान रही। आगे चलकर ज्यों-ज्यों हम पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित हुए, उसके संपर्क में आये, त्यों-त्यों उपन्यास की रूप रचना पाश्चात्य 'नॉवेल' के समान होती गयी। हिन्दी में उपन्यास का आरंभ सन् 1882 में लिखे गये 'परीक्षागुरु' के साथ माना जाता है।

हिन्दी में वस्तुतः उपन्यासों का प्रणयन भारतेन्दु युग से प्रारंभ हुआ। भारतेन्दु युग से लेकर अब तक के उपन्यास साहित्य को निम्नलिखित काल-वर्गों में रखा जा सकता है।

1. प्रेमचंदपूर्व उपन्यास साहित्य (सन्1882 से सन् 1916 ई. तक)
2. प्रसाद-प्रेमचंद युगीन उपन्यास साहित्य (सन्1916 से सन् 1936 ई. तक)
3. प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य (सन्1936 से अब तक)

12. 4 प्रेमचंदपूर्व उपन्यास साहित्य :-

प्रेमचंद से पूर्व उपन्यास साहित्य का प्रारंभ या वास्तविक उदय लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' उपन्यास से माना जाता है। श्रीनिवासदास के पश्चात् दूसरा नाम पण्डित बालकृष्ण भट्ट का है, जिन्होंने 'सौ अजान एक सुजान' और 'नूतन ब्रह्मचारी' दो उपन्यासों की रचना की। इसी समय राधाकृष्णदास ने 'निस्सहाय हिन्दू', अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' तथा श्री लज्जाराम मेहता ने 'आदर्श दंपति', 'हिन्दू गृहस्थ', 'बिगड़े का सुधार', 'आदर्श' आदि उपन्यासों की रचना की।

प्रेमचंदपूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य में पं.किशोरीलाल गोस्वामी का नाम मूर्धन्य स्थान पर रखा जा सकता है। वह स्वयं अपने में ही एक धारा थे। इन्होंने युग की सब औपन्यासिक प्रवृत्तियों को अपने में समाहित कर लिया और इनकी लेखनी की गति सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, तिलिस्मी आदि दिशाओं में रही। 'तारा, 'सुल्तान', 'रजिया' आदि इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

जासूसी उपन्यासों की धारा में गोपालराय गहमरी का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ 'सौभद्र', 'चतुराचंचला', 'नये बाबू', 'खूनी कौन है', 'जमुना का खून', 'जासूस की भूल', 'प्रेम की लाश', 'काशी की घटना' आदि हैं।श्री दुर्गाप्रसाद खत्री के उपन्यास तिलिस्मी-ऐयारी के हैं। उनका 'भूतनाथ', उनके पिता श्री देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' के समान ही लोकप्रिय हुआ। 'भूतनाथ' उनके पिता की ही अधूरी कृति थी। उनकी अन्य कृतियाँ - 'लाल पंजा', 'प्रतिशोध', 'रक्तमण्डल', 'सफेद शैतान' आदि हैं।

इस युग के उपन्यासों में प्रेमाख्यानक, ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक तथा मनोरंजन-प्रधान जासूसी तथा तिलिस्मी ऐयारी की धाराएँ ही प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। सभी उपन्यास घटना-प्रधान हैं और उनमें गंभीरता का अभाव है।

12. 5 प्रसाद-प्रेमचंद युगीन उपन्यास साहित्य :-

जयशंकर प्रसाद और प्रेमचंद का युग हिन्दी उपन्यासों के विकास और उत्कर्ष का युग है। इस युग में तीन नाम सबसे महत्त्वपूर्ण हैं- सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में बाबू जयशंकर प्रसाद और मुंशी प्रेमचंद तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में बाबू बृंदावनलाल वर्मा।

प्रेमचंद ने पहली बार उपन्यासों को यथार्थ की भवभूमि प्रदान की। उनके उपन्यासों का विषय हमारा दैनंदिन का जीवन और क्रिया-कलाप है। उन्होंने पहली बार विस्तृत चित्रपट पर भारतीय जीवन को उतारा और उसे कलात्मक उपन्यासों का रूप दिया। उनके उपन्यासों की मूल भावभूमि सामाजिक है। जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति भी उनमें हुई है और उनके उपन्यास साहित्य की 'शिवता' उपन्यासों में सबसे अधिक ज्वलंत उदाहरण है। कला की दृष्टि से उनके उपन्यासों की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं - घटना-संयोजन या वस्तु विकास का कौशल और अभिव्यंजना की सरलता तथा सहजता। उनके उपन्यास गद्य में लिखे गये प्रबंध काव्य हैं, जिनका आधार ठोस यथार्थ है और प्रतिपादन का दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख।

मुंशी प्रेमचंद के पश्चात् इस युग के दूसरे महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार जयशंकर प्रसाद हैं। उन्होंने केवल तीन उपन्यासों की रचना की : 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती'। प्रसाद की सृष्टि आदर्शवादी है, परन्तु उनके उपन्यासों में समाज की खोखली मान्यताओं पर करारे व्यंग्य हुए हैं। व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना भी प्रसाद के उपन्यासों में पायी जाती है। प्रेमचंद की सरलता-सहजता के स्थान पर प्रसाद की अभिव्यक्ति में कवित्व और सांस्कृतिक गंभीरता पायी जाती है।

इस युग में ऐतिहासिक उपन्यासों की सृष्टि करनेवाले उपन्यासकारों में बाबू बृंदावनलाल वर्मा का नाम आता है। उन्होंने बुन्देलखण्ड का प्राचीन गौरव अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में पुनर्जीवित किया है। ऐतिहासिक उपन्यासों में उनकी विशेषता है- तत्कालीन तथा तदुद्देशीय वातावरण का सजीव चित्रण और बुन्देलखण्ड की संस्कृति की सजीव अभिव्यक्ति। 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'माधवजी सिंधिया', 'महारानी दुर्गावती' आदि उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में इस युग में गोविंद वल्लभ पन्त के 'सूर्यस्ति', भगवतीचरण वर्मा के 'पतन' और ऋषभचरण जैन के 'ग़दर' नामक उपन्यासों के नाम भी उल्लेखनीय हैं, यद्यपि इनमें से किसी को भी प्रसिद्धि नहीं मिली।

प्रेमचंद-युग के कुछ समसामयिक उपन्यास प्रेमचंद के प्रभावक्षेत्र से बाहर आते हैं और उनमें यथार्थवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें से कुछ तो उपन्यास-लेखन में अपेक्षाकृत बाद में प्रवृत्त हुए, जैसे जैनेंद्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, राहुल सांकृत्यायन, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सियाराम शरण गुप्त। अतएव उन्हें प्रेमचंदोत्तर युग में रखना अधिक सुविधाजनक है, परन्तु कुछ उपन्यासकार जैसे आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पाण्डेय बेचनशर्मा 'उग्र' और ऋषभचरण जैन की गणना प्रेमचंद-युग में ही की जा सकती है।

12. 6 प्रेमचंदोत्तर उपन्यास साहित्य :-

प्रेमचंद के उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता और जनवादी चेतना का समावेश हुआ था और उसी पृष्ठभूमि पर हिन्दी के उपन्यासों में नवीन प्रवृत्तियों का उदय हुआ। बाद के उपन्यासकारों में इन दोनों प्रवृत्तियों का विशेष विकास हुआ। मनोविश्लेषण शास्त्र की प्रेरणा से उपन्यासों में कथानक विकास की कई पद्धतियाँ स्वीकृत हुईं और कथावस्तु के स्थान पर उपन्यासकार पात्रों के मनोविश्लेषण पर अधिक ध्यान देने लगे। इस क्षेत्र में विशेष गंभीरता भी आयी। इसका एक बुरा प्रभाव उपन्यास के कलात्मक सौष्ठव पर पड़ा, उपन्यासकारों का क्षेत्र संकुचित और एकांगी हो गया। फलतः टेकनीक का मोह अधिक बढ़ा और चित्रण की सांगोपांगता पीछे रह गयी। दूसरी ओर सामाजिक यथार्थवाद के अनेक रूपों का प्रयोग हुआ और व्यक्ति स्वातंत्र्य पर लेखकों का ध्यान अधिक केंद्रित हो गया।

वास्तव में यह युग प्रवृत्तियों की दृष्टि से व्यक्ति-प्रधान उपन्यासों का ही युग है। चरित्रों की आंतरिकता पर इसलिए अधिक बल दिया गया और उपन्यासों में टाइप के बजाय व्यक्ति की सृष्टि हुई। इसलिए यहाँ आकर एक ओर वैयक्तिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता की उपलब्धि और दूसरी ओर सामाजिक समता की स्थापना का स्वर प्रखर हो गया।

आधुनिक युग में विषय और शिल्प दोनों की दृष्टि से नितांत भिन्न भूमि पर अवस्थित उपन्यासकारों में जैनेंद्र, 'अज्ञेय' और इलाचन्द्र जोशी के नाम उल्लेखनीय हैं। भगवतीचरण वर्मा, यशपाल और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' में प्रेमचंद के शिल्प विधान का ही विकास हुआ। इधर अमृतलाल नागर और रांगेयराघव के नाम भी महत्त्वपूर्ण हैं। अन्य उपन्यासकारों में सियारामशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, मन्मथलाल गुप्त आदि नाम प्रमुख हैं।

स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में और भी अधिक नयी प्रवृत्तियों-विशेषकर शैली संबंधी प्रवृत्तियों- का उदय हुआ। इस दृष्टि से नये उपन्यासों की प्रधान विशेषताएँ हैं- शैली शिल्प का विशेष मोह और व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना का विकास। नये उपन्यासकारों में उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, डॉ.देवराज, धर्मवीर भारती आदि के नाम प्रमुख हैं। अनेक महिला उपन्यासकार इसी काल में उभरे। इस काल का उपन्यास बहुत ही व्यापक, विविध प्रयोगशील व निरंतर विकासशील है।

प्रायः पिछले कुछ दशकों में उपन्यासों में आंचलिकता का समावेश भी हुआ है। इस प्रकार के उपन्यासों में नागार्जुन का 'बलचनमा', फणीश्वरनाथ रेणु की कृतियाँ 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' तथा उदयशंकर भट्ट के 'सागर-लहरें और मनुष्य' तथा लक्ष्मीनारायण लाल के 'बया का घोंसला और साँप' उपन्यासों का नाम प्रमुखतया लिया जा सकता है।

12. 7 उपन्यास की वर्तमान स्थिति :-

सन् 1980 ई. के बाद लिखे गये उपन्यासों में अपेक्षाकृत स्त्रीवाद और दलितवाद संबंधी उपन्यासों की संख्या भी अधिक है। स्त्री मुक्ति और दलित-मुक्ति के प्रश्न समकालीन हिन्दी उपन्यास में सबसे अधिक मुखरित हैं। नारी चेतना तथा दलित चेतना संबंधी उपन्यास भारतीय समाज में इन दोनों के जागरण के प्रमाण हैं। वैश्वीकरण के प्रभाव में इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में कई उपन्यास लिखे जाने लगे हैं। बाजारवाद, उपभोक्तावाद का भी प्रभाव वर्तमान उपन्यासों पर दिखाई पड़ने लगा है।

उपन्यास आज की सबसे समृद्ध विधा है और इसका विकास निरंतर हो रहा है। इस दृष्टि से आज विषय तथा शैली-शिल्प दोनों में ही नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं। अब यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास का भविष्य अन्य विधाओं की अपेक्षा अत्यधिक उज्ज्वल है।

12. 8 उपन्यास के प्रकार :-

उपन्यास की विषय-वस्तु, रचना-विधान और उद्देश्य की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों में विविधता पायी जाती है। विषय-वस्तु की दृष्टि से उपन्यास के प्रकार हैं- ऐयारी तिलिस्मी और जासूसी, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आँचलिक, वैज्ञानिक आदि। शैली की दृष्टि से उपन्यासों के प्रकार हैं- वर्णनात्मक, संवादात्मक, आत्मकथात्मक आदि। पत्र-शैली और डायरी शैली में लिखे गये उपन्यास भी इसी कोटि में आते हैं।

12. 9 उपन्यास के तत्त्व :-

उपन्यास के तत्त्व छः माने जाते हैं, जैसे-

1. कथावस्तु
2. पात्र और चरित्र-चित्रण
3. संवाद या कथोपकथन
4. वातावरण या देश-काल वर्णन
5. भाषा और शैली
6. उद्देश्य

12.10 मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक परिचय:-

प्रेमचंद हिन्दी उपन्यास-जगत् में 'उपन्यास-सम्राट' के नाम से विख्यात हैं। आपने हिन्दी कथा-साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के द्वारा युगांतर उपस्थित किया। आपके उपन्यास भारत के सामाजिक और राजनैतिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन का वास्तविक चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों में सफल रूप में हुआ है।

12.10.1 जीवनी :- प्रेमचंद का जन्म सन् 1880, 31 जुलाई में काशी के पास लमही नामक गाँव में हुआ था। आपका असली नाम धनपतराय था। पिता अजायबलाल डाकखाने में क्लर्क थे। सात वर्ष की अल्प आयु में ही धनपत की माता आनंदी चल बसी। मातृप्रेम से वंचित बालक धनपत की मुसीबतें विमाता के आने पर और भी बढ़ गयीं। पिता का तबादला गोरखपुर में हुआ। धनपत ने स्कूली शिक्षा यहीं प्राप्त की थी। 15 वर्ष की उम्र में ही आपका विवाह हो चुका। एक वर्ष बाद पिता का देहांत हो गया तो पूरे परिवार का बोझ धनपत पर आ पड़ा। बनारस के क्वीन्स कॉलेज में पढ़कर मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। उसके पश्चात् संघर्षों से लड़ते ही आपने इंटर की परीक्षा पास की। विवशता की स्थिति में 18 रू. मासिक वेतन पर छोटे से स्कूल के अध्यापक बन गये।

बाद में सन् 1919ई. में बी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद शिक्षा विभाग में 'डिप्टी इन्स्पेक्टर' बने। इसी बीच आपने शिवरानी देवी नामक बाल विधवा से विवाह कर लिया। सन् 1920 ई. में गांधीजी की विचारधारा से प्रभावित होकर प्रेमचंद ने अपनी सरकारी नौकरी को त्यागपत्र दे दिया। तदुपरांत वे आजीवन साहित्य-सेवा में जुट गये। निरंतर साहित्य-सृजन में लगे हुए प्रेमचंद का देहांत 8 अक्तूबर 1936 ई. में हुआ।

12.10.2 साहित्यिक विशेषताएँ :- आप पहले 'नवाबराय' नाम से उर्दू में लिखा करते थे। 'ज़माना' जैसी राष्ट्रीय स्तर की पत्रिका में आपकी रचनाएँ लगातार प्रकाशित होती थीं। 'सोज़े वतन' नामक कहानी -संग्रह को अंग्रेज़ सरकार ने जब्त कर लिया। नवाबराय की सारी रचनाओं पर पाबंदी थी। तब से आप 'प्रेमचंद' नाम से हिन्दी में लिखने लगे।

हिन्दी में प्रेमचंद ने सैकड़ों कहानियाँ, दर्जन उपन्यास, कई नाटक और निबंध लिखे। उनकी रचनाओं में भारतीय ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण पाया जाता है। यही नहीं, भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों का वास्तविक चित्र भी प्रेमचंद की कृतियों में मिलता है। प्रेमचंद का कथासाहित्य हिन्दी साहित्य में ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य में भी अपना महत्त्व रखनेवाला है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास संसार की अनेक भाषाओं में अनूदित होकर भारतीय साहित्य की महत्ता घोषित कर रहे हैं। प्रेमचंद के उपन्यास निम्नलिखित हैं :

1. प्रेमा
2. वरदान (सन्‌1902)
3. प्रतिज्ञा (सन्‌1906)
4. सेवासदन (सन्‌1916)
5. प्रेमाश्रम (सन्‌1922)
6. निर्मला (सन्‌1923)
7. रंगभूमि (सन्‌1924-25)
8. कायाकल्प (सन्‌1928)
9. गबन (सन्‌1931)
10. कर्मभूमि (सन्‌1932)
11. गोदान (सन्‌1936)
12. मंगलसूत्र (असंपूर्ण- सन्‌1936)

प्रेमचंद ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखीं। ये कहानियाँ 'मानसरोवर' नाम से संकलित की गयीं। इसके आठ भाग हैं। उनकी कहानियों में 'कफन', 'पंच परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'बड़े भाई साहब', 'ईदगाह', 'नशा', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

प्रेमचंद 'उपन्यास सम्राट' माने जाते हैं। उपन्यास लिखने में आप बेजोड़ हैं। आपके उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के नमूने प्रस्तुत करते हैं। 'सेवासदन' में वेश्या समस्या का यथार्थ चित्रण मिलता है और एक आदर्श समाधान भी इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। 'निर्मला' में दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को दिखाया गया। 'गोदान' में भारतीय कृषक जीवन का कारुणिक यथार्थ चित्रण पाया जाता है। यह उपन्यास भारतीय कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है। प्रेमचंद का समग्र उपन्यास साहित्य भारतीय समाज का प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

12.11 हिन्दी उपन्यास को प्रेमचंद की देन :-

हिन्दी उपन्यास को प्रेमचंद की देन बहुमुखी है। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को मनोरंजन के क्षेत्र से ऊपर उठाकर जीवन के वास्तविक रूप से जोड़ने का सफल प्रयास किया है। जीवन की अनेक समस्याओं- पराधीनता, शोषण, अशिक्षा, गरीबी, अंधविश्वास, दहेज-प्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जीवनी, विधवा-जीवन, अस्पृश्यता, वृद्ध-विवाह, मध्यवर्गीय मानसिकता एवं कुण्ठाएँ आदि के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया। कृषक जीवन की समस्याओं के चित्रण का प्रथम प्रयास 'प्रेमाश्रम' में लक्षित हुआ और 'गोदान' तक आते-आते उसे पूर्णता प्राप्त हुई। ग्रामीण जीवन का इतना अच्छा, सच्चा, व्यापक और प्रभावशाली चित्रण 'गोदान' से बढ़कर किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ। प्रेमचंद के आगमन से ही हिन्दी उपन्यास स्वावलम्बी बन पाया। अपने उपन्यासों के द्वारा उन्होंने सहस्रों भूखे, दीन किसानों और मज़दूरों का प्रतिनिधित्व किया, जो पहले साहित्य में अछूत माने जाते थे। जीवन की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के कारण वे अपने उपन्यासों में समसामयिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का सफल चित्रण करने में सफल हो सके।

12.12 बोध प्रश्न :-

1. भारतीय साहित्य में उपन्यास जैसी साहित्यिक विधा की परंपरा का उल्लेख कीजिए।
2. हिन्दी उपन्यास के विकास को किन-किन अंगों में विभाजित करके अध्ययन किया जाता है?
3. उपन्यास के प्रकार और तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
4. मुंशी प्रेमचंद का साहित्यिक परिचय दीजिए।
5. हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचंद का योगदान स्पष्ट कीजिए।

12.13 सहायक ग्रन्थ-सूची:-

1. हिन्दी उपन्यास : आधुनिक विचारधाराएँ – डॉ. सुमित्रा त्यागी
2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद – डॉ. त्रिभुवन सिंह
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ. गणेशन
4. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ – डॉ. शशिभूषण सिंहल
5. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-मूल्य संप्रेषण – डॉ. हेमेन्द्र पानेरी

Dr.Venna Vallabha Rao,
Reader & Head,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College(Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 13

हिन्दी नाटक का उद्‌भव और विकास - जयशंकर प्रसाद

इकाई की रूपरेखा :-

13.1 उद्देश्य
13.2 प्रस्तावना
13.3 भारतेन्दु युग
13.4 द्विवेदी युग
13.5 प्रसाद युग
13.6 प्रसोदोत्तर युग
13.7 नाटक साहित्य की वर्तमान स्थिति
13.8 बोध प्रश्न
13.9 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

13.1 उद्देश्य :-

मानव की हृदयगत अभिव्यक्ति के सशक्त और प्रभावपूर्ण साहित्यांगों में नाटक मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है। आचार्यों के कथन "काव्येषु नाटकं रम्यम्" अर्थात् काव्यों में नाटक ही सबसे सुंदर है- से भी यही प्रतिध्वनि निकलती है। हमारा भारतीय नाटक साहित्य अत्यधिक प्राचीन व समृद्धियुक्त है। कालिदास, भवभूति आदि ने संस्कृत साहित्य में नाटकों को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है किन्तु हिन्दी नाटकों का विकास आधुनिककाल में ही हुआ। यों तो दशरथ ओझा ने सं.1289 में रचित 'गद्यसुकुमार रास' को हिन्दी का पहला उपलब्ध नाटक माना है। पर नाट्य-कला की दृष्टि से ब्रज भाषा में लिखा गया गिरिधर कृत 'नहुष' ही हिन्दी का प्रथम नाटक है। हिन्दी नाट्य- साहित्य के दो प्रतिभा संपन्न महान कृतिकार भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद थे। इन दोनों का ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि भारतेन्दु यदि हिन्दी में खड़ीबोली के मौलिक नाटकों के वास्तविक जन्मदाता या निर्माता हैं तो प्रसाद उनके उन्नायक। इसे स्पष्ट निरूपित करना ही इस पाठ का उद्देश्य है।

13.2 प्रस्तावना :-

नाटक, साहित्य का यह सर्वप्रधान और उत्तमोत्तम अंगचाक्षुष होने के कारण 'दृश्य काव्य' कहलाता है। हिन्दी नाट्य-साहित्य की परंपरा को कुछ लोग संस्कृत नाट्य- साहित्य से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन वास्तव में यह ठीक नहीं है। अन्य गद्य विधाओं की भांति हिन्दी नाटकों का आरंभ भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही स्वीकार किया जाना चाहिए। हिन्दी नाट्य- साहित्य का आरंभ विक्रम की तेरहवीं शताब्दी से माना जाता है। और इसके साक्ष्य के रूप में राजस्थानी रासक ग्रन्थों को प्रस्तुत किया जाता है। वैष्णव धर्म की प्रेरणा से 15वीं शताब्दी में भारतीय नाट्य- परंपरा ने एक नया रूपधारण किया था। इसी के फलस्वरूप हिन्दी नाटकों की एक शाखा आसाम में भी फैल रही थी। वैष्णव रंगमंच की यह

परंपरा चौदहवीं शती में मैथिली के नाटकों में मिलती है, जो सोलहवीं शती तक आते विकसित हो चली थी। इन नाटकों की भाषा मैथिली है, जो पूर्वी हिन्दी का ही एक रूप है। सोलहवीं शताब्दी के बाद हमें जो नाटक उपलब्ध होते हैं, वे इस प्रकार हैं- प्राणचंद चौहान कृत 'रामायण महानाटक'(1610), केशवदास कृत 'विज्ञान गीति', हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक', बनारसी दास कृत 'समयसार'(1636), महाराज जसवंत सिंह कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय'(1643), नेवाज कवि कृत 'शकुंतला'(1680), रघुराम कृत 'सभासार' (1700) आदि नाटकों का उल्लेख मिलता है लेकिन ये वस्तुतः नाटक नहीं हैं।

कुछ विद्वान 'हनुमन्नाटक को हिन्दी का पहला नाटक मानते हैं लेकिन नाट्य- कला की दृष्टि से इसमें कई दोष हैं। इस प्रकार उक्त सभी नाटकों में नाटकीय नियमों का अभाव है। इसलिए हम उन्हें आधुनिक नाटक की संज्ञा नहीं दे सकते। भारतेन्दु ने अपने पिता गोपालचन्द्र गिरिधरदास कृत 'नहुष'(1857) को हिन्दी का प्रथम नाटक कहा। इसके उपरान्त राजा लक्ष्मण सिंह ने संस्कृत के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का हिन्दी में 'शकुन्तला'(1863) नाम से अनुवाद किया। इसमें पद्य की भाषा ब्रज तथा गद्य की खड़ीबोली है। इस प्रकार खड़ीबोली गद्य में लिखा गया यह हिन्दी का सर्वप्रथम अनूदित नाटक है। इन नाट्य- रचनाओं में 'हनुमन्नाटक', 'समयसार', 'प्रबोध चन्द्रोदय', 'शकुन्तला' आदि अनूदित हैं और शेष मौलिक हैं। उपर्युक्त अधिकांश मौलिक रचनाएँ धार्मिक एवं पौराणिक हैं और इनके कथानकों का आधार 'वाल्मीकि रामायण' और तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' है। यद्यपि इनमें कई रसों का समावेश है तथापि शृंगार और वीररस ही अन्य रसों की अपेक्षा अधिक प्रखर है। समय की दृष्टि से इसके बाद ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम आता है। अतः कह सकते हैं कि भारतेन्दु ही आधुनिक हिन्दी गद्य परंपरा के प्रवर्तक हैं।

13.3 भारतेन्दु युगः-

भारतेन्दु आधुनिक गद्य के निर्माता, साहित्य के महारथी तथा हिन्दी नाट्य-कला के प्रवर्तक थे। आप नाटकों के प्रमुख स्रष्टा ही नहीं अपितु अपने युग के लेखकों के लिए द्रष्टा एवं महान प्रेरक शक्ति भी थे। मार्गद्रष्टा, साहित्य प्रेरक एवं प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में भारतेन्दु का स्थान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। भारतेन्दु ने कुल मिलाकर 17 नाटकों की रचना की जिनमें 'रत्नावली', 'धनंजय विजय', 'पाखण्ड विडम्बन', तथा 'मुद्राराक्षस' संस्कृत से और 'कर्पूरमंजरी' प्राकृत से एवं 'दुर्लभ बंधु' अंग्रेजी से अनूदित हैं। 'विद्यासुंदर' भारतेन्दु की रूपांतरित रचना है। शेष रचनाएँ 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'सतीप्रताप', 'चन्द्रावली', 'प्रेमजोगिनी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'भारत जननी', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेरी नगरी' तथा 'नीलदेवी' आदि मौलिक हैं। अनुवादक के रूप में भी भारतेन्दु उच्चकोटि के थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अधिकांश नाटक विषय और रचना-शैली की दृष्टि से नवीन हैं। इनमें नवोत्थानकालीन भावनाएँ पूर्णतया मुखरित हो उठी हैं। उनका यह कार्य समयानुकूल था। इससे उनके प्रतिभाशाली एवं समर्थ व्यक्तित्व का भान होता है।

भारतेन्दु ने संस्कृत नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत करके जहाँ अनूदित नाटकों की परंपरा को आगे बढ़ाया, वहाँ उन्होंने संस्कृत नाट्य-पद्धति के विविध रूपों के उदाहरण भी हिन्दी में प्रस्तुत किये। अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद इन्हीं की देन है। आधुनिक हिन्दी में रूपांतरित परंपरा के आरंभकर्ता भी ये ही हैं। दस मौलिक नाटक इनकी महत्त्वपूर्ण देन है। इनमें युग का स्वर है, जीवन का ठोस धरातल है तथा जनता के लिए जागरण की ज्योति है। इनमें पाँच प्रमुख धाराओं यथा- पौराणिक, प्रेम प्रधान, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा ऐतिहासिक- के नाटक प्राप्त होते हैं। इन रचनाओं के माध्यम से इन्होंने हिन्दी को नवजीवन तथा नयी गति देकर उसमें विभिन्न शैलियों व नव-नव रूपों का श्रीगणेश किया। इस समय

के नाटककारों ने अपनी नाटक रचना-प्रणाली में भारतेन्दु को ही प्रमाण माना और उनके आदर्श पर ही अपने-अपने नाटक लिखे। इन नाटककारों के रचे हुए प्रधान नाटक निम्न लिखित प्रकार के हैं-

1. बालकृष्ण भट्‌ट – कलिराज की सभा, बाल-विवाह, पद्‌मावती, शर्मिष्ठा, चन्द्रसेन आदि।
2. लाला श्रीनिवास दास – प्रह्लाद चरित, रणवीरी-प्रेमवाहिनी, तत्पासँवरण, संयोगिता, स्वयंवर आदि।
3. राधाचरण गोस्वामी – सती चन्द्रबली, श्रीदान, अमसिंह राठौर, भगतरंग (प्रहसन), सरोजिनी (अनुवाद)
4. राधाकृष्ण दास – महारानी पद्‌मावती, धर्मालय, महाराणा प्रतापसिंह
5. किशोरीलाल गोस्वामी – मयंक मंजरी, नाट्य- संभव, चौपट-जपेट (प्रहसन)

इस समय तक हिन्दी नाटक-साहित्य पर अंग्रेजी नाटक साहित्य का अच्छा प्रभाव पड़ा था। इसके बाद के लेखकों ने पुरानी शराब को नयी बोतलों में डालकर देना शुरू किया। इस प्रकार के नाटकों में गंगा प्रसाद कृत 'रामाभिषेक', गिरिधरलाल रचित 'राम वनयात्रा', बद्रीनाथ का 'कुरुवन दहन', राधा मोहन गोस्वामी कृत 'भारत-रहस्य', मिश्र-बंधुओं का 'नेत्रोन्मीलन' आदि मुख्य हैं। इन सब नाटकों पर अंग्रेजी नाटक साहित्य का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है।

13.4 द्विवेदी युग :-

द्विवेदी युग में मौलिक नाटक बहुत कम लिखे गये। वह अनुवादों का युग था। इस समय संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषाओं के नाटकों का अनुवाद हिन्दी में होने लगा। अनूदित नाटकों में ये प्रसिद्ध हैं- उत्तर रामचरित, मालतीमाधव। रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के कई नाटकों का अनुवाद किया। लाला सीताराम ने भी इस प्रकार के कई अनुवाद किये हैं।

इन अनुवादों के कारण हिन्दी नाटक साहित्य को बड़ा लाभ मिला। नये विचारों और नयी शैलियों का आगमन हुआ और हिन्दी क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन आया। इन परिस्थितियों में प्रसिद्ध लेखक जयशंकर प्रसाद का आगमन हिन्दी साहित्य क्षेत्र में हुआ, जिसके कारण नाटक साहित्य की बहुमुखी अभिवृद्धि हुई।

13.5 प्रसाद युग :-

कविवर प्रसाद जी साहित्य कानन के एक ऐसे रस-राग-पराग समन्वित सुमन हैं, जिनके सौरभ से दिग्दिगांत सुरभित हो उठे हैं। वे हिन्दी भाषा और साहित्य की एक ऐसी दिव्य विभूति हैं, जिनको पाकर कोई भी भाषा-साहित्य स्वयं को गौरवान्वित अनुभव कर सकता है। सर्वतोमुखी प्रतिभा से ओतप्रोत साहित्यकार प्रसाद ने कविता, कहानी, नाटक, निबंध और उपन्यास आदि साहित्य की विविध विधाओं को अपनी कुशल लेखनी से परिपुष्टता प्रदान की।

बाबू जयशंकर प्रसाद ने सन् 1890 ई. में काशी में जन्म लिया। उनके पिताजी का नाम देवीप्रसाद था। वे बहुत ही उदार तथा धार्मिक व्यक्ति थे। साथ ही वे बड़े धनी तथा सुप्रसिद्ध व्यापारी थे। प्रसाद जी का बचपन वैभव में बीता। किन्तु सत्रह वर्ष की छोटी उम्र में घर का भार उन पर पड़ा, क्योंकि तब तक उनके माँ-बाप तथा भाई का निधन हो चुका था। प्रसाद जी ने बचपन में सातवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की। पिताजी के निधन के कारण आगे नहीं पढ़ सके। लेकिन घर पर ही वे संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाएँ सीखने लगे। बारह वर्ष की उम्र में ही उन्होंने साहित्य-संसार में कदम रखा। उस छोटी उम्र में ही वे समस्यापूर्ति के पद्य लिखते थे। इसी प्रवृत्ति ने उन्हें साहित्यकार बनाया।

भारतेन्दु युग की समाप्ति और द्विवेदी युग के साथ-साथ प्रसाद के उदय के बीच सन् 1900 से 1912 तक अनेक नाटक लिखे गये। इनमें अनूदित नाटकों की संख्या अधिक है। इस समय पारिवारिक कथानकों की लोकप्रियता कम हो रही थी और ऐतिहासिक विषय नाटकों के लिए अपनाये जा रहे थे। पूर्व युग का सुधारवादी दृष्टिकोण अपनी स्थूलता को छोड़कर सूक्ष्म-सांस्कृतिक बन रहा था और राष्ट्रीयता की भावना विस्तृत होकर पाश्चात्य दर्शन और संस्कृति से भारतीय चिंतन और आदर्श की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने लगी थी। गांधीजी के आगमन से राष्ट्रीय आंदोलन सक्रिय और निश्चित मूल्यों पर आधारित हो गया था। रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद घोष आदि ने दार्शनिक पुनरुत्थान का शंखनाद कर दिया था और भारतीय दर्शन को तत्कालीन राष्ट्रीय संदर्भ में प्रतिष्ठित करके राष्ट्रीय भावना का बौद्धिक विस्तार भी किया था। भारतेन्दु युगीन ऐतिहासिक नाटकों में अतीत का उत्तेजक चित्रण तो था लेकिन उस चित्रण के पीछे कोई बौद्धिक या दार्शनिक पृष्ठभूमि नहीं थी जो भारतीय जागरण की इस वेला में नैतिक बल प्रदान कर सके। इसी राष्ट्रीय पृष्ठभूमि में प्रसाद जैसे महान कलाकार का उदय हुआ।

हिन्दी साहित्य के प्रतिभासंपन्न महान नाटककार प्रसाद जी का रचनाकाल सन् 1910 ई. से आरंभ होकर सन् 1933 ई. तक फैला हुआ है। कालक्रम के अनुसार 'सज्जन' उनकी प्रथम कृति है, तो 'ध्रुवस्वामिनी' अंतिम। नाट्य-कला के विकास की दृष्टि से प्रसाद के समस्त नाटकों को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम काल या प्रयोगकाल (सन् 1910 - 1915 ई. तक) है, जिसमें 'सज्जन', 'कल्याणी', 'परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित्त' तथा 'राज्यश्री' आदि रचनाएँ आती हैं। दूसरा काल (सन् 1921 - 1926ई. तक) प्रसाद की परिपक्वावस्था का काल है जिसमें 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', तथा 'कामना' आदि कृतियाँ हैं। तीसरा काल प्रसाद जी की नाट्य-शैली का प्रौढ़तमकाल है, जिसमें 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'एक घूंट' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' आदि रचनाएँ आती हैं। इनमें प्रसाद की नाटकीय प्रतिभा के संपूर्ण वैभव और उनकी नाट्य-शैली के चरमोत्कर्ष का श्रेष्ठतम निदर्शन हुआ है।

प्रसाद की नाट्य-कला प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य- शैलियों के मुख्य उपकरणों की सम्मेलन-भूमि है। इनमें उन्होंने न तो पाश्चात्य रचना शैली का अंधानुकरण ही किया है और न ही भारतीय नाट्य-शैली और मर्यादा का उल्लंघन। तथ्य यह है कि उनकी नाट्य-कला में यदि भूत का संस्कार है तो वर्तमान की प्रेरणा भी निहित है। जहाँ उन्होंने प्राचीन विधान ग्राह्य समझा, वहाँ नवीन रीति-नीति का भी परित्याग नहीं किया। पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करते हुए भी भारतीय संस्कृति और भारतीय दृष्टि को पूर्णतया अक्षुण्ण बनाये रखा। चरित्र-चित्रण की स्पष्टता प्रसाद के नाटकों की बड़ी विशेषता है। प्रसाद ने अपने इन नाटकों के द्वारा बहुत ही उत्तम आदर्शों का भावप्रसार किया यथा- संस्कारों में परिवर्तन, अधर्म पर धर्म की विजय, कठोरता पर कोमलता का प्रभुत्व, विरोधी के प्रति करुणा का भाव आदि-आदि। हिन्दी नाट्य-विधा को प्रसाद जी की देन निश्चय ही श्लाघनीय है और उनका युग हिन्दी नाटकों में विशेषरूप से उल्लेखनीय है ही।

इस युग के अन्य नाटककार थे -माधव शुक्ल (महाभारत), बदरीनारायण भट्ट (दुर्गावती), माखनलाल चतुर्वेदी (कृष्णार्जुन युद्ध), गोविंदवल्लभ पन्त (वरमाला), प्रेमचंद (संग्राम) आदि। इन सभी में न्यूनाधिकरूप से कथानक का वैचित्र्य, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, आधुनिक संदर्भ के समन्वित तत्त्व आदि मिलते हैं। सभी ने संस्कृत की शुद्ध शैली का परित्याग कर दिया था और संघर्ष को नाट्य- शिल्प के केंद्र में रख दिया था। सभी में एक उदात्तता पायी जाती है। इस समस्त परिवर्तन का कारण युग की परिस्थितियों में खोजा जा सकता है। प्रसाद के समकालीन नाटककारों पर प्रसाद के नाटकों का प्रभाव दिखाई नहीं देता। कारण यह है कि उस समय प्रसाद के समान अध्ययन और मननशील नाटककार नहीं हुए हैं।

प्रसाद परिष्कृत शैली के महान नाटककार थे। नाटकीय परिस्थितियों की सुंदर योजना, मनोहर दृश्यविधान, मनोवैज्ञानिक सजीव चरित्र सृष्टि, ट्रैजिड़ी की भावना, कथोपकथन, अद्‌भुत काव्य-स्पर्श, मधुमयी शैली तथा नाट्यतंत्राधिकार के योग द्वारा उन्होंने जिस नूतन एवं मौलिक सृष्टि का निर्माण किया, वह हिन्दी नाट्य- साहित्य के लिए गौरव की वस्तु है। इनके पात्र चारित्रिक घनत्व से युक्त हैं और सच्चाई तो यही है कि शीलनिरूपण का प्रयास सर्वप्रथम इन्हीं के नाटकों से प्रतिफलित हुआ। प्रसाद ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा नाट्य-कला को प्राचीन यांत्रिकता व रूढ़िग्रस्तता से उन्मुक्त कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करते हुए विकासोन्मुख बनाया। निस्संदेह हिन्दी नाटक को प्रसाद की भावगत और रूपगत देन महान है। इनकी मौलिक प्रतिभा के संसर्ग से जहाँ हमारा नाट्य-क्षेत्र पुष्पित एवं फलित हुआ, वहाँ इन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी नाट्य- शिल्प को स्पष्टता, पुष्टता एवं कलात्मक प्रौढ़ता भी प्राप्त हुई। वास्तव में प्रसाद के नाटकों से ही हिन्दी नाट्य- साहित्य का विकासकाल पूर्ण होता है।

13.6 प्रसोदोत्तर युग :-

प्रसादोत्तर काल का नाट्य- साहित्य समृद्ध एवं विशाल होने के साथ-साथ पर्याप्त विविधता रखता है। प्रसाद के बाद नाट्य- साहित्य में एक नवयुग का आरंभ होता है। यह युग विशद और उच्चस्तरीय नाटकों का है।

भारतेन्दु के नाटकों की प्रमुख प्रवृत्ति समाज संस्कार एवं देशप्रेमविषयक है। प्रसाद की रचनाओं में सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना प्रबल है। किन्तु इस काल में अनेकानेक प्रवृत्तियाँ तथा मानवतावादी, आदर्शवादी, सुधारवादी, समाजवादी, साम्यवादी, यथार्थवादी, बुद्धिवादी तथा अनेक वाद जैसे मनोविश्लेषणवाद, यौनवाद, आत्माभिव्यंजनावाद, रूपविधानवाद, प्रकृतिवाद एवं प्रभाववाद आदि प्रस्फुटित हुए। इन युगीन प्रवृत्तियों और वादों को मुख्यतः तीन क्षेत्रों - सांस्कृतिक, राष्ट्रीय-नैतिक एवं सामयिक में विभक्त किया जा सकता है। उपर्युक्त प्रवृत्तियों के आधार पर प्रसादोत्तर युग के नाटककारों की रचनाएँ विभिन्न प्रमुखवर्गों व धाराओं में बाँटी जा सकती हैं जो इस प्रकार हैं :- ऐतिहासिक-सांस्कृतिक नाटक, ऐतिहासिक-राष्ट्रीय नाटक, जीवनीपरक-ऐतिहासिक नाटक, पौराणिक नाटक, समस्या नाटक, गीतिनाटक तथा अन्यापदेशिक नाटक। इस युग के प्रतिनिधि नाटककार हैं- लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास, उपेंद्रनाथ अश्क, उदयशंकर भट्‌ट, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभ पंत और वृंदावनलाल वर्मा। इन्होंने अधिकांश धाराओं के कई नाटकों का सृजन किया है।

इस युग में कुछ नाटककारों ने प्रसाद के नाटकों के सूत्र को पकड़कर चलना आरंभ किया। ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा में प्रमुख नाटककारों तथा उनकी कृतियों का विवरण इस प्रकार है- हरिकृष्ण प्रेमी कृत 'रक्षा बन्धन' (1934) 'शिवसाधना' (1937), 'प्रतिशोध' (1937), 'आहुति' (1940), 'स्वप्नभंग' (1940), 'विषपान' (1945), 'शपथ' (1951), वृन्दावनलाल वर्मा के 'राखी की लाज', 'काश्मीर का कांटा', 'हंस मयूर', 'मंगल सूत्र', 'पूर्व की ओर' 'बीरबल' आदि के साथ-साथ चतुरसेन शास्त्री कृत 'उत्तरसिंह राठौर-उत्सर्ग', जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क' आदि प्रसिद्ध हैं। इन नाटकों में मुस्लिम युग के कथानकों को ग्रहण किया गया है। प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटकों के अतिरिक्त पौराणिक नाटक भी लिखे गये। लेकिन वे संख्या की दृष्टि से कम हैं। अन्य रूपों में उदयशंकर भट्‌ट कृत 'चन्द्रगुप्त', गोविन्ददास कृत 'हर्ष', बलदेव कृत 'मीराबाई', बेचनशर्मा उग्र कृत 'महात्मा ईसा', जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द कृत 'प्रताप', 'प्रतिज्ञा' आदि प्रसिद्ध नाटक हैं।

प्रसादोत्तर युग की एक विशिष्ट विधा है- समस्यामूलक नाटक। इसका आगमन पश्चिम से ही मानना पड़ता है। समस्या प्रधान नाटकों में मुख्य हैं - जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी कृत 'मधुर-मिलन', आनंदी प्रसाद श्रीवात्सव कृत 'अछूत', लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'सन्यासी', 'राक्षस का मन्दिर', और 'मुक्ति का रहस्य', नरेन्द्र कृत 'नीच' आदि। इन समस्याओं में मनोविज्ञान और समाजवाद का मिश्रण है। हास्य और व्यंग्य का पुट भी पर्याप्त है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने पुरुष और नारी संबंधित समस्याओं को लिया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के पश्चात् दूसरे कलाशिल्पी उपेन्द्रनाथ 'अश्क' हैं। ये भी सूक्ष्म मनोविश्लोषण के नाटककार हैं। इनमें नाटकीय कला कौशल के अतिरिक्त नये-नये प्रयोगों का भी आग्रह है। यथा- 'स्वर्ग की झलक' शुद्ध व्यंग्य नाटक है। 'पैंतरे' और 'अंजो दीदी' हास्य प्रधान दुखांत नाटक हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के पश्चात् तीसरे कलाशिल्पी, नवीन प्रौढ़ स्तंभ सेठ गोविन्ददास हैं। आप गांधीजी के व्यावहारिक दर्शन (मानवतावादी आदर्शों) और मनोविज्ञान के नाटककार हैं। इनकी रचनाओं में अभिज्ञात और मध्यवर्गीय ह्रासोन्मुखी जीवन की विश्लेषणात्मक आलोचना अत्यधिक सफलता से हुई है। सेठ जी के पश्चात् के कलाशिल्पियों में उदयशंकर भट्ट का नाम लिया जा सकता है। इनकी भाषा में स्पष्टता, प्रेषणीयता एवं ध्वन्यात्मकता आदि सभी तत्त्व विद्यमान हैं।

राष्ट्रीयधारा के प्रधान नाटकों में प्रेमचंद कृत 'संग्राम', कन्हैयालाल कृत 'देश-दशा', लक्ष्मणसिंह कृत 'गुलामी का नाश', काशीनाथ वर्मा कृत 'समय' आदि मुख्य हैं। इस युग के अन्य नाटकों में रामवृक्ष बेनीपुरी के 'अम्बपाली', 'अमरज्योति', 'खून की याद', 'गाँव का देवता', 'सीता की माँ', 'नया समाज', 'विजेता' आदि प्रमुख हैं। पृथ्वीराज शर्मा कृत 'दुविधा', 'अपराधी', 'शर्मिला', पाण्डेय बेचनशर्मा उग्र के द्वारा रचित 'डिक्टेटर', 'चुम्बन', 'आवास', राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह के 'धर्म की धुरी', 'अपना-पराया' आदि उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक भावबोध को रूपायित करनेवाले नाटकों में धर्मवीर भारती कृत 'गीत नाट्य', 'अंधायुग' उल्लेखनीय हैं। सामाजिक भ्रष्टाचार से संबंधित नाटकों में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार कृत 'न्याय की रात', विनोद रस्तोगी के 'आज़ादी के बाद', 'नया हाथ' आदि प्रमुख हैं। भ्रष्टाचार का उन्मूलन और स्वस्थ व शोषणहीन समाज की स्थापना इन नाटकों का उद्देश्य है।

आधुनिकता की प्रक्रिया को महत्त्व देनेवाले रंग नाटकों में विपिनकुमार कृत 'तीन अपाहिज', ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'शुतुरमुर्ग', गिरिराज किशोर का 'नरमेध', सुरेंद्र वर्मा का 'द्रौपदी', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कृत 'बकरी' का उल्लेख किया जा सकता है। नयी नयी तकनीकों का प्रयोग होने लगा। इससे हिन्दी रंगमंच को नयी दिशा भी मिल रही है और उसकी लोकप्रियता भी बढ़ रही है, यह बड़े हर्ष की बात है।

बड़े नाटकों के अतिरिक्त इस युग में एकांकी नाटकों और श्रव्य नाटकों को भी अत्यधिक विकसित एवं कलात्मक रूप प्राप्त हुआ है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से लेकर आज तक हिन्दी नाटकों की अविच्छिन्न परंपरा में मूलभूत चेतना, वर्ण्य विषय एवं शिल्पविधि की दृष्टि से अनेक परिवर्तन हुए हैं और उनमें उत्तरोत्तर पर्याप्त विकास एवं प्रसार होता चला आया है। प्रसादोत्तर नाट्य- साहित्य भावगत एवं शिल्पगत दोनों दृष्टियों से अपने पूर्व के नाट्य-साहित्य से कई मंजिल आगे बढ़ गया है। आधुनिक नाट्यकला के मूलभूत तत्त्व तो वही है, किन्तु उन तत्त्वों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन, उनके विन्यास में अभूतपूर्ण विकास एवं व्यापकता आयी है। आज नाटकों का धरातल पूर्णतः यथार्थ और आधार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हो गया है। प्रसादोत्तर नाट्य-साहित्य की इस बहुमुखी प्रगति एवं उत्कृष्टता को देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह काल हिन्दी नाटकों का समृद्धिकाल है।

13.7 नाटक साहित्य की वर्तमान स्थिति:-

प्रस्तुत युग में 'छाया' नाटक तथा रेडियो नाटक भी लिखे जा रहे हैं। डॉ.रामकुमार वर्मा के एकांकी अधिक प्रसिद्ध हो रहे हैं। 'रेशमी टाई', 'पृथ्वीराज की आँखें' आदि ऐसे ही नाटक हैं। इस युग में नाटकों का अभिनय कम होता है। अतः नाटकों का साहित्यिक महत्त्व ही अधिक ध्यान में रखा जाता है। इससे उनमें रंगमंच की योग्यता गौण हो जाती है। नाटकों में रस-निष्पत्ति पर विशेष ध्यान पड़ता है, पर आज इनका भी अभाव है क्योंकि आज नाटक-रचना दर्शकों के लिए न होकर पाठकों के लिए हो रही है।

दृश्यकाव्य का लक्ष्य होता है दर्शकों में भावना का विकास करना और उन्हें मनोरंजन प्रदान करना, साथ ही साथ उनमें सुरुचि को बढ़ाना। आज के नाटकों का विकास सर्वांगीण नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी में नाटक-साहित्य का विकास-क्रम कुछ रुक-रुककर हुआ है। आशा है, भविष्य में निरंतर नाटकों का विकास होता जायेगा और नाटक रचना अपने सभी उद्देश्यों की पूर्ति में सफल होगी।

13.8 बोध प्रश्न :-

अ. हिन्दी नाटकों का उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

आ. नाटक के विकास पर एक लेख लिखकर उसमें जयशंकर प्रसाद जी के स्थान को निर्धारित कीजिए।

इ. नाटक के विकास में भारतेन्दु का योगदान पर लेख लिखिए।

13.9 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. आधुनिक निबंध – रामप्रसाद किचलू, राजकिशोर प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. साहित्यिक निबंध – डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र, नेपाल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. हिन्दी के नाट्य शिल्पी – डॉ. शान्ति मलिक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

Dr. P. Prema Kumar,
Lecturer,
Department of Hindi,
Hindu College,
Guntur.

पाठ - 14

प्रगतिवाद- सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

इकाई की रूपरेखा :-

14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि
14.4 प्रगतिवाद का उद्‌भव-विकास
14.5 प्रगतिवाद के प्रसिद्ध कवि - एक परिचय
14.6 प्रगतिवाद तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
14.7 निराला - जीवनी का परिचय
14.8 निराला - साहित्यिक परिचय
14.9 निराला की कविताओं में प्रगतिवाद के तत्व
अ. शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति
आ. क्रान्ति एवं विद्रोह की चेतना
इ. नारी-उत्थान की भावना
ई. शोषण के वास्तविक स्वरूप की पहचान
उ. आर्थिक विषमताओं का सजीव चित्रण
ऊ. मानवतावाद तथा नवनिर्माण
ऋ. व्यंग्यात्मक शैली
14.10 प्रगतिवाद को निराला की देन
14.11 बोध प्रश्न
14.12 सहायक ग्रंथ-सूची

14.1 उद्देश्य :-

'प्रगतिवाद' आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रख्यात विचारधारा है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिन्दी काव्य के सुप्रसिद्ध कवि हैं। प्रगतिवाद के संदर्भ में 'निराला' का योगदान अविस्मरणीय है। 'प्रगतिवाद' के उद्‌भव-विकास से छात्रों को अवगत कराना इस पाठ का मुख्योद्देश्य है। 'निराला' का संपूर्ण परिचय देते हुए उनकी प्रगतिशीलता से छात्रों को परिचित बनाना भी इस पाठ का उद्देश्य है।

इस क्रम में छात्रों को निम्न लिखित बिन्दुओं के माध्यम से प्रगतिवाद का अध्ययन करना होगा।

1. प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि जानेंगे।
2. प्रगतिवाद के उद्‌भव एवं विकास की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक जानेंगे।
3. प्रगतिवाद के प्रसिद्ध कवियों का परिचय प्राप्त करेंगे।
4. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का परिचय प्राप्त करेंगे।
5. निराला की प्रगतिवाद को देन की जानकारी पायेंगे।

14.2 प्रस्तावना :-

कहा जा सकता है कि जो राजनीति में 'कम्यूनिजम' है- वही साहित्य में 'प्रगतिवाद' है। प्रगतिवाद हिन्दी काव्य की महान उपलब्धियों में से एक है। छायावाद की समाप्ति के बाद लगभग 1936 ई. में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। तब से लेकर पुनः प्रयोगवाद नामक नवीन काव्य-युग के आरंभ तक प्रगतिवाद का ही समय माना जाता है। प्रगतिवाद और तब तक चलती आयी साहित्यिक परंपरा में सबसे बड़ी भिन्नता सामाजिक सरोकार तथा चेतना ही है।

अनेक विद्वानों ने प्रगतिवाद को अपने ढ़ंग से परिभाषित किया। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "अब के समय में दो विरोधी शक्तियाँ हैं- पूँजीवाद और साम्यवाद। पूँजीवाद, जिसका साम्यवाद भी अंग है, विनाशोन्मुख है और साम्यवाद विकासोन्मुख है। प्रगतिवाद, साम्यवाद का पोषक है और पूँजीवाद का शत्रु। बल्कि यों कहिए कि प्रगतिवाद, साम्यवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति है।" डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "छायावाद के गर्भ से सन् 1930 ई. के आस-पास नवीन सामाजिक चेतना से युक्त जिस साहित्य-धारा का जन्म हुआ, उसे सन् 1936ई. में प्रगतिशील साहित्य या प्रगतिवाद की संज्ञा प्रदान की गयी और तब से इस नाम के औचित्य-अनौचित्य को लेकर काफी वाद-विवाद होने के बावजूद छायावाद के बाद की प्रधान साहित्य-धारा को 'प्रगतिवाद' के नाम से पुकारा जाता है।"

14.3 प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि :-

किसी भी काव्य-धारा को समझने के लिए उस समय की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनेतिक परिस्थितियों का भी अध्ययन करना पड़ता है। क्योंकि साहित्य तो समाज का ही प्रतिबिम्ब होता है। समाज में चल रहे विविध आंदोलनों, गति-विधियों तथा परिणामों का प्रभाव उस समय के साहित्य पर पड़ता है। प्रगतिवाद का संदर्भ इसका अपवाद नहीं है।

प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि राष्ट्र की विषम परिस्थितियों से तैयार हुई। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में गांधीजी के विरुद्ध राजनैतिक असंतुष्टि पैदा हो रही थी और सन् 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। गांधीजी के अहिंसा सिद्धांत का विरोध करनेवाले कांग्रेस में बढ़ते जा रहे थे। दूसरी ओर देश की सामाजिक स्थिति दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही थी, अशिक्षा, असुविधा, गरीबी और शोषण से भारतीय समाज अवसन्न रह गया था। इन सारी विषमताओं के विरोध में जनसामान्य के मन में तीव्र प्रतिक्रिया का पनपना स्वाभाविक ही था। द्वितीय विश्व महायुद्ध की प्रेरक परिस्थितियों का प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा था।

इन परिणामों के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवाद एवं कम्युनिजम के सिद्धांतों का वर्चस्व बढ़ रहा था। समाज में मज़दूरों को साथ देने के अलावा शोषक शक्तियों का विरोध करना हर साहित्यकार का परम कर्तव्य बन रहा था। 1935 ई. में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन' का प्रथम अधिवेशन पैरिस में हुआ था। अगले वर्ष ही भारत में प्रेमचन्द की

अध्यक्षता में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन हुआ। मोटे तौर पर प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि यही मानी जाती है। रूस में जन्मे समाजवाद तथा जर्मनी के कार्ल मार्क्स कृत कम्युनिज़म तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा स्त्रोत बने। सामंतवाद तथा पूँजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में ही प्रगतिवाद का जन्म हुआ।

14.4 प्रगतिवाद का उद्‌भव-विकास :-

स्थूल रूप से 1936 ई. का समय ही प्रगतिवाद का उद्‌भव काल है। इसी वर्ष लखनऊ में प्रेमचंद की अध्यक्षता में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। प्रगतिवाद का दार्शनिक आधार कार्ल मार्क्स का कम्युनिज़म हुआ तो भौतिक आधार देश-कालीन परिस्थितियों की विषमता ही था। एक ओर हिन्दी काव्य-युग में छायावाद का पतन हो गया और कवि की वैयक्तिक वेदना तथा प्रकृति का चित्रण ही काव्य की परमावधि बन गया। इसकी प्रतिक्रिया में जनसामान्य की उभरती वाणी को स्थान देते हुए, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिणामों को आत्मसात् करके एक नवीन काव्यधारा का उदय हुआ- वही प्रगतिवाद है।

प्रगतिवाद के कवियों के अनुसार "इस नवीनयुग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती," अतः सामाजिक यथार्थवाद की पताका उठाकर इन कवियों ने जनता की वेदना को ही काव्य-रूप दिया। इन्हें रूस में समाजवाद का सफल प्रयोग अत्यंत आकर्षित कर रहा था। इधर भारत में भी आर्थिक अव्यवस्था शिखर को छू रही थी और मज़दूरों का भयानक शोषण हो रहा था। पन्तजी ने 'ताजमहल' नामक कविता में -

"हाय! मृन्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन!
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन!!"

कहकर आम जनता की ओर देखने तथा उनकी वेदना के बारे में लिखने का बीड़ा उठाया। पश्चात् अनेक कवियों ने समाज के कई अनदेखे दृश्यों को कविता में स्थान देना आरंभ किया जिससे प्रगतिवाद का बीज विकसित होने लगा।

14.5 प्रगतिवाद के प्रसिद्ध कवि- एक परिचय :-

प्रगतिवाद में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', (जिनकी चर्चा आगे की जायेगी) सुमित्रानंदन पन्त, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामेश्वरशुक्ल 'अंचल', केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, बाबा नागार्जुन, रांगेय राघव, त्रिलोचन शास्त्री, गिरिजा कुमार 'माथुर', नरेन्द्र शर्मा आदि कई कवि प्रसिद्ध हैं। इन कवियों ने सांस्कृतिक समन्वय, सामाजिक चेतना, शोषितों के प्रति सहानुभूति, व्यंग्य, मानवता में विश्वास आदि तत्वों को प्रगतिवाद में समाविष्ट किया।

सुमित्रानंदन पंत की काव्य-यात्रा छायावाद से आरंभ हुई। पर 'युगान्त' काव्य के द्वारा पन्तजी ने काव्य-युग का परिवर्तन कर दिया और कविता में नवीनता का आह्वान किया। उनकी प्रगतिवादी कविताएँ देश की वर्तमान दुर्दशा का सजीव चित्रण करती हैं।

"भारतमाता ग्रामवासिनी!
खेतों में फैला है श्यामल, धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा-जमुना में आँसू जल,
मिट्‌टी की प्रतिमा- उदासिनी!"

कहकर पन्तजी ने भारतमाता की दीनता का चित्रण किया।

उनके अनुसार आज देश की गरीबी का कारण जनता का शोषण करती सामंतवादी-पूँजीवादी शक्तियाँ हैं। अतः वे समाज की रूप-रेखा को संपूर्ण रूप से बदल देना चाहते थे। "गा कोकिला! बरसा पावक कण, नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन" आदि काव्य-पंक्तियों में उनकी काव्य-चेतना स्पष्ट होती है। 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' को पन्तजी की प्रगतिवादी कविताओं के रूप में ले सकते हैं।

प्रगतिवाद के कवियों में बाबा नागार्जुन का स्वर बड़ा विलक्षण है। उन्होंने व्यंग्य को प्रधानता देकर समाजवाद का समर्थन किया।

"कई दिनों तक चुल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोयी उनके पास।
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।"

आदि पंक्तियों के द्वारा उन्होंने प्रगतिवाद के सामाजिक सरोकार का नमूना प्रस्तुत किया। उनके काव्य में सामाजिक विषमताओं, राजनीतिक षड्यन्त्रों तथा धार्मिक रूढ़ियों पर करारा व्यंग्य पाया जाता है।

"शासन के घोड़े पर ओ ही सवार हैं
उसीकी जनवरी छब्बीस - उसीका पंद्रह अगस्त है।
बाकी सब दुःखी हैं - बाकी सब पस्त है।"

इत्यादि कांव्य-पंक्तियाँ नागार्जुन की शैली के अच्छे नमूने हैं। "युगधारा", "सतरंगे पंखोंवाली", "प्यासी पथरायी आँखें", "भस्मांकुर" आदि नागार्जुन की प्रसिद्ध प्रगतिवादी कविताएँ हैं।

केदारनाथ अग्रवाल ने 'माझी न बजाओ वंशी', 'वसन्ती हवा' 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' आदि कविताओं के द्वारा प्रगतिवाद के विकास में योगदान दिया। उनकी कविताएँ मानव और प्रकृति के सौंदर्य का सहज और उन्मुक्त चित्रण करती हैं। उन्होंने नगर जीवन की कृत्रिमता और मज़दूरों के शोषण की प्रतिक्रिया में कविताएँ लिखीं।

रामविलास शर्मा प्रगतिवाद के कवि के साथ-साथ विख्यात प्रगतिवादी समीक्षक भी हैं। सहजता, आवेग और नवीन सौंदर्यबोध इनकी कविताओं की विशेषताएँ हैं। आप प्रगतिशील लेखक संघ के मन्त्री तथा 'हंस' पत्रिका के संमादक भी रह चुके।

14. 6 प्रगतिवाद तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' :-

यद्यपि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को छायावाद के अग्रदूत कवि माना जाता है, तथापि प्रगतिवाद के प्रवर्तक के रूप में भी आपको गौरव दिया जाता है। निराला का काव्य उनके विकासशील व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है जिसमें कई जगह पूँजीपतियों तथा अन्य शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह परिलक्षित होता है।

निराला की काव्य-साधना अत्यंत संक्लिष्ट एवं बहुमुखी है। आरंभ में उन्होंने स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की कविताएँ जरूर लिखीं, पर सन् 1938 ई. से ही उनकी काव्य-चेतना में प्रगतिशीलता का स्वरूप झलकने लगा। प्रगतिवादी साहित्य का सृजन सन् 1936 ई. में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ ही माना जाता है। यह सर्वविदित है कि लखनऊ में संपन्न संघ की पहली बैठक की अध्यक्षता मुन्शी प्रेमचन्द के द्वारा की गयी। निराला के साहित्य पर इस बैठक का गहरा प्रभाव पड़ा। 1937 ई. के आसपास निराला ने कई प्रगतिशील कविताएँ लिखीं जो 1943 ई. में प्रकाशित 'बेला' नामक

काव्य-संग्रह में संकलित हैं। इसके बाद 'नये पत्ते' तथा 'कुकुरमुत्ता' आदि में उनकी प्रगतिशील विचारधारा का विकसित रूप मिलता है।

'निराला' आरंभ से ही विद्रोह के कवि रहे। सामाजिक वैषम्य के प्रति वे हमेशा सचेत थे। ऐसे में निराला जैसे संवेदनात्मक कलाकार को साहित्य के क्षेत्र में रूपायित होनेवाले प्रगतिशील तत्व से बचकर कविकर्म में लगे रहना असंभव था। अतः निराला ने तत्कालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर ही प्रगतिवादी काव्य-धारा का प्रणयन किया। इस प्रक्रिया को ठीक-ठीक समझने के लिए छात्रों को निराला के जीवन तथा साहित्य-कर्म से परिचित होना पड़ेगा। उसका विवरण निम्नलिखित रूप से दिया जाता है -

14.7 निराला- जीवनी का परिचय :-

पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् 1896 ई. के बसंत पंचमी के दिन बंगाल के महिषादल राज्य के मेदिनीपुर में हुआ। परन्तु उनकी जन्म-तिथि के बारे में कई मत प्रचलित हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार सन् 1899 ई. में निराला का जन्म हुआ। निराला के पिताजी पं.राम सहाय त्रिपाठी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बैसवाड़े के छोटे-से गाँव 'गढ़ाकोला' के रहनेवाले थे और निराला के जन्म से कुछ समय पूर्व ही महिषादल में काम करने आ गये। निराला के जन्म के तीन वर्ष पश्चात् ही उनकी माता का स्वर्गवास हो गया था।

निराला बाल्यकाल से ही मातृ-प्रेम से वंचित तथा पिता के कठोर व्यवहार का शिकार थे। पिताजी अत्यंत कठोर स्वभाव के थे और क्रोध आने पर इकलौते पुत्र निराला की ऐसी जमकर पिटाई करते कि कभी-कभी निराला बेहोश हो जाते थे। पर पिता के इस कठोर आचरण के कारण निराला बचपन में ही विपत्कर परिस्थितियों के आदी बन गए और बाद में बड़े से बड़े मानसिक तथा शारीरिक कष्टों को अपने ऊपर सह सके। कहा जा सकता है कि फक्कड़पन, निर्भीकता, उद्वेग आदि गुण उन्हें पिताजी के द्वारा प्राप्त हुए।

बाल्यकाल में ही निराला का विवाह 'डलमऊ' गाँव के पं. रामदयाल द्विवेदी की कन्या मनोहरा देवी के साथ संपन्न हुआ। मनोहरा देवी साध्वी, सुन्दरी तथा हिन्दी साहित्य की विदुषी थी। वह रामचरित मानस को अपने सुमधुर कण्ठ से गाती थी। काव्य तथा साहित्य के प्रति निराला को आकर्षित करने में मनोहरा देवी का बहुत बड़ा योगदान रहा।

निराला की प्रारंभिक शिक्षा बंगाल में ही हुई। विवाहोपरांत हुई मेट्रिक की एंट्रेन्स परीक्षा में निराला विफल हो गये और उनके पिता को पुत्र की असफलता पर बड़ा क्रोध आया। पिता के क्रोध के कारण निराला अपनी पत्नी समेत कुछ महीने ससुराल में ही रह गए, बाद में वे फिर अपने घर को वापस आये। सन् 1914 ई. में मनोहरा ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम 'रामकृष्ण त्रिपाठी' रखा गया। 1917 ई. में पुत्री 'सरोज' को जन्म देकर मनोहरा देवी दो वर्ष बाद यानी 1919 ई. में महामारी का शिकार हो, चल बसी। तब तक पिता का भी स्वर्गवास हो चुका था। एक साल की अवधि में चाचा, भाई, भौजाई, भतीजी- इस प्रकार निराला के परिवार में लगभग सभी लोगों का स्वर्गवास हो गया। अपने पुत्र और पुत्री के साथ चाचा की चार संतानों को भी साथ लेकर वे महिषदल पहँचे। निराला अब नौकरी करने लगे- राजभवन की चिट्ठी-पत्री, तहसील-वसूली, कचहरी- अदालत से संबंधित काम था।

बाद में महिषादल का काम उनके स्वभाव के विरुद्ध जान पड़ा और वे नौकरी छोड़कर साहित्य के क्षेत्र में आ गए। स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण वे कहीं एक जगह टिककर स्थाई रूप से नौकरी न कर सके। कुछ समय तक उन्होंने 'समन्वय', 'मतवाला' 'सुधा' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भार संभाला। 'मतवाला' पत्रिका के नाम के आधार पर ही

उनका नाम 'निराला' बन गया। पर जीवनपर्यंत उन्हें आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा और सदा उनके जीवन में धन का अभाव रहा। उनका पारिवारिक जीवन अत्यंत वेदनामय रहा। 1935 ई. में उनकी प्रियपुत्री सरोज की मौत हो गयी। सरोज के असमय निधन ने निराला को झकझोर डाला। एक दृष्टि से अर्थाभाव के कारण ही सरोज की मृत्यु हो गयी, इसकी जिम्मेदारी स्वयं पर लेकर निराला अत्यंत दुःखी हुए। यह अपराध-बोध निराला को निरंतर सताता रहा।

सन् 1943 ई. से लेकर 1947 तक निराला उन्नाव में रहे। निराला का स्वास्थ्य इस समय बिगड़ गया था किन्तु वे निरंतर साहित्य-साधना में लगे रहे। 1954 ई. के बाद उनका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य गंभीर रूप से खराब होता गया। अंततः 15 अक्तूबर, 1961 ई. के दिन दारागंज में निराला का स्वर्गवास हो गया।

14.8 निराला - साहित्यिक परिचय :-

निराला की साहित्य-धारा निरंतर विकसित होती रही। उन्होंने हिन्दी काव्य का पठन-पाठन अपनी पत्नी मनोहरा देवी की प्रेरणा से सीखा। सन् 1916 ई. में लिखित 'जन्मभूमि' उनकी सबसे पहली कविता है। 'जुही की कली', 'अधिवास' आदि उनकी अन्य प्रारंभिक कविताएँ हैं। निराला की समस्त काव्य-रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है:-

'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'अनामिका' (द्वितीय), 'तुलसीदास', 'अणिमा', 'नये पत्ते', 'अपरा', 'बेला', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुँज', 'कविश्री', 'सांध्य काकली', 'राग-विराग'। इनमें प्रथम अनामिका उपलब्ध नहीं है। इसमें कुल 9 कविताएँ हैं जिनमें से 7 कविताएँ बाद में 'परिमल' में समाविष्ट कर ली गयीं। 'अपरा' तथा 'कविश्री' निराला के काव्य-संग्रह हैं।

निराला का गद्य साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। उनके पुख्यतः चार उपन्यास हैं - 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' तथा 'प्रभावती'। इनके अलावा निराला ने 'चमेली' और 'इन्दुलेखा' नामक उपन्यास भी लिखे जो असंपूर्ण हैं। 'कुल्लीभाट' तथा 'बिल्लेसुर बकरिहा' कुछ विद्वानों के मतानुसार पूर्णतः उपन्यास न होकर औपन्यासिक रेखाचित्रों के अंतर्गत आते हैं। 'चोटी की पकड़', 'काले कारनामे' भी उनके असंपूर्ण उपन्यासों में ही गिने जाते हैं। निराला ने कहानियाँ भी लिखीं। कुल मिलाकर उनकी कहानियों की संख्या 21 बतायी जाती है जो 'लिली', 'चतुरी चमार' तथा 'सुकुल की बीबी' नामक कहानी - संग्रहों में संकलित हैं।

निराला का निबंध एवं आलोचनात्मक साहित्य हिन्दी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है। उनके निबंध तथा समय-समय पर लिखी संपादकीय टिप्पणियाँ उनकी बहुमुखी प्रतिभा का संकेत देनेवाली हैं। साहित्य की हर विधा में निराला की कलम निर्भीक होकर चलती है, इसका मुख्य कारण उनके हृदय की निर्मलता तथा संवेदनशील रचनात्मक व्यक्तित्व है।

14.9 निराला की कविताओं में प्रगतिवाद के तत्व :-

आधुनिक हिन्दी में 'प्रगतिवाद' की धारा एक बहुचर्चित प्रवृत्ति है। 'प्रगति' का वास्तविक अर्थ 'बढ़ना', 'चलना' 'विशेष गति' इत्यादि है। फिर भी आधुनिक हिन्दी साहित्य में इस शब्द का प्रयोग एक विशेष विचार धारा के लिए रूढ़ हो गया है।

निराला का काव्य उनके विशेष व्यक्तित्व का प्रतिफलन है जो युग की माँग के अनुसार परिवर्तित होता आया। यद्यपि उन्होंने छायावादी कवि के रूप में विशेष ख्याति अर्जित की, प्रगतिवाद के प्रवर्तक कवियों में भी निराला का नाम

गौरव के साथ लिया जाता है। निराला के प्रगतिशील काव्य का आरंभ 1938 ई. से माना जाता है। सुमित्रानंदन पन्त जी के संपादकत्व में प्रकाशित 'रूपाभ' में निराला की प्रगतिशील कविताओं को सर्वप्रथम देखा जा सकता है।

उसके पश्चान् सन् 1943 ई. में निराला का 'बेला' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ जिसकी अनेक रचनाएँ 1937 ई. के आसपास लिखी गयी थीं। यह उनकी प्रगतिवादी प्रवृत्ति का प्रथम प्रकाशित काव्य-संग्रह कहा जाता है। इसके पश्चात् 'नये पत्ते' और 'कुकुरमुत्ता' ऐसे काव्य-संग्रह हैं जिनमें निराला की प्रगतिशील विचार धारा का विकसित रूप मिलता है। निराला के काव्य में प्रगतिशील तत्वों का विवेचन इस प्रकार किया सकता है:-

अ. शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति :-

निराला के मन में आरंभ से ही पीड़ित एवं शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति थी। उसीको उन्होंने अपनी अनेक सामाजिक-यथार्थ-भरी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया। इस सहानुभूति का विकास मानवतावाद के रूप में होकर स्वतंत्रता, समानता एवं सौभ्रातृत्व का संदेश देना उनकी अनेक कविताओं की विशेषता है।'तोड़ती पत्थर' कविता में निराला की समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप हमें देखने को मिलता है।

"वह तोड़ती पत्थर
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर"

कहकर निराला ने समाज की उपेक्षित मज़दूरिन का चित्रण किया। मज़दूरिन की निस्सहाय स्थिति को देखकर उनका मन पिघल जाता है और उसकी दीनावस्था का चित्र इस प्रकार उभरकर आता है:-

"चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू... वह तोड़ती पत्थर।"

निराला ने अपनी कविताओं में ऐसे असंख्य दीन जनों पर प्रकाश डाला जो प्रायः उपेक्षित हैं तथा किसी भी दृष्टिकटाक्ष के पात्र नहीं हैं। ऐसे जनों को वे प्यार से अपनाते हैं और उनकी दुरवस्था के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं। 'भिक्षुक' कविता में-

"वह आता-
दो टूक कलेजे के करता, पछताता, पथ पर आता।
पेट, पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को - भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता-"

कहकर भिक्षुक के प्रति जनता का ध्यान आकृष्ट करते हैं। शोषित एवं दुःखी जन ही प्रगतिवादी काव्य का प्रतिपाद्य है तथा उनकी यथार्थता का चित्रण करना ही सच्चे प्रगतिवादी कवि-कर्म का प्रयोजन है।

'तुलसीदास' कविता में उन्होंने देश के शूद्रजनों के पतन तथा शोषण का बड़ा ही करुणास्पद चित्र खींचा।

"चलते-फिरते, पर निःसहाय
वे दीन-क्षीण कंकाल काय,

आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में
रण के अश्वों से शस्य सकल,
दलमल जाते ज्यों दल-के-दल
शूद्र गण, क्षुद्र जीवन, संबल-पुर-पुर में।"

इस कविता में प्राचीन भारत के शूद्र जन-गण की दुरवस्था मात्र प्रतीक है। इसके माध्यम से वर्तमान समाज की दुरवस्था का चित्रण करना ही निराला का उद्देश्य है।

आ. क्रान्ति एवं विद्रोह की चेतना:-

क्रान्ति एवं विद्रोह प्रगतिवादी काव्य-धारा का प्राणतत्व है। निराला ने जिस ओजपूर्ण ढ़ंग से अपनी कविताओं के द्वारा क्रांन्ति एवं विद्रोह का आह्वान किया, वह अप्रतिम है। उन्होंने कहीं 'धारा', कहीं 'बादल', कहीं 'शिव' और 'काली', कहीं 'पुराने पत्तों का झड़ना और नये पत्तों का आना' इत्यादि प्रतीकों की सहायता से समाज में फैली आर्थिक विषमताओं को समूल उखाड़ देने का संदेश दिया। निराला के अनुसार क्रान्ति का फल विनाश है। पर यह विनाश शताब्दियों की वेदना और करोड़ों दुःखी जनों के हाहाकारों को शांत करनेवाला है। 'धारा' नामक कविता में उन्होंने जलधारा के प्रतीक के द्वारा सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्य को स्पष्ट किया।

"आज हो गए ढ़ीले सारे बन्धन
मुक्त हो गए प्राण,
रूका है सारा करुणा-क्रन्दन।"

कहकर वे क्रान्ति के महान लक्ष्य -करुणा क्रन्दन की रोक-थाम - को पाठकों के सामने रखते हैं।

समाज में युगों से चलते आये शोषण-चक्र को निराला ध्वस्त करना चाहते हैं। कहीं-कहीं 'शिवताण्डव' को भी उन्होंने इस ध्वंस के प्रतीक के रूप में चित्रित किया।

"डमड़ ड़म डमड़ डम
ड़मरू निनाद है।
ताण्डव नीचे शिव
प्रवाद उन्माद है।"

उसी प्रकार 'उद्‌बोधन' कविता में वे वीणा से भैरव निर्जर राग उठाने की बात कहते हैं। क्रान्ति की चेतना का चित्रण उन्होंने 'नरमुण्डमालिनी कालिका' के रूप में भी किया। यदि जनता जागृत हो जाती है तो उसके सामने बड़े-बड़े राज्य, शोषक-वर्ग के प्रतिनिधि- राजा, जमींदार, पूँजीपति आदि भी टिक नहीं सकते। इसके प्रतीक के रूप में उन्होंने जल-धारा के प्रचण्ड प्रवाह में चूर होते पर्वतों का चित्र खींचा। निराला कृत 'बादलराग' कविता विद्रोह की चेतना का सच्चा उदाहरण है। वे बादल को क्रान्ति का केन्द्रबिन्दु बनाते हैं जिसका उद्देश्य है- ग्रीष्म की गर्मी से तप्त धरती को ठण्डा करना। वे उस बादल से कहते हैं कि 'खेत में खडा दुर्बल किसान तुम्हारी प्रतीक्षा करता है, वर्षा की धारा बहाकर उसकी भूख मिटाओ,' इसमें ग्रीष्म की गर्मी आर्थिक- उत्पीड़न का प्रतीक है और बादल विद्रोही चेतना का। इस प्रकार निराला ने दिखाया कि क्रान्ति के विप्लव वीर का कर्तव्य आतंक मचाना नहीं, बल्कि पीड़ित जनता का पक्ष लेकर उसकी तरु से विद्रोह करना है।

"ऐ विप्लव के वीर।
तुझे बुलाता कृषक अधीर।
चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मात्र ही है आधार।"

अतः विद्रोही क्रान्तिकारी को समाज के शोषित वर्ग का सहारा देना होगा और उसे सांत्वना देनी होगी।

इ. नारी-उत्थान की भावना:-

निराला ने अनेक प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, जो नारी की स्वाधीनता पर सवाल उठाकर नारी को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करना चाहती हैं। 'तोड़ती पत्थर' की नारी उन पीड़ित श्रमिक जनों की प्रतिनिधि है जो खून-पसीना एक करके सड़कें बनाते हैं। पर दुःख की बात है कि उन सड़कों पर किसी और की गाड़ियाँ दौड़ती हैं। 'किसान की नयी बहू की आँखें' जैसी कविताओं में ग्रामीण सौंदर्य-छवि की भावना का अनायास ही परिचय मिलता है। 'प्रबन्ध-प्रतिमा' नामक अपने निबंध-संग्रह में निराला ने नारी-स्वाधीनता के बारे में लिखा: "महिलाओं की स्वतंत्रता ही उनके जीवन की सब दिशाओं का विकास करेगी। हमें सिर्फ उनकी स्वतंत्रता का स्वरूप बतलाना है, और यह भी सत्य है कि पुरुषों के निरादर करने पर भी स्त्री-शक्ति का विकास रूक नहीं सकता- न वह अब तक कहीं रूका है।" इन वाक्यों से नारी की शक्ति पर निराला के उदात्त विचार स्पष्ट होते हैं। उन्होंने अनेक कविताओं में नारी-शक्ति के उपरोक्त विकास की बात कही। उन्होंने लिखा -

"माता की चरण-रेणु मेरी परमशक्ति है-
..सारे ब्रह्माण्ड के मूल में जो विराजती हैं
आदि शक्ति-रूपिणी,
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है-
माता हैं मेरी वे।"

नारी निराला के लिए केवल शक्ति-स्वरूपिणी ही नहीं बल्कि माता भी है। उनके अनुसार माँ शारदा भी आदिशक्ति का ही एक रूप है, जिसमें कलुष और जड़ता तिरोहित करने की शक्ति विद्यमान है।

इस प्रकार निराला अपनी प्रगतिवादी कविता में जहाँ अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार में पराधीन नारी को शिक्षित बनाने की चेतना जगाते हैं, वहीं नारी को प्रेरणा और शक्ति का स्वरूप मानते हुए नतमस्तक भी होते हैं।

ई. शोषण के वास्तविक स्वरूप की पहचान:-

निराला तमाम प्रगतिवादी कवियों में अकेले ऐसे कवि थे जिन्होंने समाज की आर्थिक विषमताओं के मुलभूत कारणों को खोज निकाला। निराला ने माना कि जब तक राजा और जमींदारों के सामंती आधार को खतम नहीं किया जाता, तब तक भारत का विकास नहीं होगा। उनकी कविताओं में राजाओं तथा जमींदारों पर गाँव के साधारण लोगों के आक्रमण के चित्र मिलते हैं। 'नये पत्ते' काव्य-संग्रह की अनेक कविताएँ ऐसी हैं। निराला गाँव का शोषण करनेवाले वास्तविक शोषकों का चित्रण यों करते हैं-

"गाँव के अधिक जन कुली या किसान हैं
कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,
नाई, लोहार, बारी, तरकिहार, चुड़िहार,

बेहना, कुम्हार, डोम, कोरी, पासी, चमार,
गंगापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार...
जमींदार के 'वाहन'।
बाकी परदेश में कौड़ियों के नौकर हैं,
महाजनों के दबैल,
स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचनेवाले।"

इस कविता में उन सभी शोषित-दुःखी जनों का विवरण है, साथ में उनका शोषण करनेवाले जमींदार तथा महाजनों का भी! 'डिप्टी साहब आए' नामक कविता में वे लिखते हैं कि गाँव के इन शोषकों का अंत तभी होगा जब शोषित जन सब एक होकर उनका मुकाबला करते हैं।

"मुन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार
लुच्छू नाई, बली कहार, कुल टूट पड़े
कुछ नहीं हुआ- कुछ नहीं हुआ– होने लगा!"

'छलांग मारता चला गया' और 'झींगुर डटकर बोला' नामक कविताओं में निराला ने ग्रामीण जनता पर जमींदार के आतंक का चित्रण किया।

"जमींदार के सिपाही की
लाठी का गूला, लोहा बँधा,
दरवाजे गढ़ाकर जाता है"

निराला ने इन कविताओं के द्वारा दिखाया कि जमींदार के सेवक किसानों को धमकी देते हैं और किसान-सभा के सदस्यों पर गोली चलाते हैं। इससे पता चलता है कि उनकी प्रगतिशील रचनाओं की परिधि बड़ी व्यापक है।

उ. आर्थिक विषमताओं का सजीव चित्रण:-

निराला ने अपने समय के समाज की आर्थिक असमानताओं को बड़े ध्यान से देखा और अपनी कविताओं में उनका चित्रण किया। किसी भी साहित्यकार का यह धर्म बनता है कि वह समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण करे। निराला ने आदि से लेकर इन कठोर आर्थिक असमानताओं को चित्रित किया और अपना धर्म निभाया। 'तोडती पत्थर', 'भिक्षुक', 'दान', 'बादलराग', 'सेवा-प्रारंभ' आदि असंख्य कविताओं में भुखमरी, सूखा, दरिद्रता, कंगाली और अभाव का चित्रण है। 'सेवा-प्रारंभ' कविता में उन्होंने अकाल से पीड़ित नर-नारी का चित्रण यों किया-

"दुबले पतले जितने लोग
लगा देश भर को ज्यों रोग,
दौड़ते हुए दिन में स्यार
बस्ती में बैठे गीध महाकार।"

इन पंक्तियों के द्वारा निराला कठोर वास्तविकता को प्रस्तुत करते हैं। महायुद्ध के दौरान आर्थिक संकट के विशाल चित्र उनकी कविताओं में मिलते हैं:-

"वेश-रूखे, अधर-सूखे
पेट-भूखे, आज आये

हीन-जीवन, दीन-चितवन
क्षीण आलंबन बनाये।"

निराला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका प्रगतिवाद स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद रूक नहीं जाता। वे निरंतर दीन-दुःखी जनों से जुड़ते हैं और स्वाधीन भारत के एक किसान की हालत का चित्रण इस प्रकार करते हैं:-

"सूख गया किसान एकाकी
रोया, रही न लेखा बाकी
कर्म धर्म को करके साखी
दुहरी डगर भरी शीत की।"

ऊ. मानवतावाद तथा नवनिर्माण:-

निराला की प्रगतिशील कविताओं का मूलतत्व करुणा तथा मानवतावाद है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से मनुष्य-मनुष्य के बीच फैली संकीर्ण भेद-भावनाओं को मिटाना चाहा। उन्होंने 'वीणावादिनि' गीत में लिखा-

"काट अंध उर के बंधन स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद तम हर, प्रकाश भर..
जगमग जग कर दें वर दें..."

निराला के काव्य में सामान्य श्रमिक जन, साधारण किसान, पीड़ित-शोषित वर्ग के लोग-इन सबके माध्यम से मानवतावाद पर जोर दिया गया। निराला इन सभी के द्वारा मानवीय करुणा को ही अभिव्यक्त करते हैं। निराला के काव्य में मनुष्य की जाति, वर्ण, देश-भेद पर आधारित संकीर्ण विचारधारा नहीं, मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने का नया अंदाज मिलता है। कभी-कभी यह सोच इतना विशाल हो जाता है कि 'वसुधैव कुटुंबकम' की बात को साकार बनाते हुए निराला 'विश्व मानव' का प्रतिपादन करते हैं। मनुष्यमात्र के बंधुत्व की घोषणा करते हुए निराला ने लिखा-

"मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं क्लिन्न।
भेदकर पंक, निकलता कमल
जो मानव का वह निष्कलंक
हो कोई सर।"

सम्राट् अष्टम एडवर्ड ने अपने प्रेम के लिए राज-सिंहासन छोड दिया तो निराला ने "सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति" नामक कविता लिखकर उसकी प्रशंसा की।

"तुमसे हैं मिले हुए नव
योरप- अमेरिका"

कहकर निराला ने योरोप तथा अमेरिका को जोड़ने वाले व्यक्ति के रूप में एड़वर्ड को प्रस्तुत किया। इसके साथ-साथ निराला के काव्य में सदा नवनिर्माण की आशा पायी जाती है।

"बुझे तृष्णाशा- विषानल झरे भाषा
अमृत-निर्झर,
उमड़ प्राणों से गगनतर छा गगन लें
अवनि के स्वर"

कहकर निराला सकल जनों के कल्याण की मंगल कामना करते हैं। निराला का उद्देश्य ज्ञानमय भारत की प्रतिष्ठा करना है, देश में व्याप्त सारे भ्रमों को दूर करना है।

ऋ. व्यंग्यात्मक शैली :-

निराला की प्रगतिशील कविताओं का अन्य प्रमुखतत्व उनकी व्यंग्यात्मक शैली है। निराला देश की गतिविधियों से राजनैतिक परिस्थितियों तथा मानव प्रवृत्ति में बढ़ते स्वार्थ गुण से बहुत असंतुष्ट थे। उन्होंने समय-समय पर व्यंग्यात्मक शैली में अपनी असंतुष्टि को अभिव्यक्ति दी। देश की जनता भुखमरी से पीड़ित है किन्तु राजनीति के लोगों को देश की दुरवस्था की जानकारी तक नहीं। निराला ने इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए लिखा -

"महँगाई की बाढ़ बढ़ आयी, गाँठ की
छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाए, न आये
वीर जवाहरलाल!
कैसे हम बच पाये निहत्थे, बहते गये
हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये
वीर जवाहरलाल!"

देश की जनता अन्न के लिए तड़प रही है किन्तु नेता गण उस पर किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं दिखाता। इसी स्थिति का चित्रण निराला ने व्यंग्यात्मक ढ़ंग से किया-

"आजकल पण्डितजी देश में विराजते हैं।
माताजी को स्विट्जरलैण्ड़ के अस्पताल,
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़े भारी नेता हैं।
कुइरीपुर गाँव में व्याख्यान देने आए
मोटर पर।
लन्दन के ग्रेजुएट, एम.ए. और बैरिश्टर,
बड़े बाप के बेटे,
बीसियों भी पर्तों के अंदर, खुले हुए।"

इस प्रकार निराला का व्यंग्य बड़ा कठोर तथा निर्भीक होता है। राजनीति के बड़े-बडे नेताओं पर भी व्यंग्य करने की क्षमता उनमें थी। 'आ रे गंगा के किनारे', 'दान' आदि कविताएँ धार्मिक पाखण्डता के खिलाफ व्यंग्य करती हैं।

"मेरे पड़ोस के सज्जन
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन
झोली से पुएँ निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए।
देखा नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर
चिल्लाया किया दूर मानव
बोला मैं -'धन्य मानव'! "

इन पंक्तियों में निराला उस भक्त पर व्यंग्य कसते हैं जो बन्दरों को पुएँ (एक प्रकार की मीठी खाद्य वस्तु) खिलाकर भूखे आदमी को चिल्लाकर भगा देता है। निराला के व्यंग्य में मानवता का स्पर्श भी मिला हुआ है।

14.10 प्रगतिवाद को निराला की देन :-

यद्यपि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के प्रमुख कवि के रूप में विख्यात हुए, तथापि आधुनिक हिन्दी काव्य की अनेक प्रवृत्तियों के प्रवर्तक भी उन्हींको माना गया। निराला ने प्रगतिशील काव्य का आरंभ अपनी शैली में किया, जिसका बाद में अनेक कवियों ने अनुकरण किया। उन्होंने कल्पना जगत से हिन्दी कविता को यथार्थ की कठोर भूमि पर ला खड़ा किया। हिन्दी काव्य को निराला ने ही सर्वप्रथम समाज की ओर देखने के लिए बाध्य किया। 'भिक्षुक' 'विधवा' 'तोड़ती पत्थर' 'रानी और कानी' आदि कविताओं के द्वारा उन्होंने समाज के द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित जनों पर प्रकाश डाला और दीन-दुःखी, शोषित वर्ग का साथ दिया। प्रगतिवाद के परवर्ती कवियों को इस प्रकार निराला के द्वारा सही मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

निराला ने प्रगतिवाद को निर्भीकता और नयी-रचनात्मक व्यंग्य मिश्रित शैली दी। उन्होंने देश के किसान-मजदूर तथा अन्य मेहनतकश लोगों को अपनी कविताओं के नायक बनाये। उनकी अन्य विशेषता है- शोषण के मूल कारण को खोज निकालकर उसके प्रति जनता को सचेत करना। जमींदारों तथा अंग्रेजों के बीच जो अनैतिक समझौता हुआ, उसे निराला ने पहचाना। इसलिए उनकी प्रगतिशील कविताओं में जमींदारों तथा अन्य सामन्तवाद के प्रतिनिधियों का विरोध किया गया। यह तत्त्व प्रगतिवाद की अन्य कविताओं में नहीं मिलता। प्रगतिवाद को निराला की सबसे बड़ी देन यही है कि उन्होंने सदा समाज के शोषित वर्ग को अपनी कविता का केन्द्र बनाया, न कि किसी सिद्धान्त को। इसीलिए कभी-कभी निराला ने 'मास्को डॉयलाग्स' आदि कविताओं में कम्युनिस्ट नेताओं की भी खुलकर आलोचना की। मानवता ही उनकी प्रगतिवादी कविताओं का प्राणतत्त्व है। इससे स्पष्ट होता है कि औसत प्रगतिवादी कवियों से निराला बिलकुल भिन्न थे।

वस्तुतः निराला की प्रगतिवादी चेतना समय-सीमा में आबद्ध नहीं है। (सन् 1947 के बाद भी निराला ने प्रगतिशील कविताएँ लिखीं, पर तब तक हिन्दी साहित्य में तथाकथित 'प्रगतिवाद' की समाप्ति हो चुकी।) कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद की मौलिक चेतना से और उस विचारधारा के उदात्त लक्ष्यों से निराला बराबर जुड़ते आये।

14.11 बोध प्रश्न :-

1. 'प्रगतिवाद' की परिभाषा देते हुए उसके उद्‌भव तथा विकास पर प्रकाश डालिए।
2. प्रगतिवाद के प्रसिद्ध कवियों का परिचय दीजिए।
3. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की जीवनी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का साहित्यिक परिचय लिखिए।
5. निराला के काव्य में प्रगतिवादी तत्वों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
6. 'प्रगतिवाद को निराला की देन' पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।
7. प्रगतिवाद के अन्य कवियों से निराला कैसे भिन्न हैं? अपने शब्दों में एक परिच्छेद लिखिए।

14.12 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ. नगेन्द्र
2. निराला की साहित्य साधना भाग 1&2	:	डॉ. रामविलास शर्मा
3. 'निराला' - एक विशेष अध्ययन	:	डॉ. अशोक तिवारी
4. 'प्रगतिवाद'	:	प्रो. रविरंजन
5. निराला-आत्महन्ता आस्था	:	दूधनाथ सिंह
6. स्वाधीनता संग्राम तथा निराला	:	डॉ. अनिल कुमार राय
7. 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'	:	ए.पे.चेलिशेव

Dr. D. Nageswara Rao,
Lecturer,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College(Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 15

प्रयोगवाद - अज्ञेय

इकाई की रूपरेखा :-

15. 1 उद्देश्य
15. 2 प्रस्तावना
15. 3 प्रयोगवाद की परिस्थितियाँ
15. 4 प्रयोगवाद काव्य-धारा की प्रवृत्तियाँ
15. 5 नयी कविता की पृष्ठभूमि
15. 6 अज्ञेय का परिचय
15. 7 काव्यगत विशेषताएँ
15. 8 बोध प्रश्न
15. 9 सहायक ग्रंथ-सूची

15. 1 उद्देश्य :-

आधुनिक हिन्दी साहित्य 1875 ई. से आरंभ होता है। इस युग को गद्यकाल या खड़ीबोली युग कहा जाता है। इस युग में हिन्दी गद्य और पद्य का आरंभिक विकास देखा जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, राष्ट्रीयवाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद या नयी कविता जैसी पीढ़ियों में बाँटा गया है। इनमें से प्रयोगवाद या नयी कविता के युग की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करना ही इस पाठ का परमोद्देश्य है। प्रयोगवाद के सर्वप्रसिद्ध एवं प्रतिनिधि कवि के रूप में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। प्रयोगवादी काव्य की पृष्ठभूमि में अज्ञेय के जीवन तथा कृतित्व का परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं से छात्रों को अवगत कराना भी इस पाठ का उद्देश्य है।

15. 2 प्रस्तावना :-

आधुनिक काव्य-धारा के आरंभिक चरण में भारतेन्दु तथा द्विवेदी युगों को हिन्दी साहित्य को तराशने तथा प्रामाणिक काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का गौरव प्राप्त हुआ था। बाद में द्विवेदी युगीन सीधी सपाट शैली के विरोध में कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों तथा स्पंदनाओं को शब्दबद्ध करते हुए छायावाद का उद्‌भव हुआ। परन्तु छायावाद भी अधिक समय टिक नहीं सका- उस काव्य में निहित अतीव व्यक्तिवाद से ऊबकर सामाजिक दायित्व का नारा लगाते हुए प्रगतिवादी कवियों ने अपनी धाक जमायी। प्रगतिवाद में अभिव्यक्त नितांत सामाजिकवाद से पुनः व्यक्ति का पता खो गया। इसके साथ-साथ दुनियाभर में चल रहे अनेक आंदोलनों तथा महायुद्धों ने हिन्दी काव्य को नया प्रयोगवादी स्वर दिया। इन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में प्रयोगवाद का जन्म हुआ। इस पाठ में प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों तथा परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

15. 3 प्रयोगवाद की परिस्थितियाँ :-

छायावाद के विरोध में प्रगतिवाद का जन्म हुआ तो प्रगतिवाद के विरोध के रूप में प्रयोगवाद का। पहले हम प्रगतिवाद के उत्थान की ओर दृष्टि डालेंगे। इस काव्यधारा के कवि कल्पना लोक में उडान भरने के बजाय धरती के कठोर यथार्थ से सामना करने में विश्वास रखते थे। कविवर पद्मसिंह शर्मा कमलेश्वर ने "बहुत उड़ लिए अंबर में अब धरती पर उतरो" में प्रगतिवादी कामना को मानों वाणी दी है। छायावादी काव्य के इंद्रधनुषी आकाश को ताकना छोड़कर निराला और पंत जैसे छायावादी कवियों ने धरती पर बसनेवाले आम आदमी की अवस्था को अपने-अपने काव्यों में शब्दायित करना आरंभ किया। 'वह तोड़ती पत्थर...' जैसी कविताओं में निराला ने अभावग्रस्त जीवन को कविता में पेश करना आरंभ किया। इसी प्रकार 'ताज' नामक कविता में पंत जी ने युगों से मनोहर माने जाने वाले 'ताज' की भर्त्सना करके अपनी प्रगतिवादी चेतना का परिचय दिलाया। कल्पना की उड़ानें देर तक कवि का साथ नहीं दे पातीं, उसे धरती से जुडना ही पड़ता है। क्योंकि एक तरह से देखा जाए तो छायावादी कवि युगीन परिस्थितियों से दूर रहकर पलायनवाद का आश्रय ले रहे थे और कुछ हद तक आत्मप्रवंचना भी कर रहे थे।

जिस प्रकार छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया थी उसी प्रकार इसमें सूक्ष्म के प्रति स्थूल की प्रतिक्रिया दिखाई देती है। यह जीवन की विषमताओं को भूलकर सौंदर्य के स्वप्न नहीं देखना चाहता। वैसे तो जहाँ नवीनता है वहाँ प्रगति है। छायावाद भी इस प्रगति में आया था। किन्तु प्रगतिवाद अब काव्य को वस्तुवाद की कठोर कर्कश भूमि पर खड़ा कर देना चाहता है। वह शोषित-पीड़ित मानव को ही अपने काव्य का आलंबन बनाना चाहता है। सामंतवाद और पूँजीवाद से उसका कड़ा विरोध है। जो लोग उनसे संबंध रखनेवाली कविता करते हैं अथवा जो प्रगतिवादी सिद्धांतों को नहीं मानते वे प्रतिक्रियावादी कहलाते हैं। प्रगतिवाद वर्गहीन समाज के पक्ष में है। उसे एक प्रकार से मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप कहा जा सकता है। सौंदर्य और कला से उसका विरोध नहीं है किन्तु पहले उन भौतिक अभावों को और जनता के दैन्य और दरिद्रता को दूर करना चाहता है, जिसके कारण उनकी सौंदर्यानुभूति में कमी पड़ती है। उसका सिद्धांत है 'भूखे भजन न होइ गुपाला'। वह कला को जन साधारण के उपयोग का विषय बनाना चाहता है।

परन्तु प्रयोगवाद का आशय बिलकुल भिन्न है। प्रयोगवाद भी एक तरह से छायावाद की तरह व्यक्तिवाद का समर्थन करता है किन्तु प्रयोगवाद व्यक्तिवाद की सीमाएँ इतनी पार कर गया कि अवांछित एवं अश्लील वैयक्तिक विचारों को भी प्रयोगवाद में जगह मिलने लगी। जिस प्रकार पलायनवाद के विरुद्ध प्रगतिवाद आक्रमण करता है उसी प्रकार कठोर समाजवाद के विरुद्ध प्रयोगवाद आवाज उठाता है। इस प्रक्रिया में प्रयोगवादी कवि व्यक्तिवाद को विशृंखलता तक ले गये। प्रयोगवाद का जन्म भी किंचित् विभिन्न परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में हुआ। सन् 1943 ई. में अज्ञेय के संपादन में 'तारसप्तक' का प्रकाशन हुआ जिसमें सात कवियों की प्रयोगधर्मी कविताओं को पहली बार सुनियोजित ढ़ंग से हिन्दी संसार के सामने प्रस्तुत किया गया। इन कविताओं में नव्य चेतना, नवीन भाषा, अभिव्यक्ति, शिल्प, प्रतीक एवं बिंबों का प्रस्तुतीकरण हुआ। इनका कहना है कि परंपरागत कविता में चले आ रहे भाव-विषय, भाषा पद्धतियाँ, शिल्प भंगिमाएँ आज की तेजी से बदलती सामाजिक व्यवस्थाओं और वैयक्तिक आकांक्षाओं को पूर्णतः अभिव्यक्ति देने में असमर्थ हैं, अतः नये नये प्रयोगों के माध्यम से कविता को वाणी देनी ही होगी।

प्रयोगवाद के उद्भव का एक और कारण था- छायावाद की भांति प्रगतिवाद भी रूढ़िग्रस्त होने लगा। शोषितों के साथ उसकी जो सहानुभूति थी वह अधिकतर बौद्धिक थी। काव्य में प्रगतिवाद की वास्तविकता के साथ छायावाद का समन्वय करने की आवश्यकता महसूस की गयी थी। चक्की के कर्कश स्वर को कोमलता प्रदान करने तथा उस कार्य को

सुलभ बनाने के लिए कुछ राग तो चाहिए परंतु राग में चक्की पीसना न भूलना चाहिए। इस अवधि के कवियों में इस प्रकार के समन्वय के दर्शन होते हैं। इन सबसे ऊबकर तरुण कवियों की चाह नयी-नयी राहों के अन्वेषण में नये प्रयोगों की ओर उन्मुख हुई।

प्रयोग तो कविता में हमेशा से ही चले आए हैं किन्तु प्रयोगवाद विशेषरूप से प्रयोगों को महत्त्व देता है। प्रयोगवादियों का कथन है कि कविता के विषय में निःशेष की बात ही नहीं उठती। नये नये विषय नयी परिस्थितियों के अनुरूप उपस्थित होते हैं। उनके प्रति बौद्धिक आकर्षण तो है ही, कविता द्वारा रागात्मक आकर्षण भी आवश्यक है जिससे जनता के साथ अनुभूति-साम्य हो सके। इस समय की तीन विचार शक्तियाँ हैं- डार्विन, मार्क्स और फ्रायड़। मार्क्स ने समाज के संबंध में नये विचार दिए। फ्रायड़ ने मानव की कामवासना जन्य कुंठाओं के रहस्यों का उद्‌घाटन कर दिया। भौतिक विज्ञान और युद्धों ने नयी समस्याओं तथा नये भावों को जन्म दिया। उनकी अभिव्यक्ति के लिए साधन आवश्यक हैं। प्रयोगवाद प्रस्तुत और अप्रस्तुत नया छंद-विधान दोनों के संबंध में नवीनता चाहता है। इस प्रकार प्रयोगवाद ने कविता के क्षेत्र में नया विस्तार दिया है। किन्तु दोष इतना ही है कि कहीं-कहीं ये नये मार्ग राजमार्ग और अन्य प्रशस्त पगडण्डियों से इतने हटे हुए होते हैं कि प्रयोगवादी साधारणीकरण की परवाह करते हुए भी साधारणीकरण के निकट नहीं आ पाते हैं। दूसरा दोष है- प्रयोगवादी का प्रगतिवादी की भांति कोई निश्चय ध्येय नहीं है। निश्चय ध्येय प्रयोग ही है जिसमें सदा वैचित्र्य रहेगा।

प्रगतिवाद का जहाँ क्षेत्र संकुचित था वहाँ ध्येय विस्तृत था। प्रयोगवाद का क्षेत्र और ध्येय अनिश्चित है। जो कविता किसी वर्ग में न रखी जा सके वह प्रयोगवाद में रखी जाने लगी। इस प्रकार प्रयोगवाद पूरा का पूरा एक नकारात्मक वर्ग बन गया। फिरभी उसमें कुछ विशेषताएँ हैं- उसमें प्रगतिवाद की-सी निर्वैयक्तिकता और बहिर्मुखता नहीं हैं। इसमें वह छायावाद के निकट है, किन्तु वह यथार्थता की ओर अधिक झुका हुआ है। व्यापक सहानुभूति किसी वस्तु की कविता के क्षेत्र से बाहर न समझना, यहाँ तक कि धैर्य-धन गधा, चप्पल और चम्मच तक कविता के विषय बन सकते हैं। किन्तु वे इनमें भी सीमित नहीं हैं। बाह्य क्षेत्र के अतिरिक्त आंतरिक क्षेत्र में उपचेतना की उलझी हुई संवेदनाओं का भी चित्रण रहता है। यहाँ प्रतीकों को अधिक आश्रय मिलता है। नवीन प्रयोगों का स्वागत है। उनमें नवीन उपमाओं- जो कभी कभी विलक्षणता की हद लांघकर बीभत्सता पर पहुँच जाती है- के साथ-साथ बुद्धिवाद का प्राधान्य है और जनसत्ता की ओर झुके हुए सामाजिक व्यंग्य शैली में नितांत व्यक्तिवादिता का आश्रय लिए हुए हैं।

15. 4 प्रयोगवादी काव्य-धारा की प्रवृत्तियाँ :-

1. घोर अहंनिष्ठ व्यक्तिवाद :- प्रयोगवादी कवि समाज से किसी प्रकार के सामंजस्य के लिए तैयार नहीं हैं। कारण, उसके मन में अहं निष्ठ व्यक्तिवाद बड़ी मात्रा में बद्धमूल है। व्यक्ति स्वच्छंदता का प्रतिपादन करते हुए कवि अपने आपको विकासोन्मुख सामाजिक धारा से अलग रखता है। वह सभ्यता और संस्कृति की गतिविधियों के प्रवाह में योग देने की अपेक्षा उसके मार्ग का बाधक द्वीप बनना चाहता है। अज्ञेय के शब्दों में-

"किंतु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं,
स्थिर समर्पण है हमारा
हम सदा से द्वीप हैं उस स्रोतस्विनी के,

किंतु हम बहते नहीं,
क्योंकि बहना रेत होना है।"

2. अति यथार्थवाद :- प्रयोगवादी कवि का मुख्य लक्ष्य दमित वासनाओं और कुण्ठाओं का नग्न चित्रण करना रहा है। जिन वृत्तियों को असामाजिक तथा अस्वस्थ कहकर साहित्य में स्थान नहीं दिया गया है, उन्हींको उभारकर प्रस्तुत करने में कवि गौरव का अनुभव करता है।

3. अति बौद्धिकता :- अतियथार्थवाद के साथ अति बौद्धिकता भी प्रयोगवाद या नयी कविता की विशेषता है। बौद्धिकता का उपयोग वह रक्षणात्मक कवच के रूप में करने लगा और हर बात में उसे रेशनलाइजेशन की आदत पड़ गयी। धर्मवीर भारती के शब्दों में 'प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढ़ाँचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न उसीकी ध्वनि मात्र है।'

4. निराशावाद, योग, प्यार और मृत्यु :- पूर्ण स्वतंत्रता या स्वच्छंदता का उपयोग प्रायः व्यक्ति योग और प्यार में करता है। उनका परिणाम निराशा और मौत में होता है। योग और प्रेम शुद्ध भौतिक और शारीरिक विलास के द्योतक हैं जो असंयमित और अनयिंत्रित हैं। अतः कभी-कभी आत्महीनता का रूपधारण करता है-

"हम सबके दामन पर दाग हैं।
हम सबकी आत्मा में झूठ,
हम सबके माथे पर शर्म,
हम सबके हाथों में टूटी तलवारें।"

5. पीड़ा की स्वीकृति :- प्रयोगवादी कवि मध्यवर्गीय होने के कारण जन जीवन और सामूहिक जागरण से असंपृक्त रहे। अपनी समीओं को लांघने में असमर्थ होने के कारण वे अंतर्मुखी हो जाते हैं। जन जीवन के प्रवाह में भी अपने में ही अवस्थित रह जाते हैं। इसका दुख बोध दार्शनिक स्तर पर चिरंतन सत्य बन जाता है-

"दुख सबको माँजता है,
और....
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना न चाहे, किन्तु
जिनको माँजता है,
उन्हें सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।"

6. नवीनता का मोहः- प्रगतिवादी कवि को नवीनता के प्रति अत्यधिक मोह है। इसी कारण वह सदा परिचित को छोड़कर अपरिचित की खोज करता है। नवीनता के आग्रह के कारण कभी-कभी अवास्तविकता को भी ग्रहण करता है।

7. भदेस का समावेश :- प्रयोगवादी कविता का आविर्भाव छायावादी एवं प्रगतिवादी कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ है। नये कवि ने छायावादी कविता में अभिव्यक्त अतिशय कोमलता और मृदुता से ऊबकर अनगढ़ और भदेस को अधिक आग्रह सहित ग्रहण किया।

8. दुरूहता :- दुरूहता भी इन कवियों की अन्य विशेषता रही। अनिवार्यरूप से और सैद्धांतिक रूप से भी इन कवियों ने दुरूहता को अपनाया। भावना और काव्यानुभूति के बीच रागात्मकता की अपेक्षा बुद्धिगतसंबंध स्थापित किया गया है। उपचेतन मन के अनुभव खण्डों को यथावत् चित्रण का आग्रह पाया जाता है। वैचित्र्य प्रदर्शन में उनका लक्ष्य केवल

विलक्षण और अतिदुरूहता से नूतनता प्रकट करना ही प्रतीत होता है-

"अगर मैं तोता होता
तो क्या होता?
तो क्या होता,
तोता होता
(आह्लाद से झूमकर)
तो तो तो तो ता ता ता ता ता
होता होता होता होता!!"

9. प्रकृति चित्रण में विलक्षणता :- अतिवैयक्तिकता के कारण कवि अपने अहं से प्रकृति को परिवेष्टित करना चाहता है। संश्लिष्ट बिंब योजना के द्वारा वह प्रकृति चित्रण करता है। कहीं-कहीं रंग, स्पर्श, ध्वनि और बौद्धिक बिंबों का समावेश भी नयी कविता के प्रकृति चित्रण में पाया जाता है।

10. व्यंग्य और कटूक्ति :- जीवन के विविध पहलुओं का व्यंग्य पूर्ण चित्रण इन कवियों की प्रकृति है। लेकिन व्यंग्य के लिए आवश्यक संतुलन का अभाव भी इनमें पाया जाता है। अतः कहीं-कहीं यह व्यंग्योक्ति कटूक्ति ही लगती है।

11. असंबद्ध प्रलाप :- फ्रायड़ मनोविश्लेषण के उन्मुक्त साहचर्य की प्रणाली का अनुसरण करने के कारण इनकी कविताओं में असंबद्ध प्रलाप भी पाये जाते हैं।

12. विषयगत वैविध्य :- चींटी से लेकर हिमालय पर्यंत सभी विषय कविता की वस्तु के रूप में नयी कविता में स्वीकृत हैं। चाय की प्याली, सायरन, रेड़ियम की घड़ी, बाथरूम, गरम पकौड़ी, बाँस की टूटी हुई टट्टी आदि वस्तुओं पर भी इस कविता में चित्रण पाया जाता है।

13. शैली में नवीनता :- प्रतीक विधान में नवीनता, नवीन उपमानों का प्रयोग, नये शब्दों का उपयोग, काव्य बिंबों के माध्यम से ऐंद्रिय संवेदना, दमित वासनाओं और यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति नयी कविता में पायी जाती है। निष्कर्षतः कहा जाता है कि नयी कविता ने स्वाधीनता की प्राप्ति के उपरांत समाज में उपलब्ध मोहभंग की अवस्था या यथार्थ को सही अर्थ में अनुभव के स्तर पर भोगा और अभिव्यक्त किया है। अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माधुर, डॉ. रामविलास शर्मा, सर्वेश्वर दयाल सकसेना, केदारनाथ, अवधेश इत्यादि प्रयोगवादी कवियों में उल्लेखनीय हैं। स्थूलरूप से 'तार सप्तक' के सभी कवि, प्रयोगवाद व नयी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं।

15. 5 नयी कविता की पृष्ठभूमि :-

आधुनिक जीवन की विसंगतियों-विडम्बनाओं को बूझे हुए आज के व्यक्ति की अभावभरी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति के लिए मात्र प्रयोग ही पर्याप्त नहीं समझ पाये, वरन् उसके लिए कविता को ही नये विशेषण देना समीचीन समझा गया। वास्तव में नया या नव शब्द मात्र ऐसा कुछ नया अर्थ दे रहा है जो साहित्य की विभिन्न विधाओं के स्वरूप को स्पष्ट करनेवाले किसी तत्त्व का संकेत दे सके। वैसा देखा जाए तो प्रत्येक युग का साहित्य उसके पूर्ववर्ती युग के साहित्य से नया हो सकता है। परंतु जो कभी नया माना जाता है वहीं परवर्ती काल में पुराना पड़ जाता है। आधुनिकता या नयापन वास्तव में केवल समय-सीमा की दृष्टि से ही नहीं है अपितु यह एक युगचेतना है। उसमें भाषा, धर्म, वर्ग आदि सीमाओं से परे एक जीवन दृष्टि, नैतिक मूल्यों के संबंध में उदार चिंतन और राष्ट्रीयता से अधिक मानवीय हित-चिंतन

भी है। स्वतंत्रता के साथ देश का विभाजन हुआ। एक विशाल जन समुदाय अपने मूल निवासस्थान से उखडकर अन्यान्य स्थानों में आकर रहने को मजबूर हो गया। व्यक्ति के मन में वह भावुकता, राष्ट्रीयता की वैसी उमंग और पराधीनता से मुक्ति पाने का उल्लास नहीं रहा। एक और समस्या यह है कि शिक्षित नारी नौकरी करने को विवश है। बड़ी भीड़ में अकेलापन महसूस करता हुआ व्यक्ति अपने दिन का अधिकांश भाग कार्यालयों में, बसों में या सड़कों पर और होटल में अजनबी लोगों के बीच ही बिता देता है।

हिन्दी के अधुनातन साहित्य में अन्य विधाओं से भी पहले, कविता के साथ ही 'नया' विशेषण जुड़ा। किंतु निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि कब से इस नयी कविता का प्रादुर्भाव हुआ। वास्तव में प्रयोगवाद का ही विकसित रूप 'नयी कविता' है। किंतु इसका क्षेत्र और भी व्यापक है। नयी कविता के प्रमुख कवि हैं- गजानन माधव मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, कुँवरनाराण, सर्वेश्वर दयाल सकसेना, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी इत्यादि।

15. 6 अज्ञेय का परिचय :-

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का नाम प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध है। उनकी जीवनी तथा कृतित्व की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

7 मार्च- 1911 को फाल्गुन शुक्ल सप्तमि को देवरिया जिले के कसिया नामक गाँव में एक पुरातन खुदाई शिविर में जन्म।

1911-15 तक बचपन- लखनऊ में संस्कृत की मौखिक परंपरा से शिक्षा प्रारंभ।

1915-19- प्रारंभिक शिक्षा श्रीनगर एवं जम्मू में अंग्रेजी, फारसी तथा संस्कृत में।

1925 में मेट्रिक परीक्षा- पंजाब से उत्तीर्ण की।

1927 में इंटर मीड़िएट की पढ़ाई क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास से पूरी की।

1929 में बि.एस.सी फारमन कॉलेज, लाहौर से उत्तीर्ण की। अंग्रेजी साहित्य, बाइबिल ज्ञान और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अध्ययन के लिए स्वर्ण पदक प्राप्त। पहली कहानी 1924 में, पहली कविता 1927 में लिखी गयी।

1929 में अंग्रेजी विषय लेकर एम.ए. प्रथम वर्ष में दाखिल हुए।

1930 में भगतसिंह को छुडाने का प्रयत्न, भगवतीचरण वोहरा के एक दुर्घटना में निधन के कारण स्थगित। दिल्ली में हिमालयन टायलेट्स फैक्टरी में बम बनाने का कार्य प्रारंभ किया। 1930 में ही गिरफ्तार हो गये।

1931 से लेकर 1933 तक दिल्ली में इनके खिलाफ मुकदमा चला। 'चिंता' तथा 'शेखर एक जीवनी' जैसी रचनाएँ यहीं लिखी गयीं। 1933 में 'भग्नदूत' प्रकाशित।

1934 तक घर में नज़रबंद। घर लौटने पर छोटे भाई एवं माँ की मौत का दुख, पिता की सेवा निवृत्ति।

1936 में जीविका के लिए कर्मक्षेत्र में उतरे। सैनिक का संपादन, मेरठ में किसान आंदोलन में भाग लिया। इसी अवधि में रामविलास शर्मा, भरतभूषण अगर्वाल, प्रभाकर माचवे एवं नेमिचंद्र जैन आदि से परिचय।

1937 में पं. बनारसीदास के आग्रह पर 'विशाल भारत' पत्रिका में नौकरी के लिए गए। वहाँ डेढ़ वर्ष तक रहे। यहीं पर सुधींद्र दत्त, बुद्धदेव बसु, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि से परिचय हुआ।

विशाल भारत को वैयक्तिक कारणों से छोड़कर पिताजी के साथ 1939 में बड़ौदा गए।

1940 में सिविल पद्धति में विवाह-

1941 में 'शेखर एक जीवनी' का प्रकाशन।

1943-46 तक सेना में नौकरी। 1943 में 'तारसप्तक' का संपादन। 1946 में पिताजी की मौत।

1946 में विवाह का विच्छेद

1947 में देश की आज़ादी के बाद लाहौर, ढ़ाका तथा जम्मू की यात्राएँ।

1947-50 तक इलाहाबाद में 'प्रतीक' का प्रकाशन। इसी बीच अनेक कविताओं का प्रकाशन।

1950-55 तक दिल्ली में रेड़ियो में नौकरी। 'बावरा अहेरी' आदि का प्रकाशन।

1955-56 युनेस्को के आमंत्रण पर यूरोप का भ्रमण।

1957-58 एक अन्य निमंत्रण पर जापान का भ्रमण।

1958-60 तक दिल्ली में निवास। तथा '60 में युनेस्को भ्रमण।

1961-64 कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में भारतीय संस्कृति और साहित्य पढ़ाने के लिए नियुक्त।

1964 में भारत को लौट आए। इसी वर्ष 'आंगन के पार द्वार' के लिए साहित्य अकादमी का पुरस्कार।

1965- साप्ताहिक 'दिनमान' का प्रारंभ, पाँचवे अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता।

1966 में ग्रीस, मंगोलिया, रूस की यात्रा।

1967 में आस्ट्रेलिया की यात्रा।

1969 में पुनः कालिफोर्निया विश्वविद्यालय में साहित्य शास्त्र का अध्यापन।

1971-74 तक जोधपुर विश्वविद्यालय में निर्देशक के पद पर नियुक्त।

1972 में जापान यात्रा। इसी वर्ष जयप्रकाश नारायण के साथ अंग्रेजी पत्रिका 'एविरी मैन्स' का संपादन।

1976 में जर्मनी हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर रहे।

1977 में भारत की वापसी तथा 'नवभारत टाइम्स' दैनिक का संपादन।

1979 में 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त।

1982 में आग्रा विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर बनकर गए।

1983 में अंतर्राष्ट्रीय लेखक पुरस्कार की प्राप्ति।

1984 में वत्सल-निधि द्वारा पाँचवाँ लेखक शिविर जबलपुर में आयोजित तथा पुनः यूरोप की यात्रा।

अज्ञेय की काव्य-कृतियों का विवरण इस प्रकार है- 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम्', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इंद्रधनुष रौंदे हुए', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आँगन के पार द्वार', 'सुनहले शैवाल', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर मुद्रा', 'पहले मैं सन्नाटा बुनता था', 'महावृक्ष के नीचे', 'नदी के बाँक पर', 'प्रिजन डेस एंड अदर पोएम्स'।

अज्ञेय की कहानियों के कई संग्रह निकले जो इस प्रकार हैं - 'विपथगा', 'परंपरा', 'कोठरी की बात', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप', 'अमर वल्लर तथा अन्य कहानियाँ', 'कड़ियाँ एवं अन्य कहानियाँ', 'अछूते फूल और अन्य कहानियाँ', 'जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ', 'छोड़ा हुआ रास्ता', तथा 'लौटती पगडंडियाँ'। अज्ञेय के उपन्यासों का विवरण इस प्रकार दिया जा सकता है- 'शेखर एक जीवन- प्रथम एवं द्वितीय भाग', 'नदी के द्वीप', तथा 'अपने-अपने अजनबी'। इनके अलावा अज्ञेय ने 'उत्तर प्रियदर्शी' नामक एक नाटक की भी रचना की।

अज्ञेय ने अनेक निबंध के संग्रह भी निकाले जो इस प्रकार हैं-'त्रिशंकु', 'सब रंग', 'आत्मनेपद', 'हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य', 'सब रग और कुछ रंग', 'आलवाल', 'लिखि कागद कोरे', 'भवन्ती', 'अन्तरा', 'अद्यतन', 'जोग लिखी', 'संवत्सर' आदि।

15. 7 काव्यगत विशेषताएँ :-

1. अज्ञेय की कविताओं में संस्कृति, स्वतंत्रता, दुख, स्वर्ग-नरक आदि के नवीन एवं आधुनिक व्याख्यान मिलते हैं।

2. आधुनिक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय ने अपनी कविताओं में स्वप्नों का प्रयोग लक्ष्य और लक्षण दोनों रूपों में किया है।

3. अज्ञेय अपने सृजनपक्ष में पुरानी विषय वस्तुओं से प्रेम, प्रकृति, दर्शन और मानवतावाद आदि को आधुनिकयुगीन संसार के व्यावहारिक संस्कार में देखते हैं।

4. प्रतीक विधान, बिंब विधान, अलंकरण आदि में प्रयोगशीलता तथा बौद्धिकता का निर्वाह आदि अज्ञेय की काव्यशैली की विशेषताएँ हैं।

5. अज्ञेय वस्तुतः एक अंतर्मुखी कलाकार हैं।

15. 8 बोध प्रश्न :-

1. प्रयोगवाद के उद्‌भव की पृष्ठभूमि की चर्चा कीजिए।
2. 'प्रगतिवाद के विरोध के रूप में प्रयोगवाद का आविर्भाव हुआ'- यह कथन कहाँ तक संगत है?
3. प्रयोगवाद एवं नयी कविता की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
4. प्रयोगवाद की प्रवृत्तियों का विस्तार से विवेचन कीजिए।
5. प्रयोगवाद के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त रूप से परिचय दीजिए।
6. प्रयोगवाद के प्रतिनिधि कवि अज्ञेय के जीवन में घटित प्रमुख घटनाओं का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
7. अज्ञेय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।

15. 9 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. अज्ञेय की प्रतिनिधि कविताएँ एवं जीवन-परिचय - संपादकः विद्यानिवास मिश्र
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
3. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास - बाबू गुलाबराय
4. नयी कविता और अस्तित्ववाद - आचार्य नामवरसिंह
5. प्रयोगवाद के नये आयाम - जगन्नाथ तिवारी

Dr. P. Neeraja,
Reader,
Department of Hindi,
J.M.J. College (Autonomous),
Tenali.

पाठ - 16.1

साहित्य और समाज

इकाई की रूपरेखा :

16.1.1 उद्देश्य

16.1.2 प्रस्तावना

16.1.3 साहित्य की परिभाषाएँ

16.1.4 समाज और साहित्य का संबंध

16.1.5 साहित्य पर समाज का प्रभाव

16.1.6 समाज पर साहित्य का प्रभाव

16.1.7 बोध प्रश्न

16.1.8 सहायक ग्रंथ-सूची

16.1.1 उद्देश्य :-

इस इकाई के द्वारा हम

1. साहित्य के आविर्भाव के बारे में जानेंगे।
2. साहित्य की परिभाषाओं के बारे में जानेंगे।
3. साहित्य और समाज के संबंध का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
4. साहित्य पर समाज के प्रभाव के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
5. समाज पर साहित्य के प्रभाव के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

16.1.2 प्रस्तावना :-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसमें अपने विचारों का आदान-प्रदान करने की अद्‌भुत शक्ति है। वह अपने मन में उठनेवाले विचारों को भाषा के द्वारा व्यक्त करता है और लिपिबद्ध करता है। मनुष्य सुलभ सौंदर्य आराधना के कारण वह अपने विचारों को सुंदर, सरस और प्रभावशाली ढ़ंग से प्रकट करता है। इस प्रकार लिपिबद्ध किये गये विचारों का संकलित रूप ही साहित्य है। समाज में रहते हुए ही कोई आदमी साहित्य की सर्जना कर सकता है। अतः समाज का प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना यह सर्जना संभव नहीं होती। इतिहास साक्षी है कि समाज में साहित्य अनेक परिवर्तनों का कारण बन सकता है। इस प्रकार साहित्य और समाज परस्पराश्रित हैं।

16.1.3 साहित्य की परिभाषाएँ :-

अनेकानेक विद्वानों ने साहित्य की विविध परिभाषाएँ दीं। आचार्य राजेश्वर का मत है-'शब्दार्थो सहितो काव्यम्' अर्थात् शब्द और अर्थ सहित जो उपस्थित है उसे 'काव्य' कहा जाता है। द्विवेदी ने ज्ञानराशि के संचित कोश को साहित्य का नाम दिया। उन्होंने यह भी कहा कि साहित्य समाज का दर्पण है। किसी विद्वान ने साहित्य को जीवन की अभिव्यक्ति माना तो किसी अन्य आचार्य ने साहित्य को जीवन की समीक्षा।

साहित्य की व्युत्पत्ति मुख्यतः 'स+हित' के रूप में ली जाती है। उसका अर्थ है 'हित के साथ।' अर्थात् हित की भावना जिसमें होती है वही साहित्य है। यह हित समाज का, अपने देश-जाति का तथा संपूर्ण सृष्टि का भी हो सकता है। साहित्य की परिभाषा 'सहितस्य भावः साहित्यम्' भी मानी जाती है। 'सहित' का अर्थ मिलन है। अर्थात् कलाओं, विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान के साधनों का मिलन।

"साहित्य शब्द से 'मिलने' के भाव का बोध होता है। वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रंथ-ग्रंथ का मिलन नहीं अपितु मानव के साथ मानव का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यंत अंतरंग मिलन भी है जो कि साहित्य के अतिरिक्त किसी अन्य विधा से मिलना असंभव है" - रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

साहित्यकार साधारण जनता से प्रतिभासंपन्न होता है। वह भूतकाल की घटनाओं से शिक्षा पाता है, वर्तमान का अवलोकन करता है तथा भविष्य के लिए मार्गदर्शन करता है। वह अपनी प्रतिभा के सहारे वर्तमान के लिए आवश्यक साहित्य का निर्माण करता है।

16.1.4 समाज और साहित्य का संबंध :-

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में साहित्य समाज का दर्पण है। समाज का निर्माण पहले होता है। समाज के निर्मित होने के बाद ही साहित्य का निर्माण संभव है। साहित्यकार अपने समाज में घटित घटनाओं से अनुभव पाता है, समाज की समस्याओं का चित्रण करता है और उनके समाधान भी समाज के सामने रखता है। वह समाज की आवश्यकता के अनुरूप साहित्य का सृजन करता है। समाज का प्रभाव पहले साहित्य पर पड़ता है फिर समाज स्वयं साहित्य से प्रभावित होता है। इस प्रकार समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध है।

साहित्य और समाज के संबंध में डॉ. श्यामसुंदर दास ने कहा "सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भावसामग्री निकालकर समाज को सौंपता है उसके संचित भण्डार का नाम साहित्य है।" अतः साहित्य समाज का प्रतिरूप है और प्रतिबिम्ब है। समाज का वास्तविक रूप साहित्य में मिलता है। प्रत्येक युग और समाज के विविध रूप, उस देश के तत्कालीन साहित्य में देखे जा सकते हैं। आदिकवि वाल्मीकि ने भी आदि काव्य रामायण में अपने समय की कुटुम्ब व्यवस्था का आदर्शरूप चित्रित किया। शेक्सपीयर के नाटकों में रानी विक्टोरिया के समय के समाज का वर्णन मिलता है। प्रेमचन्द का उपन्यास-साहित्य उस समय के भारत की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब है। किसी युग के समाज की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण तत्कालीन साहित्य में किया जाता है। मनुष्य, जाति, समाज और देश की उन्नति में साहित्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

साहित्य में समाज को परिवर्तित करने की अद्‌भुत क्षमता है। माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में "साहित्यकार के हाथ में बांसुरी रहती है। उससे वह मधुर स्वर प्रवाहित करता है तो आवश्यकता पड़ने पर उसीसे युद्ध का डंका भी बजाता है।"

16.1.5 साहित्य पर समाज का प्रभाव :-

प्रत्येक युग में समाज साहित्य को प्रभावित करता है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है, जिस युग में सांस लेता है उस समाज की परंपराओं को आधार बनाकर साहित्य की सर्जना करता है। साहित्य पर समाज के इस जबरदस्त प्रभाव का अर्थ यह कदापि नहीं लिया जाना चाहिए कि वह प्रभाव समाज के अनुकूल हो। वह सामाजिक मान्यताओं, विश्वासों और भावनाओं के प्रतिकूल भी हो सकता है। कबीर ने अपने युग में प्रचलित विश्वासों, धारणाओं तथा रूढ़ियों पर जो करारी चोट की, उससे सब परिचित हैं। साहित्यकार अलौकिक शक्तिसंपन्न होता है। उसकी इस सामर्थ्य के कारण ही कहा गया कि 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि'। वह अपने साहित्य में समाज की दशा का वर्णन करता है। लेकिन वह निर्भीक होकर अपने साहित्य में कल्पना जोड़कर समाज को सुधारने का प्रयास करता है। इस तरह समाज का साहित्य पर अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभाव अवश्य पड़ता है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल लड़ाई-संघर्षों का समय था। नारी को लेकर भयंकर युद्ध होते थे। कवि अपने आश्रयदाताओं की वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते थे। जैसा समाज है, वैसे ही साहित्य का निर्माण होता है। चन्दबरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' इसका सुंदर उदाहरण है। भक्तिकाल में कवि, जनता के मन में व्याप्त निराशा, दीनता और हीनता को भगाकर उसके मन में आशा का संचार करने में सफल हुए। भक्त कवियों ने भक्ति और प्रेम के बल पर एक ऐसा रसायन जनता को प्रदान किया जिसका पान करके जनता तन्मय हो गयी। भक्तिकाल में चारों ओर भक्ति का वातावरण था। इसलिए सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि कवियों की कृतियों में इस प्रवृत्ति की प्रधानता दिखाई पड़ती है।

रीतिकाल के साहित्य का अध्ययन करने से उस समय की सामाजिक मनोभावनाओं का परिचय मिलता है। समाज विलासिता में मग्न था। राधाकृष्ण के नाम पर कवियों ने अपनी विलास भावना को प्रदर्शित किया। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय समाज का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर देखा जाता है। कला का जो विकास उस युग के समाज में हो रहा था उसका प्रभाव बिहारी आदि कवियों की वाणी पर स्पष्ट दिखाई देता है। आधुनिक काल में सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए। भारतीय समाज में पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव प्रारंभ हो गया। शासन के प्रति विद्रोह, आज़ादी की माँग होने लगी। जागरण होने लगा। इस समय के साहित्यकारों ने देश की दासता, दरिद्रता का वर्णन किया जिससे स्वतंत्रता आंदोलन को बल मिला। वर्तमान समाज में राजनीति का स्वरूप बदल गया। समाज में अनैतिकता बढ़ रही है। असुरक्षा की भावना भी बढ़ गयी है। दहेज-प्रथा, भ्रष्टाचार, बेकारी की समस्या, बढ़ती हुई जनसंख्या- इन सभी समस्याओं का चित्रण वर्तमान साहित्य में हो रहा है।

16.1.6 समाज पर साहित्य का प्रभाव :-

साहित्य समाज का परिष्कार करता है। जीवन का संस्कार करता है। संपूर्ण समाज साहित्य से प्रभावित होता है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप-तलवार और बम के गोलों में भी पायी नहीं जाती।" वैदिक काल के कर्मकाण्ड की गूढ़ता, जाति-पाँति की कठोरता आदि सामाजिक दुराचारों के विरुद्ध बौद्ध धर्म का अहिंसा सिद्धांत तत्कालीन साहित्य के कारण लोकप्रिय बना। रूसो और वाल्टेयर के लेखों के कारण फ्रांस में क्रान्ति हुई। मार्क्स और लेनिन के साहित्य ने रूस में क्रान्ति को जन्म दिया। इन लोगों के विचार समाज को साहित्य के माध्यम से ही मिले।

कबीरदास ने अपनी वाणी के द्वारा समाज में व्याप्त बाह्याडंबरों का विरोध करके निम्न जाति के लोगों को आत्मबल प्रदान किया। तुलसी ने अपनी कृति रामचरितमानस के द्वारा राम को कर्तव्यपरायण राजा तथा मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके काव्य ने सीता को आदर्श पत्नी के रूप में तथा लक्ष्मण और भरत को आदर्श भाइयों के रूप में समाज के सामने रखा। हनुमान अद्वितीय भक्त और सेवक के रूप में स्थापित हुए। बिहारी के एक ही दोहे ने विलासिता में डूबे राजा जयसिंह को कर्तव्य की प्रेरणा दी। तुलसी ने 'सगुनहि-अगुनहि नहिं कछु भेदा' कहकर हिन्दू और मुसलमानों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। सूफी होते हुए भी जायसी ने हिन्दू राजाओं के प्रेमाख्यानों के माध्यम से हिन्दू-मुसलमान एकता पर बल दिया। कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों के मध्य एकता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया। कबीर ने दोनों को फटकारते हुए कहा-

"हिन्दू कह मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाना।
आपस में दोऊ लरि लरि मुए मरम काहे जाना।।"

भक्तिकालीन हिन्दी कवियों ने उस समय के समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष, सांप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, निराशा को ध्यान से देखा और अपनी काव्य-कृतियों के द्वारा इन सभी दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास किया। समाज पर इनके साहित्य का प्रभाव अनंतकाल तक रहेगा।

मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर आदि ने अपनी रचनाओं के द्वारा जनता को जागृत किया। मैथिलीशरण गुप्त की कृति 'भारत-भारती' सौ-सौ नेताओं का काम कर गयी। अंग्रेजों ने उसे अपने लिए घातक समझकर उसकी प्रतियों को जब्त कर लिया। माखनलाल चतुर्वेदी की निम्न लिखित पंक्तियों ने कितने ही लोगों को मातृभूमि के लिए शीश चढ़ाने की प्रेरणा दी-

"मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने-
जिस पथ जावें वीर अनेक।।"

इस प्रकार समाज की सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, परंपरा आदि का निर्देशक साहित्य ही है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय साहित्य के द्वारा ही देशभक्ति का संचार हुआ। प्रेमचन्द ने गाँव की गरीबी, पिछड़ेपन और लाचारी का वर्णन किया। देश की वर्तमान समस्याओं को दूर करने में साहित्य सहायता दे रहा है।

इससे स्पष्ट है कि साहित्य और समाज का पारस्परिक संबंध घनिष्ठ है। समाज साहित्य से प्रभावित होता है, और साहित्य समाज से। यह ठीक वृक्ष और बीज का- सा प्रश्न है। बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है और वृक्ष बीज से। वृक्ष का विकास बीज पर निर्भर होता है और वृक्ष के आधार पर बीज का भविष्य निर्धारित होता है। इसी प्रकार साहित्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं। एक के विकास या ह्रास का दूसरे के विकास या ह्रास पर प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है।

कवि समाज की व्यवस्था, वातावरण, रीति-नीति, धर्म-कर्म, शिष्टाचार आदि से साहित्य के उपकरण चुनता है। इस प्रकार साहित्यकार समाज का प्रतिनिधि होता है। वह अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं का वर्णन करके समाधान भी प्रस्तुत करता है। साहित्यकार समाज का चित्रण एक ही रूप में नहीं करता। कभी समाज का यथावत् चित्रण करता है तो कभी दोषों को छिपाकर गुणों का गान करने लगता है। कुछ साहित्यकार समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। इससे समाज में शिव के साथ-साथ सुंदर की भी स्थापना होगी। साहित्य समाज में शुभ संस्कारों का संचार करता है। समाज के विकास के लिए साहित्य ही मार्गदर्शन करता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए किसी विद्वान ने कहा-

"अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है!"

16.1.8 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. आधुनिक हिन्दी निबंध – भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
2. निबंध सागर – प्रो. विजय कुमार, प्रो. कृष्णदेव शर्मा
3. आधुनिक हिन्दी निबंध – ओ.पि.अग्रवाल
4. अभिनव हिन्दी निबंध – डॉ. मानसिंह वर्मा
5. आधुनिक हिन्दी निबंध – डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित

Smt. M.P. Vardhani,
Lecturer,
Department of Hindi,
Maris Stella College (Autonomous),
Vijayawada.

पाठ - 16.2

विद्यार्थी और अनुशासन

इकाई की रूपरेखा :-

16.2.1 उद्देश्य
16.2.2 प्रस्तावना
16.2.3 विद्यार्थी का कर्तव्य
16.2.4 अनुशासन की रूपरेखा
16.2.5 अनुशासन के प्रकार
16.2.6 अनुशासन से लाभ
16.2.7 अनुशासनहीनता के कारण
16.2.8 उपसंहार
16.2.9 सहायक ग्रंथ-सूची

16.2.1 उद्देश्य :-

1. इस इकाई में आप आदर्श विद्यार्थी के बारे में जानेंगे।
2. विद्यार्थी के कर्तव्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
3. अनुशासन की रूपरेखा तथा अनुशासन के महत्त्व के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।
4. अनुशासनहीनता के कारणों के बारे में जानेंगे।
5. अपने जीवन को व्यवस्थित और अनुशासित बनाने की कोशिश करेंगे।

16.2.2 प्रस्तावना :-

जीवन में अनुशासन का अत्यंत महत्त्व है। यदि अनुशासन न हो तो जीवन में कोई भी कार्य ठीक तरह से संपन्न नहीं होता। प्रकृति का हर एक कार्य अनुशासन में बंधा है। सूर्य पूरब में उदित होता है और पश्चिम में डूबता है। नदियाँ, समुद्र, ग्रह, सारा ब्रह्माण्ड नियंत्रित तथा अनुशासनबद्ध हैं। प्रकृति में जब कभी अनुशासन का भंग होता है, तो भयानक भूचाल, तूफान, बाढ़ें, अकाल आदि अनेक रूपों में विनाश उत्पन्न करते हैं। ग्रह, नक्षत्रों का अनुशासित संतुलन नष्ट हो जाता है तो पिण्ड-पिण्ड से टकराता है, विनाश हो जाता है। व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन के भंग होने से कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। मनुष्य जीवन में विद्यार्थी काल निर्माण का काल है। इसी काल में विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, चारित्रिक विकास होता है। अतः इस 'निर्माण काल' में अनुशासन का और भी महत्त्व है। प्रस्तुत इकाई में विद्यार्थी-जीवन में अनुशासन के महत्त्व के बारे में जानेंगे।

16.2.3 विद्यार्थी का कर्तव्य :-

विद्यार्थी का अर्थ है विद्या का अर्जन करनेवाला। पाँच वर्ष तक बालक अबोध रहता है। किन्तु पाँच वर्ष की आयु से वह समझना आरंभ करता है। लगभग 5–25 वर्ष तक का समय अध्ययन का समय है। मनुष्य-जीवन में इस विद्यार्थी जीवन का बड़ा महत्त्व है। जीवन की सफलता इसी पर निर्भर करती है।

विद्यार्थी का मुख्य कर्तव्य है- अध्ययन। उसे दृढ़चित्त होकर, एकाग्र भाव से पढ़ाई करनी चाहिए। विद्वानों ने विद्यार्थी के लक्षणों के बारे में कहा-

"काक चेष्टा, बको ध्यानम्, श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणम्।।"

ज्ञान की उत्कंठा, एकाग्र चिन्तन-मनन, स्वल्प निद्रा, आवश्यकतानुसार सामान्य भोजन, गृह जंजाल से दूर रहना- ये पाँच विद्यार्थी के लक्षण कहलाए। विद्यार्थी को ये लक्षण अपनाकर ज्ञानार्जन करना चाहिए। विद्यार्थी को जीवन में हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह ज्ञान दो प्रकार से हासिल किया जा सकता है- आसपास के वातावरण के अध्ययन और अनुकरण से तथा पुस्तकों के अध्ययन और चिन्तन-मनन से। आदर्श विद्यार्थी को भौतिक, व्यावहारिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि हर प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए कहा गया 'उद्यमेन हि लभते ज्ञानम्'। अर्थात् मेहनती विद्यार्थी ही ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। केवल इच्छामात्र से वह सफलता को प्राप्त नहीं हो सकता।

विद्यार्थी जीवन में अभ्यास और परिश्रम का महत्त्व अधिक है। इन गुणों के कारण ही कार्य संपन्न होते हैं। 'करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'- बार बार अभ्यास करने से मूर्ख भी बुद्धिमान बन जाता है। विद्यार्थी में सीखने की गहरी इच्छा, ज्ञान पाने की ललक होनी चाहिए। जो विद्यार्थी सुख-सुविधाओं के चक्कर में पड़ता है, उसके लिए ज्ञानार्जन करना कठिन हो जाता है। "सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम्"- सुख चाहनेवाले को विद्या कहाँ, विद्या चाहनेवालों सुख कहाँ!

स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन रहता है। विद्यार्थी को अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। खेलों में भाग लेने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। तबियत ठीक रहने से पठन-पाठन का कार्य आसान होता है।

विद्यार्थी को सदैव अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहना चाहिए। गुरुजनों की आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। उसे मन को संयमी बनाये रखना तथा आलस्य छोड़ देना होगा। उसमें आत्मविश्वास, आत्म निर्भरता आदि गुणों का समावेश हो। विद्यार्थी के लिए श्रद्धा, भक्ति आदि की भी आवश्यकता है। परन्तु विद्यार्थी का मन सहज ही चंचल और क्रीड़ाप्रिय होता है। अतः अन्य विषयों की ओर खींचा जाना भी उसके लिए इस उम्र में सहज है। अनुशासन हीनता ज्ञानार्जन में बाधा डालती है और इससे उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। अर्थात् विद्यार्थी का कोई भी कार्य बिना अनुशासन के पूरा नहीं होता। ऐसी दशा में अनुशासन वह अस्त्र है जो नियमानुसार विद्या ग्रहण करने में मौका देता है। अतः विद्यार्थी को ज्ञानार्जन करने के लिए अपने आप को 'अनुशासन' रूपी जंजीर के बंधन में बंधित रखना अनिवार्य है।

16.2.4 अनुशासन की रूपरेखा :-

'अनुशासन' शब्द की व्युत्पत्ति अनुअशासन से हुई। 'अनु' एक उपसर्ग है जिसका सामान्य अर्थ होता है- बाद में, पश्चात् आदि। इसी प्रकार 'शासन' का अर्थ है नियम, विधि, कानून, नियंत्रण, संयम आदि। 'अनुशासन' शब्द का सामान्य अर्थ हो जाता है जो व्यक्ति जहाँ है, जिस स्थिति में है, जिस देश-काल के वातावरण और समाज में रहता है उसके सामान्य मानवीय नियमों का पालन करना, लिखित-अलिखित नियमों के अनुसार चलना। अनुशासन का एक और अर्थ है- शासन के अनुसार चलना। शासन के लिए दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। अपने आप नियम बनाकर उनका पालन किया जा सकता है। व्यक्ति, समाज सभी को अनुशासन की आवश्यकता है। जीवन को आदर्श तरीके से जीने के लिए अनुशासन में रहना चाहिए। अनुशासन के बिना मनुष्य पशु बन जाता है। मानव के जीवन में विद्यार्थी का जीवन अनुशासन के बिना सफल नहीं होता। क्योंकि शिक्षा प्राप्त करने के लिए चरित्र निर्माण की आवश्यकता होती है और वह चरित्र निर्माण, अनुशासन के अभाव में ठीक से नहीं हो पाता।

बालकों को घरों और विद्यालयों में बचपन से ही अनुशासन सिखाया जाता है। विद्यालय में जो गुण सिखाये जाते हैं, वे बड़े होने पर भी साथ नहीं छोड़ते। यही कारण है कि सब शिक्षाशास्त्री विद्यालयों में अनुशासन-प्रियता पैदा करने पर ज़ोर देते हैं।

16.2.5 अनुशासन के प्रकार :-

यह अनुशासन दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो विशेष परिस्थितियों, आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखकर प्रशासन और संविधान सभाओं में कानून के रूप में बनाया जाता है। दूसरा - जो व्यावहारिक और सामाजिक जीवन के ढ़ाँचे में प्रत्यक्ष व्यवहारों की परंपराओं के द्वारा स्वतः निर्धारित होता हो। इसका तो कोई पारिभाषिक या लिखित रूप नहीं होता। बच्चा या व्यक्ति स्वयं, अपने बड़ों के व्यवहारों को देखकर इस प्रकार के अनुशासन के नियम सीखता है। संविधान या सरकार द्वारा निर्मित अनुशासन के नियमों का व्यक्ति पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना स्वतः निर्मित अनुशासन के नियमों का। साधारणतया अनुशासन के नाम पर जिन नियमों का उल्लेख करते हैं वे दूसरी कोटि के अंतर्गत आते हैं। सामाजिक व्यवहार में भी इसी अनुशासन के नियमों का महत्त्व अधिक होता है।

16.2.6 अनुशासन से लाभ :-

जीवन का वास्तविक निर्माण विद्यार्थी-जीवन में ही होता है। इस अवस्था में मन में संस्कार ग्रहण करने की क्षमता अधिक होती है। साथ ही भावुकता होती है। दूरदर्शिता का अभाव रहता है। ऐसी दशा में अनुशासन उसे ठीक मार्ग पर लाने में सहायक होगा। उसे अनेक बातों को अनुशासन के कारण मानना पड़ता है, जिनका उसके मन के अनुसार कोई लाभ दिखायी नहीं देता। लेकिन भविष्य में इससे उसे लाभ जरूर मिलेगा। अनुशासित विद्यार्थी नियमों पर चलता है। काम व्यवस्था से करता है। अनुशासित होकर काम करते समय उसे परेशानी नहीं होती, ग़लती होने का डर भी नहीं रहता। अनुशासन के कारण बच्चा अपने मन को अध्ययन में लगाने का अभ्यस्त होता है। अनुशासित विद्यार्थी स्वस्थ, सभ्य, सुशील और विनम्र बनता है। अनुशासन का पालन करके वह स्वयं प्रसन्न रहता है और दूसरों को भी प्रसन्न रखता है।

जो विद्यार्थी अनुशासन का पालन नहीं करता, वह अपने मन की चंचलता को दबाने में असफल रह जाता है। इसी कारण वह अध्ययन सुचारु रूप से नहीं कर पाता। उसका मन पढ़ाई में बिलकुल नहीं लगता बल्कि दूसरे विषयों में घूमता रहता है। फलतः विषय का पूर्ण ज्ञान वह प्राप्त नहीं कर सकता। धीरे-धीरे वह पढ़ाई से दूर जाने लगेगा। ऐसी दशा में अनुशासन ही विद्यार्थी का साथ देता है। अनुशासन का हाथ पकड़कर वह पाठ्य-विषयों को ग्रहण कर सकता है, पठन-पाठन में आनंद पाता है और परीक्षा में सफलता भी प्राप्त करता है। अनुशासन के बिना यह कार्य कठिन है। अनुशासन से दैनिक जीवन में व्यवस्था आती है, नियमित रूप से कार्य करने की क्षमता का विकास होता है। अनुशासन के पालन से सभी समस्याओं का समाधान हो सकता है। नहीं तो समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रहेंगी चाहे कितनी सरकारें क्यों न बदल जाएँ, कितनी पीढ़ियाँ क्यों न बीत जाएँ। विद्यार्थी स्वप्रेरणा से ही अनुशासनप्रिय बनेगा।

वर्तमान समाज में ऐसा कोई बुरा कार्य नहीं जिसमें विद्यार्थी न हो। दंगा-फसाद, मार-पिटाई, तोड-फोड, हिंसा, महिलाओं से अभद्र व्यवहार आदि विद्यार्थी के लिए साधारण कार्य हैं। अनुशासनहीनता के कारण देश का भावी नागरिक विद्यार्थी, विवेकहीन होकर अपना बहुमूल्य समय इस तरह के कार्यों में बरबाद कर रहा है। वास्तव में जीवन के हर क्षेत्र में अनुशासन अत्यंत आवश्यक है। अनुशासित बच्चा प्रगति-पथ पर अग्रसर होता है। कई सालों तक विद्यालय में नियमों का पालन करने के कारण, अनुशासन उसके दैनिक कार्य-कलाप में शामिल हो जाता है। अनुशासन के कारण बच्चा आत्मनिर्भर बनता है। यही आत्मनिर्भरता अनेकानेक अच्छे गुणों की नींव है। इस तरह विद्यार्थी को अनुशासन से अनेकानेक लाभ होते हैं। यह ठीक ही कहा गया-'अनुशासन ही जीवन है।'

16.2.7 अनुशासनहीनता के कारण :-

विद्यार्थी के अनुशासनहीन होने के कुछ कारण हैं। उनमें पहला कारण है- मन की चंचलता। विद्यालय में रहते समय विद्यार्थी को बहुत सावधान रहना चाहिए। विशेषकर समाचार-क्रान्ति के इस युग में छात्रों का दिमाग विविध रूपों से प्रदूषित हो रहा है। इसके लिए सामाजिक वातावरण भी दोषी है। विद्यार्थी आजकल अहंभावी बनता जा रहा है। वास्तव में अहं व्यक्तित्व का एक अंग है। लेकिन वह सीमा के अंदर ही हो। विद्यार्थी को प्रशंसा, सम्मान, प्रेम आदि नहीं मिलते तो वह विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाएगा।

लोग स्वयं अनुशासन का पालन न करके दूसरों से पालन करवाना चाहते हैं। सभी यही चाहते हैं कि उनके पास स्वेच्छाचारिता का अधिकार सुरक्षित रहे किन्तु बाकी सभी अनुशासन में बंधित हो जाएँ! यही अनुशासनहीनता का मुख्य कारण है। वर्तमान समाज में माता-पिता को यह देखने की फुरसत नहीं है कि उनके बच्चे क्या कर रहे हैं। सही निगरानी, प्रेम, ममता, स्नेह आदि न मिलने के कारण बच्चा अनुशासनहीन बन जाता है। विद्यार्थी को अनुशासनप्रिय बनाने के लिए माता-पिता की ओर से सुरक्षा और मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

पहले समाज के सभी व्यक्ति अपनी कमाई पवित्र रखने के लिए पवित्रता, नैतिकता की ओर ध्यान देते थे। लेकिन आज न साधनों की पवित्रता है और न अर्जन की। यह कहावत सत्य है कि "जैसा खाता अन्न वैसा होता मन"। समाज में कुछ लोग अनुशासन को परतंत्रता मानते हैं। उनके लिए नियमों का पालन करना शरम की बात है। लेकिन नियमों का पालन नहीं करना ही उच्छृंखलता है न कि स्वतंत्रता। कुछ विद्यार्थी चंद राजनैतिक नेताओं के चक्कर में पड़कर तोड़-फोड़ करने के लिए तैयार हैं। इसका कारण है- शिक्षा के पवित्र क्षेत्र में राजनीति का घुस आना।

आजकल विद्यार्थियों में अनुशासन हीनता चरम सीमा पर है। विद्यार्थी माता-पिता की बात नहीं मानता। गुरुजनों का आदर नहीं करता। विद्यालय या कॉलेज के नियमों का पालन नहीं करता। जिस विद्यार्थी ने अनुशासित होकर, स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर देश को आजाद बनाया, वही विद्यार्थी आज प्रथभ्रष्ट क्यों हो गया, यह सोचने की बात है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश में नैतिकता का स्तर गिर गया। वर्तमान युग में शासक वर्ग कुर्सी की रक्षा में, अन्य राजनीतिक दल शासक वर्ग को पटककर स्वयं कुर्सी पाने की घात में निरत हैं। 'पाने-बचाने' की यह राजनीति, अनुशासन की ओर ध्यान नहीं दे रही है। इससे नई पीढ़ी को सीखने के लिए कुछ नहीं है। व्यक्ति की सफलता के लिए विनय, धैर्य, वीरता, सत्यपालन, मधुर भाषण, उदारता, कर्तव्यपालन आदि गुणों की आवश्यकता है। उसी तरह राष्ट्र की सफलता के लिए अनुशासन अत्यंत आवश्यक है।

16.2.8 उपसंहार :-

विद्यार्थी राष्ट्र के कर्णधार हैं। भावी नागरिक हैं। विद्यार्थी जीवन पर ही राष्ट्र का भविष्य निर्भर है। विद्यार्थी जीवन के लिए समाज ने जो नियम बनाये वे वर्षों के अनुभव के बाद ही बनाये। इनका पालन करने से विद्यार्थी का समुचित विकास होता है। छात्रों को यह जानना चाहिए कि आदेश देनेवाला व्यक्ति, आदेश दिये गये व्यक्ति का हित चाहता है। इसलिए नियमों का पालन करना अर्थात् अनुशासन को आचरण में लाना छात्रों के लिए मंगलकारी है।

16.2.9 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. आधुनिक हिन्दी निबन्ध - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
2. श्रेष्ठ आधुनिक निबन्ध - तिलकराज शर्मा
3. सर्वोत्तम हिन्दी निबन्ध - साहनी एवं सिंह
4. सवा सौ श्रेष्ठ निबन्ध - तिलकराज शर्मा
5. अशोक निबन्ध सागर - प्रो.विजय कुमार तथा प्रो.कृष्णेदव शर्मा
6. आधुनिक हिन्दी निबन्ध - ओ. पि. अग्रवाल

Smt. M.P.Vardhani,
Lecturer,
Department of Hindi,
Maris Stella College (Autonomous),
Vijayawada

पाठ - 17.1

आज की शिक्षा प्रणाली

इकाई की रूप रेखा:-

17.1. 1 उद्देश्य
17.1. 2 प्रस्तावना
17.1. 3 वर्तमान शिक्षा प्रणाली का रूप
17.1. 4 वर्तमान शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य
17.1. 5 व्यावहारिकता का अभाव
17.1. 6 एकाँगीपन
17.1. 7 वैज्ञानिकता
17.1. 8 प्राचीन शिक्षा प्रणाली से तुलना
17.1. 9 उपसंहार
17.1.10 सहायक ग्रन्थ-सूची

17.1.1 उद्देश्य :-

मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा ही मानव को यथार्थ मानव बनाती है। शिक्षा के बिना मानव का जीवन पशुतुल्य है। मनुष्य का स्वभाव है कि ज्यों-ज्यों उसकी आयु बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों वह अनुकरण द्वारा अनेक बातें सीखता जाता है। इस इकाई में हम आज की शिक्षा पणाली की जानकारी प्राप्त कर लेंगे। वर्तमान शिक्षा प्रणाली का रूप और उसके लक्ष्यों पर भी विचार करेंगे। आज की शिक्षा प्रणाली में जो तृटियाँ विद्यमान हैं, उनके बारे में भी जानकारी प्राप्त कर लेंगे। यही नहीं, आज की शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीन शिक्षा प्रणाली से करके वर्तमान स्थिति में शिक्षा के स्वरूप की जानकारी भी प्राप्त कर लेंगे।

17.1.2 प्रस्तावना :-

शिक्षा ही किसी राष्ट्र की उन्नति तथा समृद्धि की आधार-शिला है। इसी के द्वारा राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण होता है। कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में -

"सबसे प्रथम कर्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में।
शिक्षा बिना ही पड़ रहे हैं आज हम सब क्लेश में।"

लेकिन अब प्रश्न उपस्थित है कि किस प्रकार की शिक्षा का भारत की धरती पर प्रसार हो। भारत में अब तक वही शिक्षा पद्धति चालू है जिसकी नींव अंग्रेजों के शासन काल में लार्ड मैकाले ने डाली थी। मैकाले का मुख्य लक्ष्य ऐसे बाबू तैयार करना था जो देखने में तो भारतवासी लगें लेकिन उनके दिल तथा दिमाग अंग्रेजियत में पूरी तरह रंगे हों। उसकी यह नीति पूरी तरह से सफल रही।

आज़ादी प्राप्त करने के पश्चात् भारत की शिक्षा पद्धति में सुधार लाने के प्रयास किये गये। सन् 1949 में राधाकृष्णन आयोग तथा 1968 में कोठारी आयोग इसी सन्दर्भ में किये गये असफल प्रयास हैं। लेकिन हर्ष का विषय यह है कि हमारे युवा भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी ने शिक्षा में आधारभूत परिवर्तन लाने के लिए कई प्रयास किये। सन् 1968 की शिक्षा नीति की पुनरावृत्ति न करने का भी संकल्प किया गया है। इस नीति के सम्बन्ध में संसद में भी विचार-विमर्श किया जा चुका है।

इस सन्दर्भ में जब हम विचार करते हैं तो यह प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में भी नालन्दा तथा तक्षशिला जैसे महाविद्यालय थे, जहाँ विभिन्न विषयों की शिक्षा के साथ तकनीकी तथा प्रौद्योगिकी शिक्षा का भी पठन-पाठन होता था। आज अँग्रेजों द्वारा नींव रखी हुई शिक्षा नीति के कारण भारत की धरती पर कान्वेन्ट स्कूल तथा पब्लिक स्कूलों की भरमार है। सौभाग्य का विषय है कि आज देश की धरती पर नई शिक्षा की प्रणाली पल्लवित होने जा रही है। काफी विचार-विमर्श के पश्चात् ही इसे स्वीकृति प्रदान की गई है। उस समय के मानव संसाधन एवं विकास मन्त्री श्री पी.वी.नरसिंहाराव ने इस नीति की घोषणा सदन में की। घोषणा में वचन दिया कि शीघ्रातिशीघ्र सरकार नई शिक्षा नीति को प्रभावी ढ़ंग से लागू करने की योजना तैयार करेगी।

भूतपूर्व प्रधनमन्त्री श्री राजीव गांधी की अध्यक्षता में 16 जून 1986 को एक सभा का आयोजन किया गया। इसमें 70 शिक्षा-शास्त्री तथा यूनेस्को, युनीसेफ तथा इंग्लैण्ड, फ्रांस इत्यादि देशों के विद्वानों ने भाग लिया। इससे पूर्व श्री कृष्णचन्द्र पन्त, तत्कालीन शिक्षा मन्त्री तथा अन्य शिक्षा शास्त्रियों और विद्वानों ने अनेक सभाओं का आयोजन करके इसकी रूप-रेखा तैयार की। एक परिषद का निर्माण किया गया, जिसका नाम 'शिक्षा विकास परिषद' है। इसका प्रारूप तैयार करने में विभिन्न राज्यों के मुख्य मन्त्रियों का परामर्श लिया गया है। श्री राजीव गाँधी का विचार था कि कोई भी नियम या नीति अधिक समय तक प्रचलित नहीं रह सकती अतः प्राचीन का स्थान नवीन को ग्रहण करना है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भ में परिवर्तन आवश्यक है।

नई शिक्षा नीति के निर्धारण में श्री राजीव गांधी की सरकार ने महत्वपूर्ण कदम उठाये थे। उसमें प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के आधारभूत ढाँचे में परिवर्तन का विचार समाहित है। इस नीति के उद्देश्यों में मुख्य हैं - व्यक्ति का सर्वांगीण विकास, जिससे शिक्षित युवक जागृत और चरित्रवान हों। इसके साथ-साथ सहिष्णुता, श्रमप्रतिष्ठा, समानता की भावना सम्मिलित है। नैतिकता एवं विवेक का विकास होना अत्यावश्यक है। प्राचीन संस्कृति की रक्षा करते हुए नवीनतम प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना है।

17.1.3 वर्तमान शिक्षा प्रणाली का रूप :-

आजकल सरकारी, अर्द्ध सरकारी तथा स्वतन्त्र रूप से चलने वाली असंख्य प्रारम्भिक पाठशालाएँ हैं। बच्चे शैशवकाल में वहाँ भेजे जाते हैं। वहाँ निर्धारित पाठ्यक्रमों का अध्ययन मनोरंजन के साथ किया जाता है। प्राइमरी पाठशालाओं में शिक्षा की अवधि लगभग 5 वर्ष है। इन 5 वर्षों में बच्चों को सामान्य विषयों पर प्रारम्भिक परिचय दिया जाता है। इस कार्य के लिए प्रशिक्षित अध्यापक ही प्रायः रखे जाते हैं। बेसिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अनेक ग्रामीण विद्यार्थी शिक्षा त्याग देते हैं और घर पर ही रह कर अपने माता-पिता के कार्यों में सहायता करते हैं।

नगरों में रहने वाले अधिकांश विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा के लिए विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं। वहाँ उनका क्षेत्र बढ़ाया जाता है। अनेक विषयों से उनका परिचय होता है तथा वे अपने अनुकूल विषयों की ओर क्रमशः बढ़ते चले जाते हैं। यहाँ भी प्रशिक्षित अध्यापक ही प्रायः उसके शिक्षक होते हैं। हाई स्कूल परीक्षा के बाद विद्यार्थियों की बड़ी संख्या विभिन्न व्यवसायों में बँट जाती है। आधे से कम ही इण्टरमीडिएट कक्षा में भर्ती होते हैं। उनमें से भी लगभग पचास प्रतिशत डिग्री कक्षाओं तक पहुँचते हैं पर उपाधि प्राप्त करने वाले लगभग 30 प्रतिशत ही होते हैं। इनमें लगभग 59 प्रतिशत फिर विभिन्न दिशाओं में बँट जाते हैं तथा शेष और भी उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। यह आज की शिक्षा का सामान्य क्रम है। स्नातकोत्तर अध्ययन तो इने-गिने छात्र ही करते हैं। माध्यमिक शिक्षा अथवा विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् कुछ विद्यार्थी तकनीकी शिक्षा ग्रहण करते हैं और कुछ तो बीच ही में इस शिक्षा की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

हमारे प्राचीन मनीषियों ने विद्या के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है- विद्या वह है जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्त कराती है, उसे अन्धकार से निकालकर प्रकाश दिखाती है। वह मनुष्य के नेत्रों के सम्मख छाई धुन्ध को साफ कर उन्हें जीवन को उसके सम्पूर्ण रूप में देखने की प्रेरणा देती है। जो विद्या ऐसा नहीं करती, वह वास्तविक अर्थ में विद्या नहीं। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार की विद्या का अध्ययन कर उन दुर्गुणों से मुक्ति पाना है जो जीवन को अन्धकारमय बनाये हुए हैं। अब हमें यह देखना होगा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का रूप स्वच्छंद हो।

17.1.4 वर्तमान शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य :-

पाश्चात्य सभ्यता के साथ-साथ पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली, राज्य-व्यवस्था तथा भौतिकता बढ़ती चली आ रही है, और मानव जीवन का लक्ष्य प्रायः भौतिक ही रह गया है। आज की शिक्षा का मुख्य ध्येय यह है कि शिक्षित होकर भैतिक जीवन को सुखमय बनाया जाय। भौतिक उन्नति ही आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य है। इस शिक्षा-प्रणाली की नींव भारत में अंग्रेजों ने डाली। उन्हें राजकीय कार्यालय में काम करने के लिए सस्ते कर्मचारियों की आवश्यकता थी। अतः इस शिक्षा-प्रणाली से उन्हें नौकर मिलने लगे। शिक्षा प्राप्त करने वाले नौकरी पाने लगे अतः इस शिक्षा के साथ नौकरी की भावना का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया कि हर प्रकार की शिक्षा पूरी करने पर लोग नौकरी को ध्यान में रखते हैं। शायद ही कोई नवयुवक कृषि विद्यालय से डिग्री प्राप्त करके अपनी खेती के काम में लगा हो या इन्जिनीयरिंग पास करके किसी ने कोई छोटा-मोटा कारखाना खोला हो। औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी लोग नौकरी की ओर ही दौडते हैं, अतः शिक्षा की वृध्दि के साथ बेकारी भी बढ़ती जाती है। सरकार ने तमाम विभाग खोले, लाखों व्यक्तियों को नौकरियाँ दीं। फिर भी असन्तोष तथा बेकारी की समस्या ज्यों की त्यों मुँह बाये खड़ी है। स्वाभाविक भी यही है क्योंकि लाखों विद्यार्थी प्रति वर्ष निकल रहे हैं और सब का लक्ष्य नौकरी है, तो कहाँ से सबको नौकरियाँ मिल सकती हैं। अतः वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य ही परावलम्बी तथा दासता पर आधारित है।

हम ऐसी शिक्षा-प्रणाली को चाहते हैं जो हमें मानसिक दासता से मुक्ति दे सके। हम मातृ-भाषा में ही शिक्षा दिये जाने के पक्ष में हैं। शिक्षा का सर्वसाधारण तक प्रसार होना चाहिए तथा शिक्षितों व अशिक्षितों के बीच की खाई भी पट जानी चाहिए। हमारी शिक्षा इतनी सस्ती होगी कि प्रत्येक नवयुवक को उच्च शिक्षा सरलता से सुलभ हो। पाश्चात्य साहित्य की शिक्षा के साथ-साथ भारतीय साहित्य पर विशेष बल दिया जाय। शिक्षा-क्षेत्र सीमित न हो। परीक्षा लेने की वर्तमान प्रणाली का बहिष्कार हो।

17.1.5 व्यावहारिकता का अभाव :-

आज की शिक्षा में व्यावहारिकता का अभाव है। जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसे जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार व्यवहार में लाने की शिक्षा नहीं दी जाती। अतः परीक्षा पास कर लेने पर विद्यार्थी अपने को संसार सागर के तट पर असफल और अक्षम रूप में खड़ा पाता है। उसकी समझ में नहीं आता कि वह क्या करें? बड़ी दौड़-धूप के बाद नौकरी मिलती है तो उसे असंतोष और अभाव सदा बना रहता है। उसकी आवश्यकताएँ उत्तरोत्तर सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती जाती हैं और बेचारा सब कुछ करके भी उन्हें पूरा नहीं कर पाता। यही क्रम चलता आ रहा है। बी.ए., बी.एस.सी., एम.ए.- इस प्रकार कोई भी परीक्षा पास करने के बाद भी नौकरी की समस्या एक सी रहती है। इस प्रणाली में कहीं भी व्यावहारिकता के दर्शन नहीं होते।

17.1.6 एकांगीपन :-

आज की शिक्षा प्रणाली एकाँगी है। जितने कार्य हो रहे हैं, सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसी एकाँगीपन के सहायक या पूरक बन रहे हैं। कतिपय बेकार शिक्षित मिलकर स्कूल खोल देते हैं, उससे अनेक शिक्षित युवक तैयार हो जाते हैं पर जायें कहाँ और करें क्या? यह प्रश्न और भी विकराल रूप धारण करता जा रहा है। जीवन में इतनी आकर्षक आशाएँ घर कर लेती हैं कि उन्हें परीक्षा में पास होने पर निराशा का मुँह देखना पड़ता है। पढ़-लिखकर घर की खेती या व्यवसाय को करने की शिक्षा देने वाले वक्ताओं की कमी नहीं है पर व्यवहार रूप में करने वाले हैं ही नहीं। ऐसे अनेक नेता मिल जाएँगे जो दूसरों को तो यह भाषण देंगे कि शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् अपने घर के कार्य करो परन्तु स्वयं अपने घर के व्यवसाय को करने में हिचकिचाते हैं।

आज के युग में भी सभी शिक्षा प्राप्त करके नौकरी करना ही अच्छा समझते हैं। जिसके पास बुद्धि या सिफारिश की योग्यता होती है स्वयं तथा अपने सगे सम्बन्धियों को नौकरी दिलवा देते हैं। जो कहीं शरण नहीं पाते वे घर पर रहना यदि चाहते भी हैं तो वहाँ का वातावरण कुछ ही दिनों में उनके लिए असह्य हो जाता है। कागज के रूपयों की प्रचुरता से आज इतने आकर्षक मनोरंजन के साधन सुलभ हो गये हैं कि उन्हीं के पीछे जनता दौड़ रही है। देहात के शिक्षितों की स्थिति इतनी विषम हो गई है कि उनका सम्बन्ध धीरे-धीरे देहात से छूटता जा रहा है किन्तु शहरों में स्थान नहीं मिलता। लगभग इसी प्रकार की स्थिति शहरों की भी है। अतः इन सभी परिणामों का मूल कारण शिक्षा की वर्तमान प्रणाली है। आज की शिक्षा हमें केवल भौतिकवाद सिखाती है अतः जीवन व्यय-साध्य बनता चला जा रहा है। शिक्षा भी इतनी महँगी पड़ गयी है कि यदि इसे पूर्ण करके नौकरी न की जाय तो समाज में सम्मानित ढ़ंग से रहना दूभर हो जाता है। यह इसका एकांगीपन है।

17.1.7 वैज्ञानिकता:-

आजकल विज्ञान के अध्ययन पर अधिक बल दिया जा रहा है। सरकार अपनी योजनाओं की परिधि बढ़ाती चली जा रही है। उसमें इंजीनियरों तथा अन्य वैज्ञानिक कर्मचारियों की उपज होती जा रही है। अतः विज्ञान के अध्ययन से नौकरी मिलना सरल समझकर उसी तरफ अधिकांश लोग दौड़ रहे हैं। लेकिन प्लानिंग, नियोजन तथा कारखाने कितने व्यक्तियों को काम देंगे तथा किस सीमा तक बेकारी को कम करेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। इस आर्जित विज्ञान के ज्ञान को छोटे उद्योगों तथा कृषि में यदि लगाया जाय तो संभव है कि बेकारी की समस्या कम हो सके। यों तो देखने के लिये

इस शिक्षा प्रणाली में अनेक गुण हैं पर उन गुणों को यदि थोड़ी सी प्राचीन प्रणाली के गुणों से मिला दिया जाता तो अधिकांश समस्याएँ स्वयमेव हल हो जातीं। आज की शिक्षा एक समस्या का समाधान खोजने में दूसरी समस्या खड़ी कर रही है।

17.1.8 प्राचीन शिक्षा प्रणाली से तुलना :-

प्राचीन शिक्षा प्रणाली में व्यावहारिकता को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। आज उसका भी अभाव है। प्राचीन प्रणाली में छात्र तथा अध्यापक सरल तथा संतोषपूर्ण जीवन बिताते थे और नागरिक आकर्षणों को महत्व नहीं देते थे। पर आज की स्थिति उलटी है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली में आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया जाता था और जीवनक्रम को सुगम और स्वल्प व्यय साध्य बनाया जाता था, आज इसके विपरीत वातावरण बन गया है। प्राचीन प्रणाली में शिक्षा समाप्त करके चाकरी की लालसा कम लोगों में रहती थी, आजकल सब में रहती है। प्राचीन प्रणाली में गुरुकुलों में ही लोग भावी जीवन-क्रम निर्धारित कर लेते थे, आज निरन्तर अनिश्चितता बनी रहती है। प्राचीन प्रणाली में उच्च अनुशासन था, पर आज उसका अभाव है। उस प्रणाली में शिक्षा-व्यय कम करना पड़ता था और आज अधिक है। उस प्रणाली में शिक्षा व्यय सरकार या बड़े-बडे धनपति वहन करते थे पर आज छात्रों के अभिभावकों को वहन करना पड़ता है। इसीलिए विषमता बढ़ती जा रही है।

17.1. 9 उपसंहार :-

आज शिक्षा-प्रणाली देश को अन्धकार में ले जाकर विनाश की ओर बढ़ा रही है। हम इस रोग की दवा खोजने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं परन्तु व्याधि बढ़ती जा रही है। यदि क्रमशः इस शिक्षा प्रणाली को पीछे लौटाया जा सकता तो विश्व का बहुत बड़ा कल्याण होता। पर वह असम्भव-सा है। एक विनाशकारी नाटक अभी शेष है- उसके बाद ही नव-निर्माण की कल्पना की जा सकती है। फिर भी इस प्रणाली में परिवर्तन की बात की जाती है। यदि वह सफल हो तो विश्व का सौभाग्य समझना चाहिए।

17.1.10 सहायक ग्रन्थ-सूची :-

1. हिन्दी निबंध - नीलकमल प्रकाशन
2. आधुनिक हिन्दी निबन्ध - श्री भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
3. निबंध प्रवेशिका - दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
4. आदर्श निबंध - कुलश्रेष्ठ खंशनी
5. कुछ वैज्ञानक पत्र-पत्रिकाएँ

Sri R. Bhaskara Rao,
Lecturer,
Department of Hindi,
J.K.C. College(Autonomous),
Guntur.

पाठ - 17.2

विज्ञान : अभिशाप या वरदान

इकाई की रूपरेखा:-

17.2. 1 उद्देश्य
17.2. 2 'विज्ञान एक वरदान है'- प्रस्तावना
17.2. 3 विज्ञान का विकास
17.2. 4 आधुनिक युग में विज्ञान का स्थान
17.2. 5 परंपरा
17.2. 6 यातायात के साधन
17.2. 7 विद्युत का आविष्कार
17.2. 8 मनोरंजन के साधन
17.2. 9 मुद्रण कला
17.2.10 कृषि-विकास
17.2.11 चिकित्सा
17.2.12 युद्ध क्षेत्र संबंधी
17.2.13 अंतरिक्ष विज्ञान
17.2.14 विज्ञान एक अभिशाप
17.2.15 अकर्मण्य लालसी
17.2.16 बेकारी की समस्या
17.2.17 राजनीति और विज्ञान
17.2.18 धर्म और विज्ञान
17.2.19 निष्कर्ष
17.2.20 सहायक ग्रन्थ-सूची

17.2.1 उद्देश्य :-

इस इकाई के अंतर्गत आप यह जान लेंगे कि मानव जगत के लिए विज्ञान वरदान है या अभिशाप।

आधुनिक युग में विज्ञान को एक वरदान के रूप में उसके चमत्कारों के द्वारा समझ सकेंगे। यह भी जानने का प्रयास करेंगे कि वैज्ञानिक साधनों के द्वारा मनुष्य को विविध सुख कैसे प्राप्त हो रहे हैं। आधुनिक विज्ञान मानव जीवन को भयकंपित करने वाला अभिशाप किस प्रकार बन गया है- इसका ज्ञान भी प्राप्त करेंगे।

17.2.2 'विज्ञान एक वरदान है' - प्रस्तावना :-

विज्ञान का अर्थ है किसी भी विषय का क्रमबद्ध ज्ञान। भारतीय परंपरा में आध्यात्मिक ज्ञान ही विज्ञान है। एक युग था जब मानव प्रकृति से भयभीत होकर उसकी अर्चना करता था। आज का युग है कि प्रकृति मानव की क्रीत-दासी बनी हुई है। यह सब विज्ञान की आशातीत सफलता और उसके आश्चर्यजनक चमत्कारों का परिणाम है। आज के विज्ञान के द्वारा मानव जीवन की रूप-रेखा बदलती जा रही है। इस इकाई में आधुनिक युग में विज्ञान के आविष्कारों और चमत्कारों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जायेगा। इस विषय की चर्चा भी मिलती है कि आधुनिक युग में विज्ञान एक वरदान है या अभिशाप।

17.2.3 विज्ञान का विकास :-

जब मानव में विचार शक्ति का उदय हुआ तो उसे संसार में प्रतिदिन की घटनाओं के प्रति कुतूहल उत्पन्न हुआ। आदि मानव ने कुतूहल पूर्ण समस्याओं पर विचार करना प्रारंभ किया और कल्पना करने लगा। इस प्रकार कल्पना और विचार के कारण मानव में ज्यों-ज्यों बुद्धितत्व का विकास होता गया, त्यों-त्यों वह कल्पना का आश्रय छोड़कर कठोर सत्य, अनुभव, तर्क और परीक्षा की कसौटी पर अपनी जिज्ञासा की समस्याओं को कसने लगा। इस प्रकार विज्ञान से सत्य की खोज की गयी। विज्ञान से मानव का विकास हुआ और मानव ने विज्ञान का विकास किया।

मानव ने समस्त भौतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली। इन भौतिक शक्तियों में से मानव ने बाष्प, विद्युत, गैस, ईथर और एटम जैसी शक्तियों पर विजय प्राप्त करके रेल, मोटर, हवाई जहाज, रेडियो, टेलिविजन, पारदर्शक यंत्र, आटम बम और हाइड्रोजन बम बना डाले हैं और एक बार नहीं अनेक बार चंद्रमा पर जाकर उसने घंटों सैर की है, भ्रमण किया है, उसको उलट-पलट कर देखा है।

17.2.4 आधुनिक युग में विज्ञान का स्थान :-

'विज्ञान' शब्द का अर्थ है 'विशिष्ट ज्ञान'। किसी एक विषय पर साधारण जानकारी ज्ञान है और उस विषय पर विशिष्ट ज्ञान रखना विज्ञान है। आधुनिक युग को विज्ञान का युग या भौतिक युग भी कह सकते हैं। आज मानव प्रकृति को अपने वश में कर रहा है और नागरिक बनकर सुखद जीवन बिता रहा है। आज मानव के जीवन में विज्ञान के द्वारा कई परिवर्तन आ रहे हैं। जीवन की छोटी सी छोटी आवश्यकता की पूर्ति विज्ञान कर रहा है। इस प्रकार आधुनिक युग में मानव के जीवन के हर क्षेत्र में विज्ञान का चमत्कार देखने को मिलता है।

17.2.5 परंपरा :-

पौराणिक गाथाओं तथा वैदिक ग्रन्थों में देवताओं के विमानों का वर्णन मिलता है, जिनमें बैठकर देवगण आकाश मार्ग में यात्रा करते थे। आधुनिक वैज्ञानिकों ने वायुयान का निर्माण किया। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में ऐसे बाणों का अल्लेख मिलता है, जिनके प्रयोग से वर्षा या अग्नि की वृष्टि होती थी। कुछ ऐसे बाणों का उल्लेख भी मिलता है जिनके प्रयोग से धुआँ, कीटाणु, सर्प आदि निकलते थे। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अणु और परमाणु बमों का निर्माण किया। महाभारत में यह वर्णन आया था कि, 'संजय' के पास एक ऐसा अद्‌भुत दिव्य-यंत्र था, जिसकी सहायता से उसने कुरुक्षेत्र

में होनेवाले कौरव और पाण्डवों के युद्ध का दृश्य हस्तिनापुर में बैठकर देखा था। आजकल वैज्ञानिकों ने रेडियो और दूरदर्शन का आविष्कार किया है। इस प्रकार प्राचीन काल में कल्पना की जो बात थी, वह आज यथार्थ बन गयी है। आधुनिक मानव विज्ञान के बल पर ही प्राचीन कथाओं को यदार्थ बना रहा है।

17.2.6 यातायात के साधन :-

प्राचीन काल में मानव एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में बडी कठिनाई का अनुभव करता था। उसे अपनी यात्रा पूरी करने में महीनों लग जाते थे। वह या तो पैदल जाता था या बैलगाडी, ऊँटगाडी और घोडा-गाडियों से अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच पाता था। परन्तु आजकल यातायात के साधनों के आविष्कार से यात्रा करना सरल हो गया है। इनके सहारे महीनों की यात्रा कुछ ही घंटों में पूरी हो रही है। आधुनिक मानव विमान में बैठकर आकाशमार्ग में यात्रा कर सकते हैं। मोटर या रेलगाडी के द्वारा थल यात्रा कर सकते हैं। जहाजों और जलयानों के द्वारा समुद्र के अंदर भी यात्रा कर सकते हैं। देशों में सद्भावना और पारस्परिक मैत्री स्थापित करने में विज्ञान के आविष्कारों ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। इन यातायात के साधनों के द्वारा मानव पृथ्वी को पारकर आकाश के ग्रहों तक भी जा रहा है। समुद्र के अंदर भी खोज कर रहा है। यातायात के साधनों के द्वारा देशों की दूरी कम हो गई है, विदेशों में कोने-कोने तक जल्दी ही कुछ घंटों में या दिनों में यात्रा की जा सकती है। यातायात के साधनों के आविष्कार के द्वारा विश्व बिलकुल सिमट गया है।

17.2.7 विद्युत का आविष्कार:-

आजकल मानव ने विद्युत का आविष्कार किया और अंधकार को भगा दिया। आज रात्रि के अंधकार में भी कारखाने, रेलगाडियाँ और सिनेमा-घर चालू हैं। मनोविनोद के साधनों को भी विज्ञान ने अत्यधिक समुन्नत कर दिया है। प्रतिदिन प्रयोग में आनेवाली वस्तुएँ जैसे रेडियो, दूरदर्शन, बल्ब, हीटर, टेलिफोन, सिनेमा आदि सभी बिजली के आविष्कार का परिणाम है। आज हम घर पर बैठे-बैठे ही रेडियो, दूरदर्शन के माध्यम से सारे संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हीटर के द्वारा कमरे को गर्म कर लेते हैं तथा कूलर के द्वारा ठंडा कर लेते हैं। रिफ्रिजिरेटर में वस्तुओं को ठंडा और सुरक्षित रख सकते हैं। समाचार पुरातन काल में संदेश वाहकों द्वारा भेजे जाते थे और उत्तर के लिए महीनों प्रतीक्षा करनी पडती थी। लेकिन आज हम घर बैठे ही तार द्वारा समाचार भेज सकते हैं, कुछ ही मिनटों में उसका जवाब भी ले सकते हैं। टेलिफोन और सेलफोन के द्वारा भी हम अपने मित्रों, संबंधियों और अफसरों से विचार- विनिमय कर सकते हैं। विद्युत के कारण आज एक-से.एक तेज और सुविधा-जनक सवारियाँ निकल गई हैं।

आज बडे बडे मकान भी विद्युत के सहारे काम करने वाले यंत्रों के द्वारा बन रहे हैं। एक मंजिल से दूसरे मंजिल तक 'लिफ्ट' के द्वारा हम जा सकते हैं। दो पहाडों के बीच तार लटकाकर चलने वाली गाडी से हिममंडित स्वर्गलोक का दृश्य देख सकते हैं। विद्युत के सहारे आज कृषि-कार्य में भी क्राँतिकारी परिवर्तन आ गये हैं। किसान कम समय में अधिक उत्पादन कर सकते हैं। कारखानों में भी कम समय में अधिक माल का उत्पादन कर रहे हैं। विद्युत के बल पर कम समय में अधिक काम किया जा रहा है।

आजकल जो आन-लाइन सिस्टम आया है, इससे घर में रहकर ही बैंक या वाणिज्य के कार्यकलाप कर सकते हैं। बैंकों के 'ए.टि.एम' के द्वारा जहाँ चाहे वहाँ पैसे ले सकते हैं। कम्प्यूटर के उपयोग के कारण अनेक बिलों को अदा करने में और कई प्रकार के टिकट खरीदने में भी सरलता आ गयी। ये सभी विज्ञान के द्वारा विद्युत आविष्करण से लोगों

को हित करनेवाले साधन हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विद्युत तो वैज्ञानिक चमत्कारों की रीढ़ है। विद्युत का आविष्कार विज्ञान का बहुत बड़ा चमत्कार है।

17.2.8 मनोरंजन के साधन :-

मनोरंजन के क्षेत्र में विज्ञान ने और कमाल किया है। रेडियो, दूरदर्शन, सिनेमा, रिकार्ड प्लेयर, वीडियो जिससे चाहे अपने मन चाहे गीत, या दृश्य सुन और देख भी सकते हैं। ये मनोविनोद और मनोविकास के उत्तम साधन हैं। लाल किले पर तिरंणा झंडा फहराने से लेकर अपने मनपसंद खेलों तक हर दृश्य को आज घर बैठे ही देख सकते हैं। डिजिटल साउण्ड तथा थ्री.डी पिक्चर्स के आविष्कार से सिनेमा और भी आकर्षक बनता जा रहा है। इंटनरेट आज मनोरंजन का अत्युत्तम साधन बन गया है। इसके द्वारा दुनिया के किसी भी कोने में रहते लोगों से प्रत्यक्ष वार्तालाप यानी लाइव चाट- भी किया जा सकता है। माइक्रोफोन से हम अपनी आवाज लाखों के बीच पहुँचा सकते हैं।

17.2.9 मुद्रण कला :-

पुराने काल में पुस्तक लिखने में अनेक वर्ष लगते थे। अनेक वर्ष कठिन श्रम करके भी एक ही ग्रन्थ को लिख सकते थे। फिर उसकी प्रतिलिपि बनना बहुत मुश्किल होता था। परंतु आजकल विज्ञान के विकास के कारण मुद्रण कला का विकास हुआ है। इसलिए हम हर रोज समाचार पत्र पाते हैं। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक पत्रिकाओं का विकास हुआ। आज हम कम मूल्य में विभिन्न विषयों की पुस्तकें खरीद सकते हैं। डी.टी.पी. और आफसेट प्रिंटंग की सहायता से ही लाखों पुस्तकों का मुद्रण किया जाता है। लोगों के लिए जितनी पुस्तकें आवश्यक हैं उतनी मुद्रित करने में आधुनिक मुद्रण पद्धतियाँ बहुत उपयोगी हैं। यही नहीं, आजकल ऐसे कई यंत्रों का निर्माण हुआ जिनके सहारे एक ही मिनिट में कई प्रतिलिपियाँ निकाल सकते हैं। इस प्रकार मुद्रण यंत्र के आविष्कार से मानव मस्तिष्क का विस्तार एवं ज्ञान का प्रसार अत्यंत सरल बन पड़ा है।

17.2.10 कृषि-विकास :-

भारत कृषि प्रधान देश है। पुराने काल में किसान दैवी शक्ति पर निर्भर रहते थे। प्रकृति से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते थे। लेकिन आजकल विज्ञान के सहारे कृषि-कार्य में क्राँतिकारी परिवर्तन आ गये हैं। प्रकृति पर मानव की जीत हुई। आजकल खेत जोतने के लिए यंत्र है, पानी सींचने के लिए यंत्र है, फसल काटने के लिए यंत्र है। इस प्रकार आधुनिक युग में किसान नवीन कृषि साधनों के प्रयोग से कम समय में अधिक लाभ प्राप्त कर रहे हैं। फसल वृद्धि के लिए उर्वरक, कीटाणु नाश के लिए दवाओं की छिड़काव-व्यवस्था, ये सब तो विज्ञान की ही करामत है। अन्न के अधिकाधिक उत्पादन में विशेष सहायक खाद की अनेक किस्में तैयार हो गयीं। कृषि संबंधी और भी अनेक प्रकार के नवीन यंत्र बाजार से खरीदकर किसान आज सुख और शांति का श्वास ले रहा है। कृषि के क्षेत्र में ही नहीं, अन्य उत्पादनों- जैसे सागर में मोती निकालने, पर्वतीय वनों से अनेक प्रकार की लकड़ी लाने, खानों से सोना, चाँदी और कोयला आदि- को निकालने में भी विज्ञान की सेवा ली जा रही है। मिलों में वस्त्रोत्पादन आदि में भी नवीन यंत्रों के रूप में आज विज्ञान अपना महत्त्व दिखा रहा है।

1979 की 'परखनली' शिशु के रूप में महान वैज्ञानिक उपलब्धि के पश्चात् भारतीय वैज्ञानिकों ने परखनली के ज़रिये पौधे पैदा करने में भी सफलता प्राप्त की। इस नये आविष्कार का संपूर्ण श्रेय भारत के प्रसिद्ध 'बाबा परमाणु अनुसंधान केंद्र' को है जिसने आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पौधों की परखनली की सहायता से शानदार फसल प्राप्त करने की खोज में एक और कीर्तिमान स्थापित किया है।

17.2.11 चिकित्सा :-

आधुनिक विज्ञान स्वास्थ्य-सुधार की ओर अत्यधिक ध्यान दे रहा है। मानव को बड़े-बड़े रोगों का लक्ष्य बनने से बचाने का श्रेय विज्ञान को है। पुराने काल में महामारी जैसे साँक्रमिक रोगों के फैलने से लोग गाँव छोडकर भाग जाते थे। परन्तु आज कल वैद्यों ने इन रोगों की रोक-थाम करने में सफलता प्राप्त की है। 'X-Ray' के कारण आज चिकित्सा-विज्ञान में एक क्राँति आ गई है। आज शस्त्र-चिकित्सा की भी बडी उन्नति हुई। विज्ञान के बल पर आज 'हृदय' तक को बदल देने का चमत्कार आविष्कृत हो गया है। अंधे आदमी की आँखें भी आसानी से बदली जा सकती हैं। इंग्लैंड के ओल्डहेम के ब्रितानी अस्पताल के दो विशेषज्ञ डाक्टरों ने परखनली से 15 जुलाई 1978 को एक लडकी को पैदा करके विश्व के चिकित्सा-क्षेत्र में एक नया अध्याय जोड़ दिया। संतानहीनों को संतान दिलाने का काम भी विज्ञान ने अपने हाथों में ले लिया। भारतीय वैज्ञानिकों ने कोलकत्ता में 3 अक्तूबर 1978 को परखनली से शिशु को जन्म दिया।

चिकित्साक्षेत्र में विज्ञान ने ऐसे-ऐसे आविष्कार किये हैं, जिनके द्वारा मानव जीवन की रूप-रेखा ही बदलती जा रही है। राजयक्ष्मा, दमा, चर्मरोग, अस्थि-रोग और हृदय-रोग भी इस वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति द्वारा दूर किये जा रहे हैं। प्लेग, चेचक, हैजा जैसे रोगों के इंजेक्षन लगाकर करोडों व्यक्तियों के जीवन की रक्षा करके उन्हें अकाल-मृत्यु से बचाया जा चुका है। यह विज्ञान का ही चमत्कार है कि आज के युग में जिन लोगों के दाँत उखड चुके हैं, वे भी चना चबा लेते हैं और जिनकी टाँग नहीं हैं वे भी घूम सकते हैं। विद्युत तरंगों से मनुष्यों को नाना प्रकार के रोगों से मुक्त किया जा सकता है। यहाँ तक कि वेक्यूम-टूयब द्वारा विद्युत-तरंग मानव के शरीर में प्रवेश कराई जा सकती है, रोगी के शरीर पर विद्युत का चुंबकीय असर हो सकता है। इस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में विज्ञान ने मानव-जाति की पर्याप्त सहायता की है। आधुनिक अस्पताल 'विज्ञान की जादू नगरी'- सा लगता है।

17.2.12 युद्ध क्षेत्र संबंधी :-

युद्ध के क्षेत्र में विज्ञान ने महत्वपूर्ण चमत्कार दिखाया। धनुष-बाणों का और तलवारों का युग तो कई शताब्दी पूर्व ही समाप्त हो चुका। एक युग था जब विजेता का निर्णय द्वन्द्वयुद्ध से किया जाता था। पर आधुनिक युग में विज्ञान ने अपूर्व प्रगति की और द्वितीय महायुद्ध में इस के चमत्कारों को देखा गया। बडे-बडे शक्तिशाली संहारक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया गया है। बन्दूक, मशीनगन, स्टेनगन, युद्ध टैंक, साधारण बम, एटम बम, उदजनि बम तथा इसी प्रकार के विध्वंसकारी बमों का आविष्कार विज्ञान की ही सफलता कह सकते हैं। राडार तथा अन्य मारक यंत्रों से ही नहीं अपितु और कई प्रकार से विज्ञान ने युद्ध भूमि पर मानव की सेवा की है। बम वाहक वायुयानों की शक्ति और गति में अभूतपूर्व उन्नति हुई।

17.2.13 अंतरिक्ष विज्ञान :-

ब्रह्माण्ड और अंतरिक्ष के क्षेत्र में विज्ञान ने महत्वपूर्ण जानकारियाँ मानव जाति को प्रदान कीं। विज्ञान के कारण मानव चंद्रमा तक पहुँच गया और मंगल, शनि आदि ग्रहों के विषय में बहुत कुछ जान सका। भारतीय वैज्ञानिकों ने आर्यभट्ट, रोहिणी, भास्कर तथा इंसेट आदि उपग्रह छोड़कर देश को वैज्ञानिक प्रगति के शिखर पर पहुँचा दिया।

इस प्रकार विज्ञान आधुनिक युग में मानव के लिए एक वरदान के समान है।

"रसवती भू के मनुज का श्रेय।
श्रेय यह विज्ञान का वरदान।।"

17.2.14. विज्ञान एक अभिशाप :-

आधुनिक युग में मानव ने विज्ञान की सहायता से सुख सुविधाओं को तो प्राप्त किया किन्तु कुटिल और स्वार्थी राष्ट्रों की कलुषित भावनाओं के कारण विज्ञान का यह वरदान स्वरूप आज मानव जाति के लिए अभिशाप में परिवर्तित हो गया है। यही विज्ञान आज विश्व की संस्कृति और सभ्यता को भस्म कर देना चाहता है। विज्ञान ने जहाँ मनुष्य के कल्याण के लिए अनेक वस्तुओं का निर्माण किया है, वहाँ अहितकर पदार्थों को भी जन्म दिया है।

17.2.15 अकर्मण्यता :-

इस युग में मानव का मस्तिष्क बढ़ता जा रहा है और उसका हृदय पक्ष घटता जा रहा है। वह यंत्रों के प्रभाव से यंत्रवत होता जा रहा है। मनुष्य की मानवता और भावुकता का ह्रास होता जा रहा है। मानव का लक्षण मानवता है। किन्तु आज वह उस मानवता से ही दूर हो गया है। वह तर्कमय और विज्ञापन मात्र रहकर यंत्रों का गुलाम बन गया है। एक क्षण भी यंत्रों के बिना नही रह सकता। यंत्रों के कारण मानव की शारीरिक शक्ति घट रही है। वह अकर्मण्य तथा लालसी बन गया है। आजकल लोग निर्धारित समय के अनुसार ही काम कर रहे हैं। बाकी समय को बिताना उसके लिए समस्या बन गया है। इस कारण वह अपने आराम का समय भोग-विलासों के नाम कर रहा है जिससे उसका शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। आज वह अनेक बीमारियों का शिकार बन रहा है।

17.2.16 बेकारी की समस्या:-

विज्ञान के द्वारा अनेक नये-नये यंत्रों का आविष्कार किया गया है। पुराने काल में हर काम मानव शक्ति पर आधारित रहा था। लेकिन यंत्रों के कारण कम समय में कम आदमियों के द्वारा अधिक माल का उत्पादन किया जा रहा है। मानवीय शक्ति की आवश्यकता कम हो गई। इसलिए कारखानों में श्रमिकों को घटा दिया जा रहा है। इस प्रकार विज्ञान ने मशीनों का निर्माण कर मनुष्य की श्रम-शक्ति का मूल्य घटा दिया और बेकारी की समस्या को और भी अधिक जटिल कर दिया।

17.2.17 राजनीति और विज्ञान :-

आजकल विज्ञान को कुटिल राजनैतिक नेता अपने स्वार्थ के लिए काम में ला रहे हैं। हरेक देश अपने को शक्तिशाली बनाने के सिलसिले मे भयानक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण कर रहा है। खासकर बीसवीं शताब्दी में विज्ञान ने अपूर्व प्रगति की और द्वितीय महायुद्ध में भयानक जनहनन हुआ। एक ही 'एटम बम' ने जपानी शक्ति की कमर तोड़ दी। जापान के हीरोशीमा और नागसाकी नगरों में उस बम के विस्फोट से आज तक घास भी नहीं उगा। फिर आज तक उन संहारक अस्त्र-शस्त्रों की संख्या और भी बढ़ गई। अणुबम, क्षेप्यास्त्र, उदजनि बम आदि अनेक आविष्कार हुए। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद तो विज्ञान का विकास युद्ध क्षेत्र में ही अधिक चमत्कारपूर्ण हुआ। विश्व आज विनाश के कगार पर खडा हुआ है। आक्रमणकारी वायुयान के माध्यम से बम वर्षा करके भाग जाते हैं और आक्रान्त देखते रह जाते हैं। हाल ही में संपन्न अनेक युद्ध इस बात के साक्षी हैं। ध्वनि से दुगुनी गति से चलनेवाले लडाकू विमान निःशब्द आकाश में घूमने लगे जिनमें सैकडों मन गोला-बारूद तथा सैकडों सैनिक क्षणमत्र में हजारों मील की दूरी पर भेजे जा सकते हैं। आज का युद्ध विश्वव्यापी प्रभाववाला हो गया है। यह सब उथल-पुथल कौन कर रहा है? इस प्रश्न का एक ही उत्तर है विज्ञान और राजनीति।

आचार्य विनोबा भावे जी ने ठीक ही कहा था "विज्ञान जब राजनीति से प्रभावित होता है तब विश्व का सर्वनाश होता है।"

17.2.18 धर्म और विज्ञान :-

आधुनिक युग में विज्ञान के विकास से मानव में 'अहं' की भावना बढ़ गई है। उसके मन में आज भगवान पर विश्वास नही है और वह अपने आप को भगवान समझने लगा है। दिन-प्रतिदिन मनुष्य की आध्यात्मिक भावना निर्बल होती जा रही है। उसके जीवन का संतुलन मिटता जा रहा है। मानव आस्तिकता को ठुकराकर नास्तिक बन रहा है। विज्ञान के द्वारा मानव ने मात्र शारीरक आनंद के साधन जुटाये हैं किन्तु मानसिक शांति तो विज्ञान से नहीं मिलती। विज्ञान ने उसे विलासी बनाने में ही अधिक सहयोग प्रदान किया है। आज मनुष्य धर्म के विरुद्ध आचरण करने लगा है। धर्म-विरोध के कारण नीति का ह्रास होने लगा। अगर लोगों में नैतिकता बढ़ती है तो भगवान पर विश्वास उसे बेईमानी से रोक सकती है। इसीलिए आचार्य विनोबा भावे जी ने कहा था कि "विज्ञान जब धर्म से मिलता है तब विश्व का 'सर्वोदय' होता है।"

17.2.19 निष्कर्ष :-

विज्ञान ने मनुष्य के जीवन को अधिक से अधिक आनंदमय बनाने का प्रयत्न किया है। उसने मनुष्य को हर प्रकार की शक्ति प्रदान की। उसने मनुष्यों को पक्षियों के समान आकाश में उड़ने की शक्ति तक दी है। मछलियों की तरह सागर में तैरने तथा पृथ्वी पर दृत गति से चलने में समर्थ बनाया है। इस प्रकार विज्ञान ने जीवन के प्रत्येक पहलू में एक महत्वपूर्ण क्रान्ति उपस्थित कर दी है।

जहाँ विज्ञान ने मानव को प्रगति के शिखर पर पहुँचा दिया है, वहाँ दूसरी ओर इसकी संहारक शक्ति ने विभिन्न अस्त्रों का आविष्कार करके जन जीवन की शान्ति को भंग कर दिया है। कुटिल राजनीतिज्ञों ने विज्ञान को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया है और अपनी इच्छानुसार वे इसे नचाते हैं। आधुनिक सभ्यता की दौड़ में मानव इतना पागल हो उठा

है कि उसकी प्राचीन पाशविक प्रवृत्तियाँ फिर से जन्म लेने लगीं। विज्ञान ने मानव की स्वार्थ प्रवृत्ति को इतना बढ़ावा दिया कि उसमें दया, क्षमा तथा प्रेम आदि सद्‌गुण समाप्त होकर अतीव स्पर्धा, ईर्ष्या तथा लोभ आदि निम्नकोटि की भावनाएँ पनप उठीं। इनके फल स्वरूप विज्ञान वरदान के स्थान पर अभिशाप के रूप में परिणत हो गया है।

विज्ञान एक पैनी तलवार के समान है। उसकी दोनों तरफ धार है, चाहे तो हम उसके द्वारा उन्नति पा सकते हैं या उसके सहारे स्वयं को बरबाद भी कर सकते हैं। विज्ञान जब भस्मासुर के हाथ में पडती है, तब विश्व का और मानव का विनाश हो सकता है। परंतु उस विज्ञान से ही मानव जीवन का, मानवता का कल्याण हो सकता है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक समाज को चाहिए कि वह आचार्य विनोबा के वचनों का अनुसरण करके मानव-कल्याण हेतु ही विज्ञान का उपयोग करे।

17.2.20 उपयुक्त ग्रन्थ-सूची :-

1. आदर्श निबंध - कुलश्रेष्ठ खंशती
2. आधुनिक हिन्दी निबंध - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
3. हिन्दी निबंध - पण्डित रामकृष्ण शर्मा और डि एन. चतुर्वेदी
4. निबंध प्रवेशिका - दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा प्रकाशन
5. कुछ वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाएँ

Sri R. Bhaskara Rao,

Lecturer,

Department of Hindi,

J.K.C. College(Autonomous),

Guntur.

पाठ - 18.1

समाज में नारी का स्थान

इकाई की रूप रेखा :-

18.1.1 उद्देश्य
18.1.2 प्रस्तावना
18.1.3 विविध युगों में, समाज में नारी का स्थान
18.1.3.1 वेद-पुराणकाल
18.1.3.2 इतिहास काल अथवा मध्यकाल
18.1.3.3 आधुनिक काल
18.1.4 सामाजिक या पारिवारिक जीवन में नारी का स्थान
18.1.4.1 सामाजिक जीवन में नारी का स्थान
18.1.4.2 पारिवारिक जीवन में नारी का स्थान
18.1. 5 नारी-शिक्षा का ध्येय
18.1. 6 नारी-स्वतंत्रता का मूल्य
18.1. 7 आधुनिक समाज में नारी
18.1. 8 उपसंहार
18.1. 9 बोध-प्रश्न
18.1.10 उपयुक्त ग्रंथ सूची

18.1.1 उद्देश्य :-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" आर्योक्ति के अनुसार स्त्रियों का आदर करना हमारी संस्कृति है। स्त्री साक्षात् देवी का स्वरूप है, स्त्री आकाश में आधाभाग है आदि नारे कहने और सुनने में तो अच्छे लगते हैं लेकिन जहाँ तक व्यावहारिकता का प्रश्न है स्त्रीयों का स्थान भारत में उतना महत्त्वपूर्ण, आदरणीय और प्रमुख नहीं है। नारी अपने आप में शक्तिशालिनी जरूर है। लेकिन उसकी शक्ति पुरुषों के द्वारा समय-समय पर दबायी जा रही है। यद्यपि स्त्री के सहयोग के बिना पुरुष एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकता, फिर भी पुरुष शक्ति के आगे स्त्री शक्ति व्यावहारिकता में क्षीण पडती आयी है। हर पुरुष की विजय के पीछे स्त्री का हाथ होना आवश्यक है, होता है। परिवार-निर्माण ही नहीं देश-निर्माण में भी नारी अप्रत्यक्ष रूप से सहायिका बनती है। ऐसी नारी का विविध दशाओं में किस प्रकार महत्त्व रहा, नारी की अस्मिता के उतार-चढाव, आधुनिक समाज में नारी का स्थान आदि प्रस्तुत करना इस निबंध का उद्देश्य है।

18.1.2 प्रस्तावना :-

समाज का अर्थ है मानव समूह से निर्मित एक व्यवस्था। उस व्यवस्था के निर्माण में नारी की भी पुरुषों के समान महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। समाज रूपी गाड़ी को सुचारू रूप से चलाने के लिए स्त्री पुरुष जैसी पहियों की आवश्यकता है। इन दोनों में से किसी को अधिक महत्व या किसी को कम महत्व नहीं दे सकते। इसलिए ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं फिर भी भारतीय समाज में अथवा यों कहिये कि दुनिया में भी पुरुष का ही पलड़ा भारी रहा है। यद्यपि स्त्री को गृहिणी, घर की देवी तथा पूज्य समझे जाने पर भी व्यावहारिकता में पुरुष स्त्री से ज्यादा महत्व पाता रहता है। इसलिए समाज में स्त्री का स्थान पुरुष की तुलना में कम महत्व का हो गया है। आज के वैज्ञानिक युग में भी यही धारणा बनी हुई है यद्यपि स्त्री आज सभी क्षेत्रों में अपनी विशिष्ठता दिखा रही है। समय के अनुसार समाज में स्त्रियों का स्थान बनता-बिगड़ता आया है। प्राचीन काल के समाज में स्त्री का आदरणीय स्थान है। स्त्री का आदर देवताओं का आदर समझा जाता था। जहाँ पर स्त्री का आदर होता है, उस स्थान में देवताओं का निवास समझा जाता है। धीरे-धीरे यह भावना केवल भावना ही रह गयी और उसका अमल नहीं हो पाया। नारी अपने जीवन की पूर्णता या सार्थकता पारिवारिक जीवन की सार्थकता से मानती है। इसके लिए वह त्याग की भावना अपनाती है तथा अपने परिवार का सुचारू रूप से संचालन करती हुई समाज के निर्माण में अपना योगदान देती आयी है और आ रही है। स्त्री का समाज में क्या स्थान है इस पर विशद रूप से देखें तो पता चलता है कि स्त्री का स्थान समाज में हर समय एक जैसा नहीं रहा।

18.1.3 विविध युगों में, समाज में नारी का स्थान :-

18.1.3.1 वेद-पुराण काल :- वेद अथवा पुराणकाल में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी। पुरुषों के समान शिक्षा, कला कौशल और मंत्र विद्या में निपुण रहती थी। उपनिषद काल में गार्गी, मैत्रेयी ब्रह्मविद्या में पारंगत थीं। वे सब बड़े-बड़े विद्वानों से शास्त्रार्थ करती हुई तथा विजय पायीं दिखायी पडती हैं। केवल शास्त्र-विद्याओं में ही नहीं बल्कि शस्त्रविद्या में भी स्त्रियाँ निपुण दिखायी पडती हैं। कैकेयी और सत्यभामा इसके उदाहरण हैं। राजनीति और मंत्रणा के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ अपनी इच्छा प्रकट करने की स्वतंत्रता रखती थीं। अपनी इच्छा के अनुसार अपने जीवन जीने का और पति को चुनने का अधिकार मिलता था। सीता स्वयंवर, दमयंती का स्वयंवर आदि प्रसंग इस तथ्य पर बल देते हैं। देवी-देवताओं के रूप में भी स्त्री को समान आदर और गौरव प्राप्त है। कर्म सिद्धांत को मानने वाले हिन्दू समाज में, परिवार की उन्नति या शुभचिन्ता के लिए कई धार्मिक विधियाँ करने की प्रथा है। उन प्रथाओं के निर्वाह में पुरुषों के समान स्त्री का भी सहयोग अनिवार्य है। रामायण काल में जब राम यज्ञ करना चाहता है तो सीता के अभाव में ऐसा लगता है कि उसकी कामना पूर्ण होनेवाली नहीं। तब पण्डितों की सलाह के अनुसार उस अभाव की पूर्ति के लिए सीता की स्वर्ण प्रतिमा बनवायी जाती है और उसीको जानकी की जगह देकर यज्ञविधि की पूर्ति की जाती है। यह घटना इस बात का साक्षी है कि धार्मिक और आध्यात्मिक कार्यों में स्त्री को प्रमुखता मिली। आज भी यही भावना है जो वेद और पुराण काल से चलती आ रही है।

18.1.3.2 मध्यकाल :- विदेशी आक्रमणों का प्रभाव समाज के हर वर्ग पर पड़ा। इसी का प्रभाव स्त्री जीवन पर भी पड़ा है। विदेशी आक्रमण का उद्देश्य देश पर तक ही सीमित न रहा। देश की संपत्ति के साथ-साथ स्त्रियों की मान मर्यादा भी लूटने का क्रम चला। अपनी स्वाधीनता की रक्षा उनके सामने बड़ी समस्या बन गयी। आक्रमण और देश रक्षा में व्यस्त पुरुष अपनी स्त्रियों की रक्षा में विफल हो गये। इसलिए स्त्री का जीवन घर या अंतःपुर तक ही सीमित रह चुका।

उनकी बुद्धि, शिक्षा, निपुणता आदि सभी गुण एक प्रकार से दबा दिये गये। बहुत लंबे समय तक के विदेशी आक्रमण और शासन के कारण यह दबाव दीर्घकाल तक बना रहा। इसलिए स्त्रियों के जीवन को भी निष्क्रियता घेर चुकी। जीवन-रक्षा ही उनके सामने प्रमुख समस्या बन चुकी। इस स्थिति में सशक्त पुरुष पर आधारित नारी केवल वंश वृध्दि और भोग का साधन बनी। ज्ञानमूर्ति नारी निष्क्रियत्व की स्थिति में अज्ञान और अंधविश्वासों की प्रतिमूर्ति बनकर अपनी उन्नति पर कुठराघात करने लगी। आत्मरक्षा या जीवन रक्षा की भावना ने स्त्रियों को कुछ बंधनों में बांधने पर विवश कर दिया। पति के मर जाने पर नारियाँ आत्मसमर्पण कर लेती थीं। स्वेच्छायुक्त यह भावना बाद में स्त्री के लिए विवशता बनी है।

मध्यकाल में स्त्री की इतनी उपेक्षा क्यों हुई? इस पर ध्यान दें तो मालूम होता है कि मध्ययुग में शस्त्रकौशल में बाहुबल की आवश्यकता रही। शारीरिक और स्वाभाविक रूप से कोमल नारी इस दिशा में असमर्थ हुई। इसीका प्रभाव स्त्रियों के आदर पर पड़ा। अपनी आत्मरक्षा के लिए पुरुषों पर आधारित होने के कारण तथा पुरुष शक्ति जागने के कारण वह केवल चार दीवारी तक सीमित होकर पुरुषों का मनोरंजन करनेवाली बनी। इसलिए स्त्री मात्र भोगवस्तु बन गयी। इतिहास काल में कुछ वीर नारियाँ, विदुषी स्त्रियाँ दिखायी पड़ने पर भी उनकी संख्या बहुत कम है।

18.1.3.3 आधुनिक काल :- बीसवीं शताब्दी तक भी स्त्रियों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं आया। स्त्रियों के सामने कई समस्याएँ उत्पन्न होने लगीं। बाल विवाह, सती-प्रथा, अशिक्षा, विवाह तथा उत्तराधिकार आदि विषय स्त्री के जीवन में विषमताएँ उत्पन्न कर रहे थे। कन्याशुल्क की प्रथा कितनी ही स्त्रियों के जीवन में अभिशाप बन गयी कि उन्हें दस साल की उम्र में ही विधवा होना पड़ता था और आजीवन विधवा बनकर ही रहना पडता था। संपत्ति के उत्तराधिकार की चिन्ता अलग थी।

पश्चिम देशों के प्रभाव से भारत में भी नारी की मुक्ति का आंदोलन चला। खासकर स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्री शिक्षा, स्त्री उन्नति के विषयों को लेकर समाज में नारी की स्थिति को ऊपर उठाने की कोशिश शुरू हुई। इसके पहले ही बाल विवाह, सतीप्रथा आदि समस्याओं के उन्मूलन के लिए राजा राममोहन राय जैसे समाज सुधारकों ने स्तुत्य प्रयास किया। शारदा कानून बनाकर बाल विवाहों पर रोक लगायी गयी। स्त्री-शिक्षा की ओर दृष्टि डाली गयी। स्त्री को चार दीवारी में बंद करने के दुष्परिणाम से परिचित लोग स्त्री की मुक्ति तथा उन्नति की दिशा में काम करने लगे। स्त्री शिक्षा, स्त्री की प्रगति की ओर विचार-विमर्श के फल स्वरूप ही स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्री शिक्षा भी एक विशेष विषय बना। इसी कारण मध्यकाल में कुण्ठित स्त्री-शिक्षा को उबारने हेतु स्वतंत्रता आंदोलन के समय जगह-जगह पर नारी शिक्षालय एवं स्कूलें खोली गयी हैं।

समाज स्त्री की अशिक्षा से उत्पन्न अंधविश्वासों का फल भोग चुका है। समाज सुधारक सामाजिक कुरीतियों पर विद्रोह करते हुए सामाजिक उन्नति के लिए स्त्री की भागीदारी पहचाने और उस ओर कोशिश करने लगे। इन सारी भावनाओं और प्रयत्नों के ही फल स्वरूप स्त्री आज दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर पा रही है। पिछले चार-पांच दशकों के अंदर देखने पर यह बात मालूम होती है कि यह बात कितनी सच है। स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्री ने पुरुषों के समान भाग लिया है। अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी खूब निभाती हुई उस समय की स्त्रियों ने सत्याग्रह किया, लाठियाँ सहीं, जेल गयीं। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में भी प्रवेश कर चुकी हैं। सामाजिक-आर्थिक पराधीनता से मुक्त आज की नारी समाज में अस्तित्व बहुत प्रभावपूर्ण ढ़ंग से स्थापित कर चुकी है। आज संसद में भी महिला आरक्षण बिल के अनुमोदन की बात जोर पकड़ चुकी है। परिणामतः देश की विधानसभाओं में तैंतीस प्रतिशत महिलाओं के लिए प्रवेश सरल होगा।

18.1.4 सामाजिक या पारिवारिक जीवन में नारी :-

18.1.4.1 सामाजिक जीवन में नारी :- भारतीय नारी का समाज में अपना विशिष्ट आदर और सम्मान है। वेदकाल से लेकर आज तक वह समाज की उन्नति में पुरुषों के साथ अपना सहयोग देती आयी है और आ रही है। कुछ समय तक उनकी दशा में उन्नति रुक गयी है, फिर भी आज वह सामाजिक रूप से शक्ति शाली है। समाज में वह हर क्षेत्र में अपना सामर्थ्य प्रस्तुत कर रही है। सामाजिक निर्माण में भागीदार हो रही है। इतना ही नहीं, राष्ट्र निर्माण में भी वह अपनी भूमिका निभा रही है। आज नारी का स्थान समाज में व्यापक बन गया है। नारी का अबला रूप और शक्ति स्वरूपिणी रूप दोनों समाज में विद्यमान हैं। जीवन के विविध रूपों का पालन वह बखूबी से निभा रही है। विज्ञान के क्षेत्र में, राजनीति में, चिकित्सा के क्षेत्र में, और प्रशासन में नारियों का बड़ा योगदान रहा। पहले चिकित्सा, शिक्षा क्षेत्र तक सीमित नारी आज आसमान में उड़ान भर रही है और कानून भी बना रही है। कानून को अमल में ला रही है, देश-रक्षा में, देश के संवर्धन में अपना योगदान दे रही है। आज के भारतीय समाज में नारी उन्मुक्त और आदरणीय स्थान प्राप्त कर चुकी है। सामाजिक दृष्टि से हो, पारिवारिक दृष्टि से हो अथवा वैज्ञानिक दृष्टि से- वह अपने सभी अधिकार प्राप्त करती रही और भी करने को आगे बढ़ रही है। वैज्ञानिक रूप से भी स्त्री आज स्वतंत्र है। उन्हें अपनी पहुँच और हकों की जानकारी है। अपनी हक के लिए वह लड़ सकती है और हक पा सकती है। आज नारी आत्मनिर्भर है। वह पुरुष पर आधारित नहीं पुरुष के समान हर क्षेत्र में चाहे पृथ्वी पर हो या गगनतल में, सक्षम होकर अपना क्रिया-कलाप निभा रही है। आजकल कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जिसमें स्त्रियों का प्रवेश न हो।

18.1.4.2 पारिवारिक जीवन में नारी :- भारतीय परिवार के जीवन में पुरुष से ज्यादा नारी का विशिष्ट स्थान है। नारीविहीन घर या परिवार की तुलना दीपरहित मंदिर से की जाती है। नारी घर की शोभा है। पुरुष की अर्धांगिनी है। समाज में पुरुष को जो ख्याति मलती है उसका प्रमुख श्रेय नारी को ही दिया जाता है। पुरुष के हर काम में कंधे से कंधा मिलाकर वह अपनी गृहस्थी ठीक संभालती है और सच्चे अर्थ में अर्धांगिनी कहलाती है। घर के बाहर अपने विस्तृत क्षेत्र में क्षमता का परिचय देने पर भी नारी अपने आप को गृहिणी, माता के पद पर बिठाकर गर्व और गौरव पाना चाहती है। यही भावना आज तक भारतीय संस्कृति की गरिमा बनी हुई है। भारतीय संस्कृति आज भी दुनियाँ के सामने सिर ऊँचा कर खड़ी हो रही है तो इसका एकमात्र कारण भारत की नारी ही है। भारतीय नारी का जीवन संसार में आदर्शमय जीवन है। नारी अपने परिवार की उन्नति के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करती है। परिवार के संचालन में ही वह अपने जीवन की सार्थकता मानती है। पुरुष के जीवन में एक सुदृढ़ आलंबन बनकर उसे प्रेरणा देती रहती है। नारी की इस पारिवारिक उन्नति की भावना स्वार्थपूर्ण न होकर बड़ी विशाल है। स्वस्थ परिवार का निर्माण स्वस्थ समाज का निर्माण ही है। पर यह कहना वास्तव होगा कि भारतीय समाज में सभी नारियाँ गौरवपूर्ण स्थान पर नहीं हैं। अभी अधिकांश नारियाँ अनेक समस्याओं का सामना कर रही हैं और उन पर विजय पाने के लिए निरंतर संघर्ष कर रही हैं।

18.1.5 नारी शिक्षा का ध्येय :-

शिक्षा व्यक्ति के मानसिक स्तर को ऊँचा उठाने वाला साधन है। चाहे स्त्री हो या पुरुष उसे शिक्षा की आवश्यकता है। नारी के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा के अभाव में ही नारी को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। नारी के सहयोग के बिना परिवार निर्माण असंभव है। ऐसी स्थिति में स्वस्थ मानसिकरूप से शक्तिशाली स्त्री की उन्नति परिवार के लिए अभीष्ट है। नारी शिक्षा की आवश्यकता प्राचीन काल में भी महसूस की गयी है। वेद और पुराण

काल में कई विदुषीमणियाँ मिलती हैं। मध्यकाल में इस दशा में थोडा व्यवधान आ गया। आधुनिक वैज्ञानिक युग में नारी-शिक्षा दिन दूनी रात चौगुनी की वृद्धि कर रही है। आज की नारी पुरुषों के समान घर और बाहर अपनी मानसिक शक्ति का परिचय दे रही है। आजकल शिक्षा प्राप्ति मानसिक शक्ति का संवर्धन न होकर मात्र आजीविका-प्राप्ति का साधन बनती जा रही है। इसमें नारी शिक्षा के ध्येय में परिवर्तन आ रहा है। नारी-शिक्षा जीविका समुपार्जन के साथ परिवार तथा संतान को सुचारु रूप से चलाने में समर्थ होनी है। एक स्वस्थ समाज की स्थापना इससे संभव होती है। कभी-कभी और कहीं-कहीं नारी-शिक्षा जीवन के लिए अभिशाप भी बनती जा रही है। वह आर्थिक रूप से स्वावलंबी और आत्मनिर्भर तो हो रही है लेकिन पारिवारिक विघटन के लिए बाध्य बनती जा रही है। नारी शिक्षा का ध्येय पुरुष से स्पर्धा लेने तक ही सीमित नहीं, बल्कि ज्ञान समुपार्जन के साथ-साथ पूर्ण सहयोग की दिशा में हो, तभी परिवार और समाज का कल्याण होगा।

18.1.6 नारी-स्वतंत्रता का मूल्य :-

आज की नारी शिक्षा, स्वावलंबन, कानूनी हक आदि के द्वारा स्वतंत्र बनी हुई है। वह किसी पाबंदी के बिना अपना हक हासिल कर सकती है। अपनी इस स्वतंत्रता का उपयोग वह अपनी उन्नति के हर मार्ग में कर सकती है। नारी-स्वतंत्रता एक ओर हर्ष का कारण है तो दूसरी ओर कुछ-कुछ संदर्भों में विघटन या विनाशक रूप धारण कर रही है। भारतीय परिवार और समाज की व्यवस्था सुचारु रूप से चलती आ रही है उसमें कहीं-कहीं दरारें पड़ने की संभावना उत्पन्न हो रही है। नारी-स्वतंत्रता आज कई दूसरे प्रश्न मानव समाज के सामने खड़ी कर रही है। बच्चों के प्रति अपनी जिम्मेदारी न निभा पाने का परिणाम हम आये दिन अखबारों में पढ़ रहे हैं और देख रहे हैं कि मातृ-स्नेह से वंचित बच्चे अनुशासनहीन बन रहे हैं। लेकिन यह सभी विषयों में या सभी नौकरीपोश नारियों के घरों में हो रहा है - ऐसी बात नहीं। नारी आज बहुत कुशलता के साथ अपना घर-परिवार और नौकरी दोनों प्रकार के दायित्वों का पालन कर रही है। यद्यपि पुरुष प्रधान भावना इस स्वतंत्रता की कई बुराइयों से युक्त सोचती रहने पर भी अधिकतर स्त्रियों के विषय में यह गलत साबित हो रही है कि स्त्री स्वतंत्रता परिवार और समाज के लिए नष्ट कारक है। एक ओर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा और उसका उपयोग कर रही है। दूसरी ओर एक स्त्री के रूप में अपना दायित्व निभा रही है।

18.1.7 आधुनिक समाज में नारी :-

वर्तमान जीवन विज्ञान पर आधारित है। इस वैज्ञानिक और भूमंडलीकरण युग का प्रभाव जीवन और जीने के दृष्टिकोण और विचारों पर पड़ना स्वाभाविक ही है। इसलिए जीवन मूल्यों में परिवर्तन आकर जीवन यांत्रिक और भैतिक बन गया है। अर्थवाद और भौतिक वाद के शिकंजे में आये जीवन में नैतिक और आदर्श मूल्यों के प्रति निष्ठा कम होती जा रही है। यह परिवर्तन समाज में अनिवार्य बन गया है। ऐसी स्थिति में पुरुष के साथ-साथ नारी जीवन के आदर्शों, भावनाओं में पूर्ण रूप से न सही आंशिक परिवर्तन आना स्वाभाविक और सहज ही है। आज की नारी समाज में एक ओर अपना पूर्ण अस्तित्व जमा रही है। तो दूसरी ओर वैयक्तिक जीवन की कुंठाओं से भी गुजर रही है। संवैधानिक दृष्टि से वह पूर्ण स्वतंत्र तो है ही लेकिन उसके सामने असुरक्षा की भावना आज भी दूर नहीं हुई।

कानून बनाना अलग है और विचारों को बदलना अलग है। जब तक विचारों में परिवर्तन नहीं आता तब तक नारी उपेक्षित मान सम्मान और हक से वंचित रह जाती ही है। आज के इस युग में जो अमेरिका आदि विदेशों में रहते हुए दहेज के लिए, संपत्ति के लिए या अपने पुरुषाधिपत्य की भावना को समृद्ध रखने के लिए नारियों का शोषण हो ही रहा है। इतनी

पढ़ी-लिखी तथा आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होकर भी नारी की हत्याएँ और आत्म समर्पण की घटनाएँ नित्य हम पढ़-सुन रहे हैं। इस स्थिति को देखते हुए यह नहीं कह सकते कि आज नारी अपने अधिकारों को पाकर सब प्रकार के शोषण से मुक्त हो गयी है। नारी को चाहिए कि अपने हकों पर किसी प्रकार का आंच न आने पड़े। इस ओर स्वयं नारी ही अब प्रयत्नरत है। आजकल नारी विर्मश और स्त्रीवाद इस ओर सक्षम प्रयत्नशील हैं। संघर्ष के समभागी बनने के लिए ही नहीं बल्कि आज की नारी अपने को मानव समाज का अंश स्वीकार करने के आंदोलन में लगी हुई है। आज वह पुरुष का नहीं बल्कि पुरुष वाद या पुरुषाधिक्य भावना का विरोध करती हुई अपने हक के लिए लड़ रही है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए तथा अपने को मानवी का सम्मान प्राप्त करने वह जूझ रही है।

एक समय ऐसा आ गया कि माँ के पेट में ही लड़कियों की हत्याएँ होती थीं। वैज्ञानिक प्रगति उनके लिए अभिशाप रहा। इसलिए भूण हत्याएँ अधिक होती थीं। कानून के द्वारा इसकी वृद्धि कम कर दी गयी। अंधविश्वास घर- परिवार वालों का शोषण और अत्याचार, वृद्धावस्था में संतान का निरादरण जैसी प्राचीन समस्याओं के साथ आज नारी एसिड़ हमले, लैंगिक शोषण, सैबर अत्याचार जैसी नयी-नयी समस्याओं का शिकार हो रही है। नारी की समस्या आज एक देश, एक वर्ग एक जाति की न रहकर समूची मानव जाति की बनी हुई है। नारी का शोषण वर्ग शोषण, जाति या संप्रदाय के शोषण तथा महिला उत्पीड़न के रूप में हो रहा है। यह शोषण केवल अनपढ़ स्त्रियों तक ही सीमित नहीं पढ़ी-लिखी कमाऊ महिलाएँ भी इसका शिकार हो रही हैं। मध्यकालीन विलास वस्तु की छाप से आज भी वह नहीं बच पा रही है। नारी पुरुष की दृष्टि से केवल वासना की पूर्ति की चीज ही है। इस दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

18.1.8 उपसंहार :-

समाज में द्वितीय दर्जा प्राप्त नारी आज अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है। अपनी शक्ति पहचानने लगी है। नारी समस्याओं पर लड़ने और सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के प्रयत्न में संयुक्त राष्ट्रसंघ से लेकर ऐच्छिक संस्थाओं तक प्रयत्नशील हैं और स्त्री समस्याओं पर अवाज उठा रही हैं। महिलाओं की मुक्ति का प्रयास कर रही हैं। नारीवाद और महिलामुक्तिसंघ जैसे आंदोलन चल रहे हैं। आधुनिक युग में नारीवाद अत्यंत दृतगति से उभरकर सामने आया। इस विचारधारा से चेतनाप्राप्त महिलाएँ असमानताओं पर प्रश्न करने लगी हैं। वे आज अपनी अस्मिता को पहचानकर शोषण और अन्याय का मूल कारण खोजने लगी हैं और पितृसत्ता के खिलाफ प्रश्न करना भी सीख गयी हैं। आंदोलनों के फलस्वरूप संवैधानिक और कानूनी तौर पर नारी शोषण के प्रति कुछ कानून अमल में लाये गये। गृहहिंसा निरोधक कानून इसका प्रमुख रूप है। इसीके आधार पर नारी पारिवारिक शोषण का डटकर सामना कर रही है। अब समाज को चाहिए कि नारी का शोषण करनेवाली प्रथाओं का तिरस्कार करे और नारी को उचित स्थान दे।

18.1.9 बोध-प्रश्न :-

1. प्राचीन समाज में नारियों के स्थान पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. मध्ययुग में स्त्रियों की दशा कैसी थी? विस्तार से समझाइए।
3. आधुनिक युग में महिलाओं के स्थान पर टिप्पणी लिखिए।
4. परिवार तथा समाज की प्रगति में नारी की भूमिका क्या होती है?
5. महिला-आरक्षण बिल के बारे में आप क्या जानते हैं? अपने शब्दों में लिखिए।

18.1.10 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. प्रेरणाप्रद निबंध - सुमित खुराना
2. सामाजिक निबंध - प्रवीण कुमार बंदवाल
3. सर्वोत्तम हिन्दी निबंध - जगदीश शर्मा, सुनीता चौहान
4. सर्वोत्तम हिन्दी निबंध - आर.आर.गुप्त
5. आधुनिक हिन्दी निबंध - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना

Dr. U. Naga Sarvari,
Lecturer,
Department of Hindi,
S.R.R.&C.V.R. College,
Vijayawada

पाठ - 18.2

भारत में बेरोजगारी की समस्या

इकाई की रूपरेखा :

18.2.1 उद्देश्य
18.2.2 प्रस्तावना
18.2.3 बेरोजगारी के रूप
18.2.3.1 पूर्ण बेरोजगारी
18.2.3.2 अर्ध बेरोजगारी
18.2.3.3 शिक्षित बेरोजगारी
18.2.3.4 अशिक्षित बेरोजगारी
18.2.3.4.1 किसानों की बेरोजगारी
18.2.3.4.2 कारीगरों की बेरोजगारी
18.2.3.4.3 मज़दूरों की बेरोजगारी
18.2.4 बेरोजगारी के कारण
18.2.4.1 अनियंत्रित जनसंख्या
18.2.4.2 शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि
18.2.4.3 सरकारी नीतियाँ
18.2.4.4 कमजोर अर्थ-व्यवस्था
18.2.4.5 लघु उद्योगों का नाश
18.2.4.6 कम्प्यूटरीकरण
18.2.4.7 भौतिकवादी जीवन के प्रति आकर्षण
18.2.5 बेरोजगारी के परिणाम
18.2.6 बेरोजगारी को दूर करने के उपाय
18.2.6.1 बढ़ती जनसंख्या पर रोक
18.2.6.2 कुटीर-उद्योग धंधों का विकास
18.2.6.3 शिक्षा में परिवर्तन
18.2.6.4 लोगों की मानसिकता में परिवर्तन
18.2.7 उपसंहार
18.2.8 बोध-प्रश्न
18.2.9 सहायक ग्रंथ-सूची

18.2.1 उद्देश्य :-

'भारत में बेरोजगारी' की चर्चा करते हुए, वर्तमान समाज में उस समस्या का भयानक रूप, उसके कारण तथा बेरोजगारी से उत्पन्न होनेवाली बुराइयों का विश्लेषण इस निबंध में किया गया है। इसके साथ-साथ बेरोजगारी को दूर करने के उपायों के बारे में जानकारी दी गयी है। मानव जीवन ही समस्याओं से भरपूर है। समस्या किसी एक व्यक्ति, समय, स्थान, देश, जाति या वर्ग तक सीमित नहीं रहती। रोजी-रोटी की समस्या सबके लिए एक है। जीविका चलाने के लिए आवश्यक धन कमाना सब लोगों की आवश्यकता है। धन कमाना काम करने पर आधारित होता है। जब मानव को अपनी योग्यता के अनुसार काम मिल जाता तो वह खुशी के साथ आगे बढ़ता है। ऐसा न होता तो इसका परिणाम व्यक्ति के साथ-साथ समाज और देश को भी भुगतना पड़ता है। इसलिए हर व्यक्ति को जीवनोपयोगी काम मिलना ही है जो उसका प्राथमिक अधिकार है। जिस अवस्था में व्यक्ति अपनी जीविका का अर्जन करने में असमर्थ हो जाता है उसे बेरोजगारी कहा जाता है।

18.2.2 प्रस्तावना :-

आज विश्व के सभी देश किसी न किसी समस्या से ग्रसित हैं। अन्य समस्याओं की तुलना में बेरोजगारी की समस्या विकासशील देशों की प्रधान समस्या है। भारत जैसे देश में तो इसका भयंकर रूप देखने को मिलता है। बढ़ती हुई महंगाई के साथ साथ बेरोजगारी बहुत गंभीर समस्या बनी हुई है। काम करनेवालों की अधिक संख्या और काम की कमी से यह समस्या उत्पन्न होती है। यह समस्या केवल आर्थिक स्थिरता तक ही सीमित नहीं रहती, सामाजिक सुस्थिरता के लिए भी घातक बन जाती है। यद्यपि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को रोजगारी पाने का अधिकार संविधान में दिया गया, तथापि वास्तविकता में रोजगारी पाना बहुत मुश्किल हो गया है।

18.2.3 बेरोजगारी के रूप :-

मानव अपने पास सब प्रकार के काम करने की योग्यता रखकर भी जब अपनी जीविका सुसंगठित रूप से नहीं कमा पाता तब उस स्थिति को बेकारी या बेरोजगारी कहा जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति शरीरिक, मानसिक और शैक्षिक स्वस्थता रखते हुए भी अपनी जीविकोपार्जन में असमर्थ रहता है जो उसकी बुनियादी आवश्यकता है। इस बेरोजगारी को निम्नलिखित ढ़ंग से विभाजित किया जा सकता है।

18.2.3.1 पूर्ण बेरोजगारी :- यह बेरोजगारी का अत्यंत भयानक रूप है। उच्च शिक्षा-प्राप्त लोग भी बेरोजगारी की समस्या से पीडित हैं। काम की कमी तथा काम करनेवालों की अधिकता इसका कारण है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी युवा पीढ़ी अपनी योग्यता के अनुसार रोजगारी प्राप्त करने में ज्यादातर असफल हो रही है, नौकरी की खोज में विफल साबित हो रही है। उधर कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में भी स्थिति जीविकोपार्जन के लिए दूभर बन जाती है तो उसे पूर्ण बेरोजगारी के अंतर्गत रखा जा सकता है। व्यक्ति जीविका के लिए दफ़्तर या कारखानों के चक्कर काटने पर भी अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाता। उसे अपनी जीविका चलाने हेतु संघर्ष करना पड़ता है।

18.2.3.2 अर्ध बेरोजगारी :- यदि रोजगारी संपूर्ण न होकर आंशिक या अस्थयी होता है तो वह रूप 'अर्ध बेरोजगारी' है। वर्तमान समाज में सरकारी रोजगारी अर्ध रोजगारी या आंशिक रोजगारी है। विद्या, चिकित्सा जैसे

महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में भी इस प्रकार की बेरोजगारी दिखायी देती है। इस बेरोजगारी के अंतर्गत व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार तो रोजगारी प्राप्त नहीं कर सकता फिर भी किसी न किसी प्रकार जीविका चलाने में कुछ हद तक सक्षम रह सकता है।

18.2.3.3 शिक्षित बेरोजगारी :- जो बेरोजगारी मात्र शिक्षित लोगों के साथ रहती है उसे शिक्षित बेरोजगारी कहा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर एक या दो महीने काम पर नियुक्त करके आवश्यकता की पूर्ति के बाद नौकरी से निकाल देनेवाली कंपनियों में इस प्रकार की बेरोजगारी दिखाई देती है।

18.2.3.4 अशिक्षित बेरोजगारी :- शिक्षित बेरोजगारी का संबंध समाज और सरकार पर आधरित है तो अशिक्षितों की बेरोजगारी मौसम पर निर्भर है। हमारा देश प्राथमिकरूप से कृषि-प्रधान देश है। यहाँ वातावरण के आधार पर भी कुछ क्षेत्रों में रोजगारी निर्भर करती है। उदाहरण के लिए गन्ने (sugar cane) की खेती कुछ ही महीनों के लिए चलती है, क्योंकि गन्ने की फसल एक निर्धारित मौसम में ही उगती है। तब गन्ने से जुड़ी शक्कर मिलों में काम निर्धारित समय के लिए ही सीमित होता है। इस प्रकार के बेरोजगारों में किसान, कारीगर और मजदूर वर्ग हैं।

18.2.3.4.1 किसानों की बेरोजगारी :- उपर्युक्त उदाहरण के द्वारा स्पष्ट होता है कि किसान अपने खेत में कुछ समय तक ही फसल उगा सकता है। बाद में उसे खाली रहना पड़ता है। आज के वैज्ञानिक युग में भी इस प्रकार की बेरोजगारी पूर्ण रूप से दूर नहीं हुई। प्रकृति पर नियंत्रण किसी के वश की बात नहीं। मौसम, वर्षाभाव, बाढ़ आदि के साथ-साथ कृषि की पद्धति, फसलों के प्रकार, भूमि की स्थिति आदि भी किसानों की बेरोजगारी के कारण हैं।

18.2.3.4.2 कारीगरों की बेरोजगारी :- कारीगर स्वतंत्र होकर अपनी जीविका चलाते हैं। फिर भी साल भर काम करके जीविका कमाने में उन्हें कई दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। प्राचीन भारत के लोग मुख्यतः कृषक ही नहीं बल्कि बुनकर, कुंभकार, जुलाहे, सुनार-लुहार भी थे। गाँव ही मुख्यतः इनका आश्रय देते थे। अतः इन्हें शहरों में आने की अधिक आवश्कता नहीं रहती थी। पर अंग्रेज़ों के आगमन के बाद स्थिति बिलकुल बदल गयी। इतिहास साक्षी है कि औद्योगिक क्रान्ति का सबसे पहला शिकार था हमारे देश के बुनकरों, हस्तकलाकारों तथा कारीगरों का वर्ग। अंग्रेज़ों की नीति के कारण भारत में कारीगरों का सत्यानाश हो गया। खेद की बात यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सरकारों ने इन क्षेत्रों पर ध्यान नहीं दिया और गाँवों में लघु तथा गृह उद्योंगों के विकास के लिए सही प्रयास नहीं किया। फलतः जो पेशे पहले करोड़ों जनता को जीविका देते थे- अब मृतप्राय बन गये। गाँवों में आत्मनिर्भरता से जीवन-यापन करती आम जनता जीविका की खोज में शहरों में आने लगी।

18.2.3.4.3 मज़दूरों की बेरोजगारी :- बेरोजगारी की चरमसीमा मज़दूर वर्ग में दिखाई देती है। भवन निर्माण के मज़दूर, खेतों में काम करनेवाले, पुल-बांध आदि बनानेवाले- इन सबको साल भर मज़दूरी नहीं मिलती। इनकी स्थिति इतनी बदतर है कि यदि एक दिन काम नहीं मिला तो इनके परिवार को भूखा रहना पड़ता है। दुःख की बात है कि इनकी संख्या बेरोजगारों में सबसे ज़्यादा है।

18.2.4 बेरोजगारी के कारण :-

आज बेरोजगारी मात्र एक समाज की नहीं बल्कि विश्व की समस्या बन बैठी है। इसके कारण भी कई हैं।

18.2.4.1 अनियंत्रित जनसंख्या :- बेरोजगारी का मुख्य कारण है- देश की आबादी पर नियंत्रण नहीं होना। परिवार नियोजन के प्रचार-प्रसार के बाद भी भारत में आबादी दिनों दिन बढ़ रही है। बढ़ती हुई आबादी के अनुसार काम की बढ़ौती न होने के कारण बेरोजगारी बढ़ रही है। भारत की आबादी का एक तिहाई वर्ग युवापीढ़ी है। युवावर्ग में अधिकतर बेरोजगारी विद्यमान है।

18.2.4.2 शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि :- शिक्षा के क्षेत्र में विकास ने भी रोजगारी पर प्रभाव डाला है। सरकार की ओर हर साल नये नये कॉलेज, नये तकनीकी कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना हो रही है। शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की उदारवादी नीति भी मध्यवर्गीय शिक्षित बेरोजगारी को जन्म दे रही है। भारत की शिक्षा प्रणाली में जो कमियाँ हैं, उनके कारण भी बेरोजगारी निरंतर बढ़ रही है। उदाहरणार्थ जापान जैसे देशों में स्कूल के स्तर में ही पेशेवर शिक्षा लागू हो रही है जब कि हमारे देश में पेशेवर शिक्षा को बहुत कम महत्त्व दिया जा रहा है। रोजगारी की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा प्रणाली की रचना नहीं हो रही है। अतः भारतीय छात्र तथाकथित शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी जीविकोपार्जन करने में विफल साबित हो रहे हैं। शिक्षा रोजगारोन्मुखी न होने के कारण विद्यालय बेरोजगारों के कारखाने मात्र रह गये हैं।

18.2.4.3 सरकारी नीतियाँ :- भारत के प्रति अंग्रेज़ी सरकार की नीति ही भारतीय अर्थ-व्यवस्था का समूल नाश कर गयी। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भी सरकारों की विफल नीतियों के कारण विकास के क्षेत्र में भारत का स्थान पिछड़ा रह गया है। सरकारों की बेईमानी, घूसखोरी, स्वार्थपूर्ण नीति, भाई-भतीजावाद आदि के कारण देश की बेरोजगारी दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है।

18.2.4.4 कमजोर अर्थ-व्यवस्था :- रोजगारी के अवसर बढ़ाने के उद्देश्य से आर्थिक विकास के प्रारंभ में विशेषज्ञों ने औद्योगीकरण एवं उच्च विकास दर को प्राथमिकता दी। लेकिन व्यवहार में यह उद्देश्य सफल न हुआ तथा उद्योग क्षेत्र पूँजीप्रधान हो गया। इसमें श्रमशक्ति की उपेक्षा की गयी। कमजोर अर्थव्यवस्था रोजगारी के अवसर प्रदान करने में असमर्थ रह गयी। विकास के साधनों का अभाव, धन की कमी आदि कारण रोजगारी के अवसरों को बुरी तरह से प्रभावित कर रहे हैं।

18.2.4.5 लघु उद्योगों का नाश :- पुराने जमाने में लोग अधिकतर लघु-कुटीर उद्योगों पर निर्भर होकर जीवन-यापन करते थे। सारे गाँव की आवश्यकताओं की पूर्ति गाँव में रहती जनता ही आपस में कर लेती थी। एक तरह से भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार गाँव था जो परस्पराधारित था। भारतीय लघु उद्योगों में वस्त्रों को बुनना, हस्तकलाएँ तथा कारीगरी अत्यंत प्रसिद्ध थीं और इनकी निपुणता की प्रशंसा विदेशों में भी खूब होती थी। लेकिन आधुनिक काल में विशेषकर औद्योगिक क्रान्ति के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णतः परिवर्तित हो गयी। औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा यंत्रीकरण के कारण अब संपत्ति का आधार गाँव नहीं शहर बन गया। विदेशी कंपनियों की स्थापना भी लघु उद्योगों के नाश का कारण है। आजकल के भूमण्डलीकरण के दौर में भारतीय लघु उद्योगों के अवशेष भी न रहने की स्थिति है।

18.2.4.6 कम्प्यूटरीकरण :- भारत में प्रौद्योगिकी और कम्प्यूटरीकरण के विकास के कारण यद्यपि रोजगारी में नये अवसर जरूर प्राप्त हुए तथापि रोजगारी की बुनियादी स्थापना एवं स्थिरीकरण में यह प्रक्रिया सफल हो नहीं पायी। इसका कारण शिक्षा के साथ जुड़ा हुआ है। एक ओर दुनिया बहुत तेज़ी से आगे बढ़ती जा रही है और हर क्षेत्र में नये-नये अवसर उभर रहे हैं, किन्तु आवश्यक तकनीकी शिक्षा के अभाव के कारण देश की अधिकांश जनता इन अवसरों को हासिल नहीं कर पा रही है। देश की मानवशक्ति का पूर्णतः उपयोग नहीं हो रहा है।

18.2.4.7 भौतिकवादी जीवन के प्रति आकर्षण :- भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद लोगों की मानसिकता में परिवर्तन आया। शिक्षा का उद्देश्य साक्षरता न होकर नौकरी करना रह गया। आश्चर्य की बात है कि अंग्रेजों के जमाने में मुनीमगिरी के लिए जिस शिक्षा प्रणाली का आयोजन हुआ था, उसीका आज भी इस्तेमाल हो रहा है। अतः शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ बेराजेगारी भी बढ़ती गयी। शिक्षाप्राप्त लोगों की मानसिकता में परिवर्तन आकर सरकारी नौकरी या बाबूगिरी

करने की भावना आयी। गाँवों की जनता भी शहरों की ओर भागने लगी। विदेशी सभ्यता के प्रति आकर्षण, विदेशी चीज़ों के प्रति मोह के कारण स्वदेशी वस्तुओं तथा पेशों का तिरस्कार होने लगा। कई लोग इसी मानसिकता के कारण शिक्षा पाकर भी सफेदपोश नौकरी की प्रतीक्षा में बेरोजगार रह जाते हैं।

18.2.5 बेरोजगारी के परिणाम :-

यदि हम प्रश्न करेंगे कि बेरोजगारी का दायित्व किसका है, तो कई जवाब सामने आते हैं। व्यक्ति रोजी-रोटी पाने के लिए निरंतर संघर्ष करता है। उसका परिवार उसे योग्यता प्रदान करने में सहायक होता है तो समाज या सरकार की जिम्मेदारी यह होती है कि व्यक्ति की उन्नति के लिए अवसर प्रदान करे। सरकार की आर्थिक स्थिति पर व्यक्ति की रोजगारी निर्भर रहती है। पर निश्चित है कि सरकार देश में हर एक को नौकरी नहीं दिला सकती। हाँ..हर एक व्यक्ति के लिए जीविकोपार्जन के मौके प्रदान का दायित्त्व तो सरकार का ही है। बेरोजगारी के परिणाम भी समाज पर भयानकरूप से पड़ते हैं। बेरोजगारी से सीधे युवापीढ़ी प्रभावित होती है। बेरोजगारी से युवापीढ़ी की मानसिक दशा विकृत बनने का खतरा है। ऐसे में वह निराशाग्रस्त होकर अपने जीवन और परिवार के लिए ही नहीं देश एवं समाज के लिए भी संकट पैदा कर सकती है तथा कुण्ठाग्रस्त होकर देश को हानि पहुँचाने की आशंका भी रहती है।

भारत में बढ़ते हुए अपराध जो देश तथा मानवता के लिए विध्वंसकारी हैं, उसके मूल में शिक्षित एवं महत्त्वाकांक्षी युवकों की बेरोजगारी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। क्योंकि काम के बिना व्यक्ति आलसी बनता है। आलस्य से उत्पन्न असंतुष्टि अशांति में परिवर्तित हो जाती है। इसी अशांति के चंगुल में फँसकर मानवमन शैतान का निवास बनता है। विवेकशक्ति को खोकर वह अपने जीवन तथा देश की प्रगति को बरबाद करता है। देश की अनुशासनहीनता हिंसा, लूट-पाट जैसी असामाजिक बुराइयों को भी जन्म दे सकती है। इसमें संदेह नहीं है कि अधिकांश युवा लोगों के आतंकवाद की ओर आकर्षित होने में भी बेरोजगारी का ही बड़ा हाथ है।

18.2.6 बेरोजगारी को दूर करने के उपाय :-

बेरोजगारी आज एक राष्ट्र या समाज तक सीमित न होकर सारे विश्व के लिए अभिशाप बन गयी। इस अभिशाप को दूर करने के लिए इन उपायों को अमल किया जा सकता है।

18.2.6.1 बढ़ती जनसंख्या पर रोक :- बेरोजगारी को दूर करने के लिए सबसे पहले जनसंख्या पर रोक लगानी होगी। इसके लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम को सख्ती से अमल करना होगा। सरकार तथा गैरसरकारी संस्थाओं के प्रयासों के द्वारा इस कार्यक्रम को सफल बनाया जा सकता है। जनसंख्या की वृद्धि केवल रोजगारी पर ही नहीं- अन्न, जल आदि पर भी प्रभाव दिखाती है और पर्यावरण पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है।

18.2.6.2 कुटीर-उद्योग धंधों का विकास :- भारत जैसे श्रमबहुल और संसाधनों से युक्त देश को भी रोजगारी की चिंता करनी पड़ रही है- यह खेद की बात है। हमारे कृषिप्रधान देश में कृषि संबंधी उद्योगों को मज़बूत करना होगा तथा कुटीर, लघु और पुराने श्रमपधान उद्योगों को फिर से क़ायम करना होगा। भारत प्राकृतिक संपत्ति की दृष्टि से भी भरा-पूरा देश है। अतः इन प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रयोग करने से जनता को आजीविका मिल सकती है। तभी जैसे दिनकर जी ने कहा 'चाहे पल में धरती स्वर्ग बना सकते हैं'! औद्योगिक प्रगति के लिए श्रमशक्ति का पूरा पूरा उपयोग हो।

कुशल श्रमशक्ति को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षण की ओर भी ध्यान देना चाहिए। तभी कुटीर और लघु उद्योगों में भी प्रशिक्षित और विषय विशेषज्ञ निकलेंगे और श्रमशक्ति की निपुणता निखर उठेगी। तभी हमारा देश विदेशों में भी फिर से अपना प्रभाव जमा सकता है।

18.2.6.3 शिक्षा में परिवर्तन :- भारतीय शिक्षाप्रणाली में व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा का पूर्णतः अभाव है। शिक्षा का उदारीकरण केवल नौकरीपेश युवा पीढ़ी का निर्माण कर रहा है। तकनीकी शिक्षा की माँग की आज की दुनिया में शिक्षा क्लरिकल मेजों की शोभा बढ़ानेवाली हुई है जब कि आज क्लर्क की जरूरत ही नहीं इसलिए शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ शिक्षित बेरोजगारों की भी वृद्धि हो रही है। प्राथमिक स्तर से लेकर स्नातक स्तर की शिक्षा पर पैसे तो खर्च हो रहे हैं लेकिन बेराजगारी की कमी नहीं हो पा रही है। इसलिए शिक्षा का व्यावसायीकरण करना आवश्यक है। सैद्धांतिक शिक्षा के स्थान पर व्यावसायिक शिक्षा को लागू करना होगा। अर्थात् शिक्षा को गुणवत्ता प्रदान करना है। इसके लिए यद्यपि सरकार कदम उठा रही है और प्रयास कर रही है, फिर भी अनेक दोषों से युक्त होने के कारण व्यवहार में सफलता नहीं मिल रही है। समस्या यह है कि शिक्षा के व्यावसायीकरण में प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी, पाठ्यक्रम की कमी, धन की कमी आदि कारणों से अनेक संदेह उत्पन्न हो रहे हैं।

18.2.6.4 लोगों की मानसिकता में परिवर्तन :- बेरोजगारी के निर्मूलन के लिए सबसे पहले भारतीय जनता को अपना मानसिकपटल संपूर्णरूप से बदलना पड़ेगा। चीन जैसे देशों को आदर्श मानकर चलेंगे, तभी देश में प्रगति संभव होगी। देश की युवापीढ़ी को किसी पर निर्भर न रहकर नौकरी की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। उसे अपने पैरों पर आप खड़े होने का प्रयास निरंतर करते रहना चाहिए। इस दिशा में अभी बहुतकुछ प्रगति की प्रतीक्षा रहेगी। श्रम का महत्त्व जानना, सरकारी घोटालों के खिलाफ सजग रहना, सरकारी कर्मचारियों से उचित कार्यवाही करवाना- ये सब देश की युवापीढ़ी की ही जिम्मेदारियाँ हैं। सरकार बेरोजगारी को हटाने के लिए जितनी भी योजनाएँ बनाये, जनता में मानसिक परिवर्तन न आया तो वे सब बेकार ही हैं। अतः कहना होगा कि जिस दिन देश के युवालोग खुद को आत्मनिर्भर बनायेंगे उसी दिन देश की बेरोजगारी दूर होगी।

18.2.7 उपसंहार :-

बेराजगारी की समस्या केवल एक देश की नहीं अंतर्राष्ट्रीय बन गयी है। आज इस समस्या से उत्पन्न दुष्प्रभावों का शिकार सारी दुनिया है। इसलिए यह विश्व के मंच पर इसके समाधान के उपाय खोजे जा रहे हैं। हमारे देश में भी इस समस्या के समाधान का लगातार प्रयास हो रहा है। विशेषकर साफ्टवेयर तथा आउटसोर्सिंग जैसे उभरते क्षेत्रों में भारतीय युवापीढ़ी अमरीका जैसे देश के युवावर्ग के लिए भी चुनौती दे रही है। चीन की युवापीढ़ी के लिए भी इस विषय में हमारे नौजवान ही आदर्श हैं। सरकार भी हर संभव उपाय के द्वारा बेरोजगारी को दूर करने में लगी हुई है। शिक्षा प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन देखे जा रहे हैं। तकनीकी शिक्षा के साथ-साथ पेशेवर शिक्षा को भी विद्यालयों में प्रधानता दी जा रही है। हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि आज विश्व में सबसे ज्यादा संख्या में युवा लोग भारत में ही मौज़ूद हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यदि जनता की मानसिकता में परिवर्तन लाया जाए तो बहुत कुछ प्रगति हासिल की जा सकती है और बेरोजगारी दूर होकर भारत दुनिया में सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर सकता है। आशा है कि इस दिशा में प्रयास सफल

हों और भारत तथा भारतवासियों को उज्ज्वल भविष्य मिले।

18.2.8 बोध-प्रश्न :-

1. बेरोजगारी की परिभाषा लिखते हुए उसके स्वरूप-स्भाव की चर्चा कीजिए।
2. बेरोजगारी के कितने प्रकार हो सकते हैं- सोदाहरण समझाइए।
3. शिक्षित और अशिक्षित बेरोजगारी के कितने प्रकार हैं- विस्तार से समझाइए।
4. भारतीय ग्रामीण-गृह उद्योगों की दुस्थिति के कारणों पर लघु टिप्पणी लिखिए।
5. क्या यंत्रीकरण तथा कम्प्युटरीकरण से भारत को फायदा मिला? अपनी राय संक्षेप में लिखें।
6. बेरोजगारी को हटाने के लिए सरकार को कैसे कदम उठाने चाहिए?
7. बेरोजगारी को दूर करने के उपायों पर प्रकाश डालिए।
8. आपकी दृष्टि में भारत में बेरोजगारी का जिम्मेदार कौन है?

18.2.9 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. प्रेरणाप्रद निबंध : सुमित खुराना
2. सर्वोत्तम हिन्दी निबंध : सुनीता चौहान तथा जगदीश शर्मा
3. सर्वोत्तम हिन्दी निबंध : आर.आर.गुप्ता
4. आधुनिक हिन्दी निबंध : भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
5. निबंध रत्नाकर : कैलासनाथ चतुर्वेदी

Dr. U. Naga Sarvari,
Lecturer,
Department of Hindi,
S.R.R. & C.V.R. Govt. College,
Vijayawada

पाठ - 19. 1

भूमण्डलीकरण का प्रभाव

इकाई की रूपरेखा :-

19.1.1 उद्देश्य
19.1.2 प्रस्तावना
19.1.3 भारत में भूमण्डलीकरण
19.1.4 भूमण्डलीकरण: विषय-विस्तार-प्रभाव
19.1.5 भूमण्डलीकरण से प्रयोजन
19.1.6 भूमण्डलीकरण से हानियाँ
19.1.7 उपसंहार
19.1.8 बोध प्रश्न
19.1.9 सहायक ग्रंथ-सूची

19.1.1 उद्देश्य :-

आज पूरा विश्व भूमण्डलीकरण के दौर से गुज़र रहा है। भूमण्डलीकरण अंग्रेज़ी शब्द 'ग्लोबलाइजेशन' का ही हिन्दी शब्द-रूप है। अर्थ-शास्त्री इसीको 'अन्तर्राष्ट्रीकरण' भी कहते हैं। इसे 'वैश्वीकरण' का नाम भी दिया जाता है। भूमण्डलीकरण के कारण आज विश्व का पटल ही बदल गया। इस पाठ के द्वारा हम भूमण्डलीकरण को उसके सही अर्थों में जानने का प्रयास करेंगे। भूमण्डलीकरण का विकसित और विकासशील देशों पर क्या प्रभाव है, उसका विषय-विस्तार क्या है- यह जानेंगे। साथ-साथ भूमण्डलीकरण से प्राप्त प्रयोजन क्या हैं तथा उससे हानियाँ क्या हैं- इन सभी विषयों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

19.1.2 प्रस्तावना :-

एक देश की अर्थ-व्यवस्था को विश्व की अर्थ-व्यवस्था में संगठित करने की प्रक्रिया को ही 'भूमण्डलीकरण' कहा जाता है। इस भूमण्डलीकरण ने भारत की अर्थ-व्यवस्था में एक नूतन युग का आरंभ कर दिया। एक देश से संबंधित उत्पादकों को विश्व के सभी अंतर्राष्ट्रीय-वाणिज्यिक संस्थाओं तक ले जाने के लिए भूमण्डलीकरण सहायता देता है।

19.1.3 भारत में भूमण्डलीकरण :-

सन् 1991 ई. में देश की आर्थिक स्थिति विच्छिन्न थी। गल्फ जैसे देशों की आर्थिक स्थिति का प्रभाव हमारे देश पर भी पड़ा। 'विश्व बैंक' और 'अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष' से लिये गये ऋण से हमारी आवश्यकताएँ पूरी न हो पायीं। हमारे देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी, बेरोजगारी बढ़ गयी।

इस दुस्थिति से बचने के लिए तत्कालीन वित्तमंत्री डॉ.मनमोहन सिंह के नेतृत्व में अनेक सुधार किये गये। कुछ देशों ने मिलकर सन् 1991 ई. में अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए विश्व व्यापार के लिए दरवाजे खोलने का कानून बनाया। यह विश्व सम्मेलन 'गेट समझौता' नाम से प्रसिद्ध हुआ। माँग और खपत की दृष्टि से व्यापार के लिए खेती करना, निर्यात से पाबंदियाँ हटाकर किसानों की स्थिति में सुधार लाना इसका उद्देश्य था। सन् 1994 ई. में डब्लू.टी.ओ. कानून पास हुआ और 124 देशों यथा- अमेरिका, चीन आदि के साथ दक्षिण अफ्रीका तथा भारत जैसे अन्य विकासशील देशों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए निंरतर प्रयास होते रहे। औद्योगीकरण के क्षेत्र में ऋणविधान में अनेक परिवर्तन लाये गये। विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने जो संस्करण किए, उनका अमल करना देश में आरंभ हो गया। इससे देश की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन आया। इस प्रकार श्री पी.वी.नरसिंहाराव की सरकार ने सन् 1991 ई. में भूमण्डलीकरण की नींव डाली।

19.1.4 भूमण्डलीकरण: विषय-विस्तार-प्रभाव :-

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा 'भारत का हृदय गाँवों में बसता है।' गाँवों की उन्नति से ही भारत की उन्नति हो सकती है। कृषि को विकास पथ पर आगे बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। यही कारण है कि हमारे राष्ट्रीय बाजार में रक्षा के बाद सर्वाधिक धन कृषि और गाँवों के विकास हेतु रखा गया। संचार व्यवस्था में अभूतपूर्व प्रगति के कारण दुनिया एक 'वैश्विक गाँव' में बदल गया।

विश्व के सारे देश उन्नत आर्थिक स्थिति को पाने के लिए तीन पद्धतियों का अनुकरण करने लगे। वे हैं-

1. सरलीकरण 2. निजीकरण 3. भूमण्डलीकरण

भूमण्डलीकरण से अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य की सीमा नहीं रही। हर एक देश अपनी उत्पादक वस्तुओं को विश्व में किसी जगह पर बेच सकता है। इससे देश की जीवन शक्ति आर्थक रूप से बढ़ जायेगी। इसका प्रभाव देश की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों पर अवश्य होगा। प्रौद्योगिकी विज्ञान सभी देशों के लिए समान हो गया। भूमण्डलीकरण से उत्पादक शक्तियों का आदान-प्रदान बढ़ गया। पर यह भूमण्डलीकरण विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के और विकासशील देशों के द्वारा पिछड़े देशों के शोषण का मॉडल है। कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि हमारे देश के लिए यह सही मॉडल नहीं है। पिछड़े हुए देशों के लिए यह हानिकारक है।

विश्व बैंक के अनुसार भारत में पिछड़े इलाके के प्रति व्यक्ति की आय बढ़ती जा रही है। विकासशील देशों की बचत विकसित देशों की ओर भाग रही है। यही भूमण्डलीकरण के विकास का मॉडल है। इससे पिछड़े प्रदेशों का विकास असंभव है। इस भूमण्डलीकरण का प्रभाव कृषि क्षेत्र पर अधिक पड़ा। विकासशील देश परम्परागत फसलों को उगाना छोड़कर फूल, मछली, तिलहन, कपास आदि को उगा रहे हैं जिनकी माँग पश्चिमी देशों में अधिक है। उसका फल यह हुआ कि आबादी के लिए पर्याप्त खाद्यान्न का उत्पादन कम हो गया और देशवासियों की भूख को मिटाने के लिए विदेशों पर आश्रित होना पड़ा। इसके लिए खेती को यांत्रिक बनाना तथा उसका व्यवसायीकरण करना केवल समृद्ध किसानों के ही बस में हो गया। सामान्य किसान इस भूमण्डलीकरण के लाभ से सदा वंचित रह गया।

किसानों को कम ब्याज़ पर ऋण देना और अन्न सहायक व्यवसायों को अपनाने के लिए सरकार को उन्हें प्रोत्साहित करना होगा। यहाँ की प्राकृतिक संपदा को व्यापारी कंपनियाँ अनेक प्रलोभन देकर ले जा रहे हैं और पेटेन्ट करके उन्हें हमसे लूट रहे हैं। इस औद्योगीकरण और शिक्षा-प्रचार के कारण गाँव के लोग शहरों में जाने लगे।

वर्तमान भूमण्डलीकरण में दुनिया के विभिन्न देश अपना योगदान दे रहे हैं। यह स्पष्ट है कि यह एक पेचीदा और बहुआयामी विकास प्रक्रिया है। कुछ लोग इसे महान परिवर्तन मानते हैं तो कुछ लोग इसे संपूर्ण बुराई के रूप में देखते हैं। कुछ लोग इस भूमण्डलीकरण का समर्थन करते हैं तो कुछ लोग इसका विरोध।

कुछ लोगों की मान्यता है कि इसके कारण ही दुनिया पहली बार सही मायने में एक हो रही है। इससे दुनिया के सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ एक प्रकार बन रही हैं। इसे बाजार को पूँजीवाद की एक अपूर्व देन के रूप में देखा जा सकता है। यह आर्थिक साधनों का सबसे सुंदर और प्रभावी विनियोजना मानते हैं। दुनिया में सम्पन्नता की वर्तमान लहर के लिए यह जिम्मेदार मानते हैं। इससे युद्ध के खतरे भी मिट जाएँगे क्योंकि देशों के बीच पारस्परिक व्यापार की जड़ें गहरी हो गयीं। युद्ध का स्थान आर्थिक प्रतियोगिता ने ले लिया।

कुछ लोग इसका विरोध करते हैं। वे भूमण्डलीकरण को यूरोपीय अमेरिकी विकास मॉडल का आरोप मानते हैं। यह दुनिया को पश्चिमी देशों के हितों के अनुरूप ढ़ालने की कोशिश है। पश्चिमी देशों द्वारा प्रतिपादित यह एक नये किस्म की बाजारू विचारधारा है जो निष्ठुर, सर्वग्रासी तथा निरंकुश है। यह दुनिया के संसाधनों पर यूरोप और अमेरिका का स्थायी नियंत्रण स्थापित करने की पहल है। इसके द्वारा पश्चिम के देश, वर्तमान देशों को हासिल करने के प्रयास में हैं। इसी पश्चिमी षड्यंत्र के दौरान मानवजाति की सारी उपलब्धियाँ धनी देशों के हाथ में एक हथियार बन गयीं।

यह भूमण्डलीकरण आदमी की आदिम आस्थाओं को भी उत्प्रेरित करता है क्योंकि आदमी उससे राहत पाने की कोशिश में संकुचित, सांस्कृतिक पहचान, संस्थाओं के बीच संघर्ष और धार्मिक उन्माद जैसे विकल्प की तरफ भागता है। इससे विश्वशांति खतरे में पड़ जायेगी। भूमण्डलीकरण न केवल अर्थसत्ता को कुछ कॉरपोरेट संस्थाओं में केंद्रीकृत करता है बल्कि राज्यों को नियंत्रित करने की सामर्थ्य भी प्राप्त कर लेता है, जिसका तात्पर्य है कि अर्थसत्ता के साथ राजसत्ता का भी केंद्रीकरण होने लगता है।

आदर्श बाजार वह है जिसमें ग्राहक और उत्पादक दोनों पक्षों के मोलतोल करने की पूरी स्वतंत्रता और शक्ति हो और ऐसा केवल मुक्तबाजार की अर्थव्यवस्था में संभव है। यह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के आपसी संबंध से जुड़कर घनिष्ट बनकर आगे चलता है। यही भूमण्डलीकरण का स्वरूप है। इस वर्तमान भूमण्डलीकरण में दुनिया के विभिन्न देश अपना योगदान दे रही हैं। भूमण्डलीकरण का वर्तमान प्रयोग मूलरूप से इंटरनेट से प्रेरित है। कम्प्यूटर, मोबाइल फोन, ई मेल, इंटरनेट विश्व के सभी लोगों के बीच संपर्क स्थापित कर रहे हैं। सांस्कृतिक विज्ञान, संपर्क पद्धतियाँ, कंप्यूटर विज्ञान भूमण्डलीकरण के लिए अधिक सहायकारी रहे। ऐसे भूमण्डलीकरण से विश्व के लिए प्रयोजन भी हैं तथा हानियाँ भी।

19.1.5 भूमण्डलीकरण से प्रयोजन :-

विदेशी उत्पादकों के आयात-निर्यात से स्वदेशी वस्तुओं को अच्छे और मूल्यवान बना रहे हैं। विश्व के सभी देशों के बीच स्नेह संबंध बढ़ जाते हैं। हर एक देश उत्पादक शक्ति को बढ़ाने सांकेतिक विज्ञान और अनेक नयी पद्धतियों को अपना रहा है। विदेशी संस्थाएँ हमारे देश में पूँजी रखने से देश की स्थिति सुधर जाएगी। इससे देश का औद्योगीकरण बढ़ जाएगा। गरीबी को दूर करने में यह सहायक होगा। बेरोजगारी कम हो जाएगी। अंतर्राष्ट्रीय परिवहन की सुविधाएँ भी बढ़ जायेंगी।

19.1.6 भूमण्डलीकरण से हानियाँ :-

भूमण्डलीकरण का हमारे देश की खेती-बारी पर विशेष प्रभाव पड़ा। अनेक किसान अपनी खेती खो गये और अनेक किसानों की आर्थिक स्थिति छिन्नभिन्न हो गयी। अनेक बुनकर, किसान तथा मज़दूर लोग सहारा न पाकर आत्महत्या की राह ले रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी विदेशों में नौकरी करने तथा आर्थिक रूप से मज़बूत होने में आसक्त है। इससे विलायत जानेवाले लोगों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। इस भूण्डलीकरण का प्रभाव मानसिक संतुलन पर पड़ने के कारण तनाव बढ़ रहा है।

19.1.7 उपसंहार :-

इस प्रकार भूमण्डलीकरण की आर्थिकी न केवल निरर्थक बल्कि नैतिक-आर्थिक स्तरों पर हानिकारक भी साबित हुई। जब तक भूमण्डलीकरण से स्वदेशी उद्योगों को हानि नहीं पहुँचती तब तक यह देश के लिए सहायकारी ही होगी। उच्च-नीच के भेदभाव, बेकारी की समस्या आदि को दूर करने में यदि यह सहायता करेगी तो उसका अमल होना देश के लिए लाभदायक होगा। भूमण्डलीकरण को सही दृष्टि से अपना सकेंगे तो हम आशा कर सकते हैं कि देश की आर्थिक स्थिति में उन्नति होगी।

19.1.8 बोध प्रश्न :-

1. भूमण्डलीकरण क्या है?
2. भारत में भूमण्डलीकरण का क्या प्रभाव है?
3. भूमण्डलीकरण भारत के लिए लाभदायक है या नहीं- स्पष्ट कीजिए।
4. भूमण्डलीकरण के विरुद्ध उत्पन्न आंदोलनों के बारे में आप क्या जानते हैं?

19.1.9 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. सर्वोत्तम हिन्दी निबंध – सुनीता चौहान और जगदीश शर्मा
2. 151 सर्वोत्तम हिन्दी निबंध – आर. गुप्ता
3. ग्लोबलाइजेशन : एड्वाण्टेजेस डिजड्वाण्टेजस – चंद्रशेखर बालकृष्णन
4. इंपैक्ट ऑफ ग्लोबलाइजेशन आन डेवलपिंग कंट्रीस एण्ड इण्डिया – चंद्रशेखर बालकृष्णन
5. ग्लोबलाइजेशन एण्ड कल्चर – जान टामिलसन

Dr. P.V.D. Sreedevi,
Lecturer,
Department of Hindi,
Sapthagiri Degree College,
Vijayawada

पाठ - 19.2

पर्यावरण और प्रदूषण

इकाई की रूपरेखा :-

19.2.1 उद्देश्य
19.2.2 प्रस्तावना
19.2.3 पर्यावरण-प्रदूषण : विषय विस्तार
19.2.4 पर्यावरण-प्रदूषण के कारण
19.2.5 पर्यावरण-प्रदूषण के प्रकार
19.2.5.1 वायु प्रदूषण
19.2.5.2 जल प्रदूषण
19.2.5.3 ध्वनि प्रदूषण
19.2.5.4 भूमि प्रदूषण
19.2.5.5 प्रदूषण के अन्य प्रकार
19.2. 6 पर्यावरण-प्रदूषण से हानियाँ
19.2. 7 पर्यावरण-प्रदूषण को दूर करने के उपाय
19.2. 8 पर्यावरण-संरक्षण में हमारा योगदान
19.2. 9 उपसंहार
19.2.10 बोध प्रश्न
19.2.11 सहायक ग्रंथ-सूची

19.2.1 उद्देश्य :-

पर्यावरण-प्रदूषण आज मानव-जाति के सामने खड़ा सबसे बड़ा उपद्रव है। दुनिया के हर कोने में पर्यावरण-प्रदूषण के दुष्परिणाम देखे जाते हैं। पर्यावरण-प्रदूषण के कारण निकट भविष्य में समस्त प्राणिकोटि का अस्तित्व संकट में पड़ जायेगा। पर्यावरण-प्रदूषण अनेक प्रकारों का होता है। पर्यावरण-प्रदूषण मानव के द्वारा सृजित समस्या है। अतः उस समस्या का समाधान भी मानव के हाथों में ही है। इस पाठ के द्वारा हम पर्यावरण-प्रदूषण के बारे में विस्तार से जानेंगे। साथ ही पर्यावरण-प्रदूषण के कारण तथा उसके प्रकार आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे। पर्यावरण-प्रदूषण के कारण किस प्रकार की हानियाँ हो रही हैं- यह भी ज्ञातव्य है, अतः इस इकाई में इस बिंदु पर भी प्रकाश डाला गया। पर्यावरण-प्रदूषण कितनी भयानक समस्या है- इस ज्ञान देते हुए इस समस्या के समाधान की चर्चा करना तथा छात्रों को इस समस्या के संबंध में पूरी जानकारी दिलाकर अपनी जिम्मेदारी की याद दिलाना इस पाठ का मुख्य एवं परमोद्देश्य है।

19.2.2 प्रस्तावना :-

'पर्यावरण' शब्द 'परि' उपसर्ग तथा 'आवरण' शब्दों के सहयोग से बना है। मनुष्य के चारों ओर के परिवेश को ही 'पर्यावरण' कहा जाता है। यह सृष्टि पाँच तत्त्वों से बनी है। वे हैं- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश। इन पाँचों को पंचभूत कहा जाता है। इनके सहारे जीवन के लिए आवश्यक सामग्री प्राणि कोटि को प्राप्त होती है।

इस सृष्टि में जीव और निर्जीव दो तत्त्व हैं। इसकी क्रिया-प्रतिक्रिया से ही जीवन क्रम चलता रहता है। पेड़-पौधे मिट्टी से पानी ग्रहण करके सूर्य किरणों के सहारे प्राणशक्ति पाते हैं तथा प्राणवायु को छोड़ते हैं। सारे अन्य प्राणी इस प्राणुवायु को ही ग्रहण करके जीवन यापन करते हैं। प्राणियों के द्वारा विसर्जित कार्बन-डाई-आक्सैड़ को पौधे ग्रहण कर लेते हैं, इस प्रकार परस्पर सहयोग से पर्यावरण-संतुलन बना रहता है।

प्राचीनकाल में हमारे पूर्वजों की धारणा थी कि प्रकृति स्वयं ही इस धरती पर फैलनेवाले प्रदूषण का नाश करती है। इसके अलावा उनकी जीवन-शैली कुछ इस प्रकार थी कि प्रदूषण की परिस्थितियाँ ही उत्पन्न नहीं होती थीं। उनका जीवन पूर्णरूप से प्रकृति का सहयोग देता था और पर्यावरण पर निर्भर था। पर औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् यूरोप में उत्पन्न औद्योगिक तूफान ने सारी दुनिया को घेर लिया और कारखानों की धूम मच गयी, जिसके फलस्वरूप पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या दुनिया के सामने खड़ी हो गयी। इस समस्या के समाधान के लिए आज विश्व के सभी पर्यावरण प्रेमी एवं वैज्ञानिक एकजुट होकर काम कर रहे हैं। हाल ही में कोपेन हेगेन में संपन्न विश्व पर्यावरण-सम्मेलन इस बात का साक्षी है कि पूरी दुनिया स्वस्थ पर्यावरण की अहमियत को समझने लगी है।

19.2.3 पर्यावरण-प्रदूषण : विषय विस्तार :-

सदियों से यह जीवन चक्र अबाधगति से चला आ रहा है। आधुनिय युग के मानव ने विज्ञान की सहायता पाकर बड़े-बड़े यंत्रों का आविष्कार किया। जंगलों को बेरहमी से काटा गया। ज़मीन को खोदकर धातुओं तथा कोयला, पत्थर, चूना आदि को निकाला जा रहा है। पेट्रोल की खोज ने विश्व के मुखचित्र को संपूर्णरूप से बदल दिया। आधुनिक मानव की प्रगति के कारण भूमाता दिन-ब-दिन सूखती जा रही है। फलतः आज सारी मानव-जाति पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या से संत्रस्त हो रही है।

19.2. 4 पर्यावरण-प्रदूषण के कारण :-

बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वनों का दृतगति से विनाश इन सभी कारणों से प्रदूषण बढ़ रहा है। आबादी के फैलाव के कारण अनेक प्रकार संसाधनों, वाहनों आदि की माँग बढ़ने लगी। फलतः औद्योगीकरण ने जोर पकड़ा जिसके कारण प्रकृति पर दबाव अबाधगति से बढ़ गया। अधिक जनसंख्या के कारण रोजगारी की समस्या भी उत्पन्न हो गयी। नौकरी के लिए लोग गाँवों को छोड़कर शहरों में आने लगे। जनता के निवास के लिए स्थल का अभाव है, इसलिए जंगलों तथा पेड़-पौधों की जगह बस्तियाँ बस गयीं। इससे एक तरफ भूमि में उर्वरापन कम होने लगा तो दूसरी तरफ कार्बन-डाई-आक्सइड़ तथा अन्य विषैली वायुओं को सोखनेवाले पेड़ों की संख्या घट गयी। फलतः शहरों में गरमी बढ़कर वातावरण का संतुलन बिगड़ता जा रहा है।

वातावरण में ये जहरीली गैसें बरसात में घुलकर धरती पर अम्ल वर्षा (Acid Rain) के रूप में बरसने लगीं। धरती का तापमान दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। बिजली का उत्पादन, परिवहन तथा अन्य कार्यों के लिए कोयला और तेल के जलने से हानिकारक वायुओं का उत्पादन और बढ़ेगा। इन सबसे भूताप की भयानक वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप समुद्रजल में वृद्धि होकर विशाल तटीय भू-भाग जलप्लावित हो जायेगा। साथ ही, वर्षा अनियमित रूप से होगी, जल संकट पैदा हो जायेगा। फसलों की उपज कम होगी।

आज सारा विश्व पर्यावरण-विनाश की समस्या से जूझ रहा है। नयी-नयी बीमारियाँ फैल रही हैं। बाढ़, सूखा, भीषण गरमी का प्रकोप, अकाल आदि विषय आजकल आम बातें हैं। मानव जीवन के लिए आज प्रदूषण एक अभिशाप-सा बन गया है।

19.2.5 पर्यावरण-प्रदूषण के प्रकार :-

आधुनिक युग में मुख्यरूप से चार प्रकार के प्रदूषण फैल रहे हैं जो इस प्रकार हैं-

19.2.5.1 वायु प्रदूषण :- प्रकृति के पाँच तत्त्वों में से अत्यंत प्रमुख तत्त्व वायु है। वायु समस्त प्राणिकोटि का जीवनाधार है। दुख से कहना पड़ेगा कि आज पर्यावरण में सबसे प्रदूषित तत्त्व भी वायु ही है। आधुनिक युग ने वैज्ञानिक प्रगति को जन्म दिया और रेलगाड़ियाँ, मोटर गाड़ियाँ, जलयान, हवाई जहाज इन सबों का उपयोग दिन-ब-दिन बढ़ने लगा। शहरों में परिवहन के साधनों का अत्यधिक उपयोग हो रहा है जिसके कारण उनसे निकलनेवाली धुआँ वायु को प्रदूषित करती है। एक ओर औद्योगीकरण के कारण कारखाने बढ़ गये और फैक्टरी की चिमनियों से निकलती विषैली गैसों के कारण वायु प्रदूषण अधिक हो गया है। इससे फेफड़े खराब होते हैं और दमा, कैंसर जैसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। वायु-प्रदूषण का प्रभाव पेड़ों को काटने के कारण दुगुनी गति से बढ़ रहा है। क्योंकि पेड़-पौधे गरमी को स्वीकार करते हैं तथा शीतलता प्रदान करते हैं तथा कार्बन-डाई-आक्सइड़ को निगलकर प्राणवायु छोड़ते हैं। इस प्रक्रिया से एक ओर वातावरण शीतल होता है तो दूसरी ओर पर्यावरण भी संतुलित होता है। पर आज के आधुनिक युग में वृक्षों को काटना अनिवार्य-सा हो गया जिससे वायु-प्रदूषण भी बढ़ रहा है। भोपाल की दुर्घटना वायुप्रदूषण का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करती है। वहाँ निकली विषैली वायु के कारण बहुत लोग मारे गये। इस दुर्घटना के कारण आज भी वहाँ रहनेवाली जनता उसका फल भुगत रही है।

19.2.5.2 जल प्रदूषण :- मानव के लिए अत्यंत आवश्यक वस्तुओं में जल का प्रमुख स्थान है। लेकिन आज जल प्रदूषण भी अनेक कारणों के चलते बढ़ता जा रहा है। कारखानों से लगातार जो कूड़ा-कचरा निकलता है, उसके नदियों-नालों में प्रवेश करने से जल प्रदूषित होता है। इस कूड़े-कचरे में कई तरह के जहरीले रसायन भी होते हैं जो जल में रहनेवाले अनेक प्राणियों के लिए भी खतरनाक साबित हो रहे हैं। गाँवों में तालाब या सरोवर के रूप में प्रायः एक ही जलाशय होता है। सभी लोगों के मल-मूत्रादि विसर्जन, पशुओं को धोना, कपड़ों की धुलाई इत्यादि कारणों से वह एकमात्र जलाशय खराब हो जाता है। इसके अशुद्ध पानी से तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं। प्रदूषित जल के कारण आदमी को

नित नयी बीमारियों का सामना करना पड़ रहा है। उसे कलरा, मलेरिया के साथ-साथ चिकेनगुनिया, स्वैनफ्लू तथा डेंग्यू आदि का शिकार होना पड़ रहा है।

19.2.5.3 ध्वनि प्रदूषण :- बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ गाडियाँ, बसें आदि बढ़ गयीं। इनसे लगातार आनेवाली ध्वनियों से ध्वनि प्रदूषित हो रही है। ध्वनि प्रदूषण बिलकुल आधुनिक सभ्यता की देन कहलाता है। मोटर गाड़ियों की भोंपू-ध्वनियाँ, स्टीरियो-लाउड़ स्पीकर तथा अनावश्यक जोरदार आवाज़ों के कारण हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कुछ ध्वनियों के कारण उच्च रक्त-ताप तथा हृदयरोग जैसी बीमारियाँ भी फैल सकती हैं। विशेषकर कुछ ध्वनियाँ वृद्धों तथा हृदय-रोगियों के लिए हानिकर भी हो सकती हैं।

19.2.5.4 भूमि प्रदूषण :- इस प्रकृति का मूलाधार भूमि है। सृष्टि के सभी प्राणी इस पृथ्वी पर निवास कर रहे हैं। आधुनिक मानव तरह-तरह से इस धरती का उपयोग कर रहे हैं। जल प्रदूषण और वायु प्रदूषण के कारण भूमि प्रदूषण हो रहा है। खेती-बारी में उपयोग करनेवाले रसायनों से खाद्य पदार्थ भी कलुषित हो रहे हैं। कभी-कभी खेतों में दूषित जल से सिंचाई की जाती है जिससे साग-सब्जियों में उसका अंश बचा रहकर मनुष्य में अनेक बीमारियों का कारण बनता है। इस प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार को कानून बनाना चाहिए।

19.2.5.5 प्रदूषण के अन्य प्रकार :- उपर्युक्त प्रदूषणों के साथ-साथ और भी कई प्रकार के प्रदूषण हैं। इनमें रेड़ियो धार्मिक प्रदूषण सबसे अधिक हानिकारक है। परमाणु का विघटन होने से अनेक प्रकार की रेड़ियोधर्मी किरणें निकलती हैं जिनका असर बड़ा हानिकारक होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हीरोशिमा तथा नागासाकी पर फेंके गये अणु बम इतने घातक सिद्ध हुए कि लाखों लोग अपंग हो गये और आगे की पीढ़ियाँ भी इसके प्रभाव से बच न सकेंगी। रूस देश के 'चेरनोबिल' में परमाणु घर में हुई दुर्घटना के कारण फैले प्रदूषण से सैकड़ों लोग मर गए। इसलिए सरकारों को परमाणु प्रयोगों पर पाबन्दी लगानी होगी। भोपाल की गैस-दुर्घटना भी पर्यावरण को प्रदूषित कर गयी।

सूरज से आनेवाली तीक्ष्णतम किरणों से पृथ्वी को बचाने के लिए प्रकृति ने ही परत के रूप में एक कवच बनाया। इसी परत-कवच को 'ओजोन' कहा जाता है। परन्तु वर्तमान औद्योगिक क्रिया-कलापों के कारण पृथ्वी पर गरमी बढ़ रही है और क्लोरिन, फ़्लोरिन, ब्रोमाइन, कार्बन, हाईड्रोजन जैसे रसायन वातावरण में छूट रहे हैं। इससे ओजोन कवच को क्षति पहुँच रही है। इससे शारीरिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और त्वचा-कैंसर होने तथा शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता के क्षीण होने की संभावनाएँ हैं।

इन भौतिक प्रदूषणों का प्रभाव मानव के मन-मस्तिष्क पर भी खूब पड़ रहा है और इसके कारण मानव में भयंकर विनाशकारी भावनाएँ उत्पन्न हो रही हैं जैसे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि-आदि। इससे मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है जिससे मानवता कुण्ठित हो रही है।

19.2.6 पर्यावरण-प्रदूषण से हानियाँ :-

ऊपर कहे गये सारे प्रदूषणों का विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि इनसे सिर्फ मानव जाति की ही नहीं बल्कि सारी सृष्टि का विनाश हो जाएगा। मानव ही इन सबका मूलकारण है। वह अपनी स्वार्थप्रवृत्ति और सुख के लिए सारे संसार को नष्ट कर रहा है। इसका फल अनेक पीढ़ियों तक भुगतना पड़ता है। ऐसा ही चला जाए तो इस समस्या का हल निकालना भी मुश्किल हो जाएगा।

19.2. 7 पर्यावरण-प्रदूषण को दूर करने के उपाय :-

पर्यावरण-प्रदूषण को रोकने में हम सबका योगदान है। सबसे पहले तो हम गंदगी न फैलाएँ और दूसरी बात यह है कि फैली हुई गंदगी को साफ करने में सहयोग दें। अपने आसपास की नालियों को साफ रखें। कूड़ा-कचरा जहाँ-तहाँ न फेंकें और न ही नदी-नाले में बहायें। खुले में मूलमूत्रादि का विसर्जन न करें। जंगल के वृक्ष न काटें। परंपरागत इंधन का उपयोग कम करें। उसके स्थान पर सूर्य-हवा और पानी से ऊर्जा उत्पन्न करके कारखाने और वाहन चलायें। हमें यह देखना चाहिए कि प्रकृति का भण्डार सदा भरा रहे। वृक्षारोपण सर्वश्रेष्ठ साधन है।

19.2. 8 पर्यावरण-संरक्षण में हमारा योगदान :-

पर्यावरण हमारा रक्षा-कवच है। हमारी रक्षा करना अपना दायित्व है। पर्यावरण संरक्षण के विषय पर सबको आवश्यक जानकारी दिलानी चाहिए। पर्यावरण का विनाश करनेवालों तथा प्रदूषण फैलानेवालों को कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। वनों की रक्षा करना हम सबका कर्तव्य है। पर्यावरण-संरक्षण के द्वारा हम अपने वर्तमान को ही नहीं, आनेवाले भविष्य को भी बचा पायेंगे। प्रकृति के पंचतत्त्वों की रक्षा करने से ही विश्व में मानव का अस्तित्व रहेगा।

19.2. 9 उपसंहार :-

पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या मानव-निर्मित है। अतः इसका समाधान खोजने का दायित्व भी मानव-जाति पर है। पर्यावरण के प्रदूषित होने का प्रमुख कारण औद्योगीकरण तथा शहरीकरण है। अतः आधुनिक मानव को चाहिए कि वस्तुओं का उपभोग जहाँ तक हो सके, कम करे तथा वस्तुओं की माँग को न बढ़ाए। मुख्यतः हम सबको अपनी उपभोक्ता संस्कृति घटाकर सीधा जीवन अपनाना होगा। यह धरती और अधिक कारखानों का भार सहन न कर सकेगी। हर नागरिक को चाहिए कि वह हर वर्ष कम से कम तीन पौधों का रोपण करके उनका पोषण करे। जंगलों को काटना बंद हो तथा जल-संसाधनों का उपयोग सीमित हो। मानव का भविष्य प्रकृति पर ही निर्भर करता है।

जहाँ तक भारत का सवाल है, भारत सरकार ने प्रदूषण के संबंध में सन् 1974 ई. में एक अधिनियम लागू करके जल-प्रदूषण को रोकने का प्रयास किया। फिर भी जनता के सहयोग के बिना सरकार का कोई काम सफल नहीं होता। हर एक व्यक्ति को पर्यावरण संबंधी आवश्यक जानकारी हो तथा इस समस्या को अपने कंधों पर लेकर उसका निवारण करने के लिए निरंतर कार्य करे। तभी विश्व-कल्याण संभव होगा।

19.2.10 बोध प्रश्न :-

1. पर्यावरण-प्रदूषण के कारणों और उसके प्रकारों का विवरण दीजिए।
2. पर्यावरण-प्रदूषण की हानियों पर प्रकाश डालिए।
3. पर्यावरण-प्रदूषण को दूर करने में हमारा योगदान क्या होना चाहिए?
4. पर्यावरण को प्रदूषित करने में मानव की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. हाल ही में संपन्न 'कोपेन हेगेन पर्यावरण-सम्मेलन' के बारे में आप क्या जानते हैं?

19.2.11 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. आदर्श निबंध - कुलश्रेष्ठ और शर्मा
2. आधुनिक हिन्दी निबंध - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना
3. सर्वोत्तम हिन्दी निबंध - सुनीता चौहान, जगदीश शर्मा
4. 151 सर्वोत्तम निबंध - आर.गुप्ता
5. भूमण्डलीकरण - विश्वंभर चौहान

Dr. P.V.D. Sreedevi,
Lecturer,
Department of Hindi,
Sapthagiri Degree College,
Vijayawada

पाठ - 20.1

आबादी की समस्या

इकाई की रूप रेखा:-

20. 1.1 पाठ का उद्देश्य

20. 1.2 प्रस्तावना

20. 1.3 आबादी की समस्या का स्वरूप

20. 1.4 आबादी को रोकने के उपाय

20. 1.5 आबादी से लाभ

20. 1.6 भारत में आबादी की वृद्धि के कारण

20.1.6.1 घुसपैठियों का आगमन

20.1.6.2 औद्योगीकरण

20.1. 7 आबादी के कारण उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ

20.1.7.1 खाद्यान्न की समस्या

20.1.7.2 अर्थव्यवस्था में असंतुलन की समस्या

20.1.7.3 बेरोजगारी की समस्या

20.1.7.4 पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या

20.1.7.5 आवास की समस्या

20.1.7.6 पौष्टिक भोजन की समस्या

20.1.7.7 जीवनस्तर पर प्रतिकूल प्रभाव

20.1. 8 आबादी के निवारणोपाय

20.1.8.1 सकारात्मक उपाय

20.1.8.2 नकारात्मक उपाय

20.1. 9 उपसंहार

20.1.10 बोध प्रश्न

20.1.11 सहायक ग्रंथ-सूची

20.1.1 पाठ का उद्देश्य :-

अ. इस इकाई के द्वारा हम भारत में व्याप्त आबादी समस्या का स्वरूप जानेंगे।

आ. आबादी के स्वरूप-स्भाव का परिचय प्राप्त करेंगे।

इ. आबादी की वृद्धि के मुख्य कारणों की समझ प्राप्त करेंगे।

ई. इसके साथ-साथ आबादी से उत्पन्न समस्याओं से अवगत होंगे।

उ. आबादी को रोकने के उपायों को जान सकेंगे।

20.1.2 प्रस्तावना :-

बढ़ती आबादी की समस्या हर एक राष्ट्र के लिए संकट की सृष्टि करती है। भारत में भी आबादी की समस्या विकरालरूप धारण कर चुकी है। इसीसे समस्याओं का जाल उत्पन्न हो जाता है। देश के सभी लोगों के लिए अन्न-वस्त्र, आवास, शिक्षा आदि का प्रबंध करना भारत जैसे अविकसित राष्ट्र के लिए साधारण सी बात नहीं है। इन सबके लिए उचित काम दिखाना संभव नहीं है। बेकार लोगों के कारण हर दिन नयी समस्याओं का जन्म होता है। परिवार नियोजन से इन सब समस्याओं का अंत हो जाएगा और देश में सुख तथा शांति का वातावरण फैलेगा। बढ़ती आबादी के लिए सुविधाएँ प्रदान करना सरकार के लिए बहुत मुश्किल बन गया है। अगर हमें आबादी पर रोक-थाम लगानी है तो परिवार नियोजन के बिना अन्य कोई रास्ता ही नहीं है। भारत में निम्न वर्ग के परिवारों में जनसंख्या में वृद्धि दीखती है। अशिक्षा और आर्थिक विषमता के कारण परिवार नियोजन की आवश्यकता लोग समझ नहीं पा रहे हैं। गरीब लोगों को यौन सुख ही मनोरंजन का सस्ता साधन बन गया है। समाजशास्त्र के अनुभवी पण्डितों के अनुसार गरीबों में ही जनसंख्या की वृद्धि हो रही है।

20.1.3 आबादी की समस्या का स्वरूप :-

हमें करीब 2500 वर्षों का इतिहास है। अर्थात् ईसा पूर्व तीसरी-चौथी शताब्दी से भारत की स्थिति के बारे में हमें प्रमाण मिलते हैं। यह महाभारत युद्ध के बाद की स्थिति है। उस युद्ध के परिणाम स्वरूप संपूर्ण भौतिक, आध्यात्मिक तथा सैनिक विकास का सर्वनाश हो गया था। युद्ध के बाद देश का पतन शुरू हो गया। परीक्षित् के शासन के दौरान बचे-खुचे लोग ही रह गये। उस युग में भी अनेक युद्ध हुए और जन संहार जोरों पर चला। तब भी आज के नियमों के अनुसार आबादी बढ़ती थी, फिर भी आबादी एक समस्या बनकर कभी सामने नहीं आयी। 20 वीं शताब्दी में भी दो महायुद्ध हो चुके। फिर भी विश्व के सभी देशों के सामने आबादी एक प्रबल समस्या के रूप में खड़ी है। भारत तथा चीन के प्रसंग में तो यह समस्या अत्यंत विकराल सिद्ध हो रही है।

आज संसार में अन्न की समस्या का प्रधान कारण बढ़ती आबादी ही है। चीन, बांग्लादेश, भारत जैसे देशों में आज लाखों लोग दाने-दाने के मोहताज हैं। अन्य देशों में ऐसे करोडों लोग हैं जो भुखमरी से पीड़ित हैं। अफ्रीका के कई देशों में हजारों की संख्या में लोग भूखों मर रहे हैं। यदि अगले पचास सालों में विश्व की आबादी दुगुनी बन जाएगी तो विश्व के सामने अनेक नयी समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी। परिणामस्वरूप अकाल और भयंकर बीमारियों के कारण विश्व की स्थिति अत्यंत दयनीय बन जाएगी। प्राचीन समय में महामारियों और लड़ाइयों के कारण प्रकृति ही आबादी की समस्या का समाधान कर देती थी। एक प्रकार से जनन तथा मरण का संतुलन बना हुआ था। उस समय आज के समान चिकित्सा

कार्य की अत्यधिक उन्नति नहीं हुई। पहले चेचक, हैजा, प्लेग आदि महामारियों के कारण गाँव के गाँव नष्ट हो जाते थे। मलेरिया और अन्य भयंकर बीमारियों में लाखों जनों के प्राण निकल जाते थे। लेकिन आजकल दवाइयों के कारण हम भयानक बीमारियों को भी रोकने की स्थिति में है। इसीलिए आज आबादी की काफी वृद्धि हुई और हो रही है।

भारत में जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य उत्तर प्रदेश है, यहाँ की जनसंख्या कुल देश की 16.44 प्रतिशत है। इसके बाद जनसंख्या की दृष्टि से बिहार का नाम आता है जिसकी आबादी देश की कुल आबादी की 10.23 प्रतिशत है। आबादी में सबसे छोटा राज्य मिजोराम है, इसकी आबादी देश की कुल आबादी में मात्र .05 प्रतिशत रही। इसके बाद अन्य चार छोटे राज्य आते हैं जिनकी आबादी देश की कुल आबादी में मात्र .08 प्रतिशत है। गाँवों से लोगों के नगरों की ओर पलायन के फलस्वरूप नगरों की आबादी में वृद्धि हुई है, साथ ही नगरों में मलिन बस्तियों का विस्तार हुआ और गाँव, नगरों और महानगरों में परिवर्तित हुए हैं। भारत में आर्थिक नजरिये से पिछडे हुए चार बड़े राज्यों - उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान में शहरी और ग्रामीण आबादी में अनुमानित वृद्धि की दर 1966 से 2001 के बीच कुछ इस प्रकार है-

राज्य	ग्रामीण वृद्धिदर प्रतिवर्ष- प्रतिशत में	नगरीय वृद्धिदर प्रतिवर्ष- प्रतिशत में
उत्तर प्रदेश	5	5. 1
बिहार	1.5	4. 5
मध्यप्रदेश	0.2	3.89
राजस्थान	1.1	4. 9

लिंगानुपात की दृष्टि से भारत में आबादी घनत्व का अध्ययन करने से यह सत्य उभरकर सामने आता है कि भारत की आबादी में प्रति दशक, एक-दो अपवादों को छोड़कर महिलाओं की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। सन् 1901 में प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या 972 थी। वह सन् 1991 की जनगणना के अनुसार घटकर 929 रह गयी है। भारत के जिन राज्यों में महिलाओं की संख्या राष्ट्रीय औसत- जो 929 प्रतिहजार है- से अधिक है, वे राज्य- केरल, हिमाचल प्रदेश, पाण्डिचेरी, आंध्रप्रदेश, त्रिपुरा, लक्षद्वीप, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश हैं। जिन भारतीय राज्यों में महिलाओं की औसत संख्या राष्ट्रीय औसत - जो 929 प्रतिहजार है- से कम है, वे राज्य- असम, मिजोरम, जम्मू और कश्मीर, पश्चिम बंगाल, बिहार, नागालैण्ड, पंजाब,उत्तर प्रदेश, सिक्किम, हरियाणा, अरुणाचल प्रदेश और चण्डीगढ़ हैं। भारत में जनगणना का कार्यक्रम सर्वप्रथम सन् 1872 ई. से आरंभ हुआ। 2011 में संपन्न होनेवाली जनगणना ब्रिटिश शासकों के बाद यानी आज़ादी के बाद की सातवीं जनगणना है।

आज भारत की स्थिति चिंताजनक बन गयी है। आज स्वतंत्र भारत में जीवनस्तर ऊँचा उठा है और परिणामतः यहाँ की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है। कारण यही है कि भारत जैसे उपजाऊ प्रदेश में भी अन्न की बहुत ही भयंकर समस्या उत्पन्न हुई है। अगर हमें देश की दशा सुधारनी है तो पहले पहल इस बढ़ती हुई आबादी की रोकथाम करनी चाहिए और फिर यह कार्य परिवार-आयोजन के द्वारा सुसंपन्न हो सकता है।

20.1.4 आबादी को रोकने के उपाय :-

आबादी को स्थिर बनाये रखने के लिए दवाइयों का प्रयोग करते हैं। आज परिवार-नियोजन के अनेक तरीके निकाले गए हैं। लूप, आपरेशन आदि के द्वारा प्रजननशक्ति पर रोक लग सकती है। इसके साथ लोगों में वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति श्रद्ध बढ़ेगी तो अधिक लाभ होगा। करीब पचपन वर्षों की अवस्था में सब लोग परोपकार भावना से लोक कल्याण का कार्य करे तो पर्याप्त लाभ हो सकता है।

20.1.5 आबादी से लाभ :-

जनसंख्या की बढ़ती से समस्याएँ होतीं जरूर पर उससे लाभ भी होते हैं। आबादी राष्ट्र-शक्ति मानी जाती है। यदि जनता अधिक संख्या में मौजूद हो तो सरकार के कार्यक्रम समय में और कम मूल्य में पूरे किये जा सकते हैं। इतना ही नहीं देश-रक्षा तथा शांति-व्यवस्था की दृष्टि से अधिक संख्या में उपलब्ध जनों में से योग्य नौजवानों को चुनकर सैनिकशक्ति को बढ़ावा दिया जा सकता है। जिस राष्ट्र की अधिक संख्या में सैनिक शक्ति हो, वह राष्ट्र सुरक्षित रह सकता है। यदि आबादी कम संख्या में हो तो अमुक राष्ट्र की प्रगति में बाधा पड़ेगी तथा कालक्रम में उस राष्ट्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ने की संभावना है। यह सुनकर हमें आश्चर्य जरूर होता है कि यूरोप के कई देश (उदाहरण के लिए- स्विजरलैण्ड) अपनी आबादी को बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर योजनाएँ बना रहे हैं! आबादी जिस राष्ट्र में अधिक संख्या में मौजूद है, यदि सही ढ़ंग से उसका इस्तेमाल किया जाए तो हर प्रकार के उपयोगी कार्य के लिए आवश्यक मनुष्य मिलेंगे। इतना ही नहीं देश की उत्पादन-क्षमता में भी अभूतपूर्व विकास होगा। चीन को इस विषय में अत्युत्तम नमूने के रूप में ले सकते हैं।

एक और रोचक तथ्य यह है कि आधुनिक भारत की वर्तमान आबादी में युवाओं की संख्या दुनिया में किसी अन्य राष्ट्र की युवाओं की तुलना में अधिक है। इसीकारण दुनिया के सभी देश भारत की ओर उत्सुकता से देख रहे हैं। खासकर अमरीका जैसे विकसित देश भारत की प्रगति पर घबरा रहे हैं क्योंकि अन्य किसी भी विकसित राष्ट्र में युवाओं की संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी भारत की। युवाशक्ति को आधार बनाकर भारत हर क्षेत्र में अमरीका जैसे देशों को चुनौती देने तैयार हो रहा है। भारत को यह मौका अपनी बढ़ती आबादी के कारण ही मिला है। अतः यह स्पष्ट है कि आबादी से कई प्रयोजन भी होते हैं, बशर्ते कि उस मानवीय शक्ति का उपयोग सही ढ़ंग से हो।

20.1.6 भारत में आबादी की वृद्धि के कारण :-

आधुनिक चिंतन समाज की प्रत्येक उन्नति और अवनति को साक्षरता के संदर्भ में देखना चाहता है। जनसंख्या के संदर्भ में भारत की साक्षरता के वितरण पर प्रकाश डालना आवश्यक है। स्वतंत्रता प्राप्ति सन् 1947 के उपरांत भारत की जनसंख्या की पृथक गणना सन् 1951 में हुई। उसके अनुसार देश में साक्षरता का औसत प्रतिशत 18.33 था जो क्रमशः इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है:- 1961 में 28.31 1971 में 34.45 1981 में 43.56 तथा 1991 में 52.11 प्रतिशत है। भारत में आबादी की वृद्धि के मुख्य कारण निम्न प्रकार से हैं।

20.1.6.1 घुसपैठियों का आगमन :- भारत में अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण अत्यधिक जन्म दर तो है ही, इसके अलावा पडोसी देशों के घुसपैठियों ने भारत की आबादी का संतुलन बिगाड़ दिया। 79 वें भारतीय विज्ञान सम्मेलन के अवसर पर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के विजिटिंग प्रोफेसर डॉ. आशीष बोस ने भारत की आबादी की

अधिक संख्या का कारण अधिक जन्म-दर के साथ विदेशी नागरिकों का भारी संख्या में घुसपैठ करना बताया। इस संदर्भ में यह कहना आवश्यक है कि इन घुसपैठियों में पाकिस्तान, बांग्लादेश के नागरिक सबसे आगे हैं। मुख्यतः पाकिस्तान भारत की अर्थव्यवस्था एवं शांति को बिगाड़ने के उद्देश्य से अपने असंख्य नागरिकों को भारत में भेज रहा है। बांग्लादेश के निर्माण के समय कई करोड़ पाकिस्तानी लोग भारत में आये हैं।

20.1.6.2 औद्योगीकरण :- औद्योगीकरण के कारण नगरों पर भार बढ़ा है। साथ ही वेश्यावृत्ति को बढ़ावा मिला तथा इसके फलस्वरूप अनेक अवैध और अवांछित बालकों ने जन्म लिया। औद्योगीकरण के फलस्वरूप औषधियों का उद्योग अभूतपूर्व गति से विकास पाता गया। अतः स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार हुआ और मृत्यु दर में गिरावट देखने को मिला। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जनसंख्या-वृद्धि प्रजनन संख्या और मरण संख्या के अंतर के आधार पर निर्धारित की जाती है।

20.1.7 आबादी के कारण उत्पन्न होनेवाली समस्याएँ :-

जनसंख्याशास्त्रियों के अनुसार 21वीं शती में आबादी के क्षेत्र में भारत चीन को भी पीछे छोड़ जायेगा और आबादी की दृष्टि से विश्व का सबसे बड़ा देश बन जायेगा। आबादी की नज़र से देखा जाए तो भारत में प्रतिवर्ष बढ़ती आबादी लगभग आस्ट्रेलियाई जनता के बराबर है। यही दशा जारी रहेगी तो निकट भविष्य में आबादी और संसाधनों के मध्य संतुलन बिगड़ जाएगा तथा विस्फोटन की स्थिति पैदा होगी। इसके फलस्वरूप निम्नलिखित समस्याएँ देखने को मिलेंगी।

20.1.7.1 खाद्यान्न की समस्या :- प्रसिद्ध अर्थशास्त्री 'माल्थस' के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितीय अनुपात जैसे- 2,4,8,16,32....से होती है। जबकि कृषि-उत्पादन में वृद्धि अंकगणितीय अनुपात में होती है, जैसे- 1,2,3,4,5...आदि। यही कारण है कि कुछ देशों को छोड़कर आज अधिकांश देश खाद्यान्न की समस्या से जूझ रहे हैं। भारत की स्थिति विशेष समस्यापूर्ण है। भारत का भौगोलिक क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का लगभग 2.4 प्रतिशत है और यहाँ की आबादी विश्व की जनसंख्या में लगभग 16 प्रतिशत है। 2001 में संपन्न जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 102,87,37,436 करोड़ है और अब 2011 में होनेवाली जनगणना के प्रसंग में यह अनुमान लगाया जा रहा है कि यह संख्या लगभग 120 करोड़ से अधिक होगी। इतनी आबादी के लिए अन्न की समस्या स्वाभाविक ही है।

20.1.7.2 अर्थव्यवस्था में असंतुलन की समस्या :- आबादी की दृष्टि से ही समस्त विकास कार्यक्रम बनाये जाते हैं। उसके लिए धन की व्यवस्था करने के लिए नये कर लगाए जाते हैं, घाटे का बजट बनाया जाता है। फलतः मुद्रा स्फीति एवं महंगाई जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और देश की अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विकास कार्यों के लिए निजी साधनों द्वारा पूरा न पड़ने की स्थिति में कर्ज लेना पड़ेगा। इससे स्थानीय उद्योग-धंधे प्रभावित होते हैं। कभी-कभी मुद्रा अवमूल्यन भी करना पड़ता है। फलतः देश में गरीबी बढ़ती है और उद्योगों में पूँजीवादी प्रवृत्ति पनपती है। भारत के संदर्भ में यह स्पष्टतः लागू है।

20.1.7.3 बेरोजगारी की समस्या :- रोजगार और नौकरी के क्षेत्र एवं संभावनाएँ सीमित होती हैं। सीमित साधनों द्वारा असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नहीं है। बेरोजगारी के परिणामस्वरूप अपराधों और अपराधियों में वृद्धि होना सर्वथा स्वाभाविक है। भारत में बढ़ते हुए आतंकवाद के मूल में शिक्षित एवं महत्त्वाकांक्षी युवकों की बेरोजगारी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कारण है।

20.1.7.4 पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या :- आबादी की अधिकसंख्या के कारण मल-मूत्र, कूड़ा-कचरा, तथा व्यर्थपदार्थों की संख्या भी बढ़ती है। इससे गंदगी फैलकर पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या पैदा हो जाती है। कृषि, उद्योगों, भवनों, सड़कों आदि में वृद्धि के लिए स्थान प्राप्त करने के लिए वनों को काटा जाता है। वृक्षों का स्थान भवन तथा कॉलनी और गंदी बस्तियाँ ले जाती हैं। अतः मानव के लिए जीना दूभर हो जाता है। उद्योग-धंधों के बढ़ने से विषैली गैसों का उत्पादन अधिक होता है। इससे वायुप्रदूषण बढ़ता है। जनसंख्या के द्वारा उपयुक्त व्यर्थ पदार्थों तथा प्लास्टिक के इस्तेमाल के कारण भूमि प्रदूषित होती है। बढ़ती आबादी के कारण नगरीकरण अनिवार्य हो जाता है, अतः झोंपड़ पट्टियाँ बढ़ जाती हैं।

20.1.7.5 आवास की समस्या :- जनसंख्या की वृद्धि से आवास की समस्या उत्पन्न होती है। भारत में कई करोंड़ों की जनता के पास आवास नहीं है। ये लोग किराए मकानों में अपना जीवन बिताते हैं। परंतु अधिकांश लोग आसमान के नीचे ही दिन-रात व्यतीत करते हैं। बड़े नगरों में काफी संख्या में लोग सड़कों के किनारे, फुटपाथों तथा रेलवे-प्लेटफाम पर, दूकानों के बगल में पेड़ों के नीचे रहने लगते हैं।

20.1.7.6 पौष्टिक भोजन की समस्या :- बढ़ती आबादी के कारण हमारे देश में मुश्किल से 10 प्रतिशत व्यक्तियों को दोनों वक्त पौष्टिक भोजन उपलब्ध हो पाता है। खाद्य और कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 50 करोड़ व्यक्ति बिना खाए सो जाते हैं तथा डेढ़, दो करोड़ प्रति वर्ष भुखमरी अथवा कुपोषण जन्य रोगों के शिकार होकर काल-कवलित हो जाते हैं। भारतीय पोषण संस्था के अनुसार 1 से 5 वर्ष तक की उम्र के बच्चों में 35 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। यदि हम खाद्यान्न के उत्पादन में कम से कम 40 प्रतिशत की वृद्धि नहीं करेंगे तो भारत में भुखमरी महामारी के रूप में फैल जाएगी।

20.1.7.7 जीवनस्तर पर प्रतिकूल प्रभाव :- बढ़ती हुई आबादी जीवन को प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिकूल दिशा में प्रभावित करती है। जीवन की सुख-सुविधाओं के साधनों का अभाव हो जाता है। अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं- यथा जलाशयों की समस्या, पेयजल की समस्या, यातायात साधनों की समस्या, पशुधन की समस्या आदि। प्रदूषित जल के कारण हैजा, मियादी, बुखार, अतिसार, पीलिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यातायात साधनों के कारण ध्वनि-प्रदूषण फैलता है। शासन तथा नौकरी-धंधों में भ्रष्टाचार, बेईमानदारी आदि समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

20.1.8 आबादी के निवारणोपाय :-

बढ़ती हुई आबादी द्वारा विस्फोटक स्थिति उत्पन्न होने के पहले ही हमें सावधान होकर ऐसे प्रयत्न करने चाहिए, जिससे स्थिति विस्फोटक न बन पाए। इसके लिए दो प्रकार के उपाय किए जा सकते हैं-

20.1.8.1 सकारात्मक उपाय :- संसाधनों को विकसित करके उत्पादन और आबादी के बीच संतुलन स्थापित किया जाए। इंग्लैण्ड के उदाहरण से हम इस दिशा में बहुत कुछ सीख सकते हैं जिसमें केवल 5 प्रतिशत जनसंख्या कृषि करती है। ब्रिटेन के निवासियों ने कृषि को विकसित करके अपने आहार के क्षेत्र में अपने देश को आत्मनिर्भर बना दिया। वन और जीवन-संरक्षण एक महत्त्वपूर्ण सकारात्मक उपाय है।

20.1.8.2 नकारात्मक उपाय :- जनसंख्या की वृद्धि को रोकना जैसे परिवार-नियोजन, विवाह की अवस्था को बढ़ा देना, बाल-विवाह निषेध, छोटे परिवार को पुरस्कृत करना, एक से अधिक पत्नी नहीं रखना, शिक्षा का प्रसार, मनोरंजन के साधनों का विकास करना, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना तथा पड़ोसी देशों से आनेवाले घुसपैठियों के प्रति सख्त व्यवहार करना इत्यादि मार्गों में आबादी पर रोक लगायी जा सकती है।

20.1.9 उपसंहार :-

आबादी की समस्या द्वारा केवल भारत ही नहीं, विश्व के सभी देश न्यूनाधिक रूप में परेशान हैं। पर विकासशील एवं अविकसित देशों पर इस समस्या का प्रभाव दिनों दिन बुरा सिद्ध हो रहा है। बढ़ती जनसंख्या के कारण इन देशों की प्रगति में बाधा बनी हुई है। इसीको लक्ष्य करते हुए जूलियन हवसले ने 1963 ई. में लिखित अपनी पुस्तक 'ह्यूमन क्राइसिस' में कहा- "आबादी की अधिकता से उत्पन्न होनेवाला संकट नाभिकीय युद्ध (Nuclear war) के संकट से भी बढ़कर है। अतः जनसंख्या की वृद्धि पर रोक लगाना आवश्यक है।"

हाल ही में अर्थात् 2011 में भारत की जनगणना का कार्यक्रम संपन्न होनेवाला है। इस बार भारत की जनगणना अप्रैल 2010 से आरंभ होकर मार्च 2011 तक समाप्त होनेवाली है। इस जनगणना के दौरान लगभग 25 लाख सरकारी कर्मचारी काम करनेवाले हैं। भारत के 28 राज्यों, 7 केंद्रशासित प्रदेशों, 640 जिलों, 5767 शहरों तथा 6,08,786 गाँवों में जनगणना का यह अद्‌भुत कार्यक्रम चल रहा है। भारत सरकार आबादी के सही आँकड़े जानने हेतु कुल मिलाकर 6,000 करोड़ रूपये खर्च कर रही है! एकतरह से यह सारे भारतवासियों के लिए गर्व करने की बात है। अतः भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य बनता है कि जनगणना के लिए आये कर्मचारियों को सही समाचार देकर इस महान कार्यक्रम में योग दे।

20.1.10 बोध-प्रश्न :-

1. भारत में आबादी की समस्या पर एक विस्तारपूर्वक लेख लिखिए।
2. आबादी की वृद्धि के कारण क्या हैं?
3. आबादी के निवारणोपायों की चर्चा कीजिए।
4. बढ़ती आबादी से क्या प्रयोजन मिलते हैं? भारत के प्रसंग में उनकी चर्चा कीजिए।
5. आबादी से उत्पन्न होनेवाली हानियों पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।
6. 2011 में संपन्न भारतीय जनगणना के बारे में लघु टिप्पणी लिखिए।

20.1.11 :- सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. हिन्दी निबंध : जैन कुलश्रेष्ठ एवं डॉ. चतुर्वेदी
2. आधुनिक निबंध : राम प्रसाद किचलू
3. ईनाडु दैनिक (तेलुगु) : रविवार विशेषांक - 11 अप्रैल 2010
4. निबंध रत्नाकर : डॉ. मनोहर देशपाण्डे

Sri M. Venkateswarlu,
Lecturer,
Department of Hindi,
A.C. College,
Guntur.

पाठ - 20.2

एच. आई. वी./ एड्स

इकाई की रूप रेखा:-

20.2.1 पाठ का उद्देश्य

20.2.2 प्रस्तावना

20.2.3 एच.आई.वी./एड्स का इतिहास

20.2.4 नामकरण

20.2.4.1 एच.आई.वी. का अर्थ

20.2.4.2 एच.आई.वी. वायरस की व्याप्ति के कारण

20.2.5 एच.आई.वी. तथा एड्स में अंतर

20.2.6 एड्स के लक्षण

20.2.7 एड्स- कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

20.2.8 बोध प्रश्न

20.2.9 सहायक ग्रंथ-सूची

20.2.1 पाठ का उद्देश्य :-

अ. इस इकाई के द्वारा एच.आई.वी./एड्स के इतिहास के साथ-साथ दोनों शब्दों के अंतर को भी जानेंगे।

आ. एच.आई.वी./एड्स के लक्षणों के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

इ. एच.आई.वी./एड्स की विषाणु का संक्रमण शरीर में कैसे व्याप्त होता है- इस विषय को जानेंगे।

इ. एड्स को लेकर पूर्णतः समाचार प्राप्त करेंगे।

उ. एड्स के संदर्भ में हमारी सामाजिक जिम्मेदारी के बारे में जानेंगे।

ऊ. एड्स के विषय में हम जानेंगे कि युवा के जीवन में चरित्र का क्या महत्त्व होता है।

20.2.2 प्रस्तावना :-

प्रस्तुत निबंध 'एच.आई.वी./एड्स' एक वैज्ञानिक निबंध है। एड्स बीसवीं शताब्दी की लाइलाज बीमारी है। यह बीमारी भारत में अधिक तेज़ी से फैल रही है। लाइलाज होने के कारण इसकी जानकारी लेना ही सबसे बड़ा इलाज है। इसमें मुख्यतः एच.आई.वी./एड्स का इतिहास, भारत में उसका आगमन तथा फैलाव, इस बीमारी के लक्षण आदि के बारे में सविस्तार परिचय दिया गया है।

आज एड्स के बारे में सारा विश्व चिंतित है। यदि इसी तरह इस रोग की व्याप्ति होगी तो संपूर्ण विश्व की आबादी में 60 प्रतिशत जन एड्सग्रस्त बन जाने की आशंका है। अतः एड्स बीमारी के प्रति पूर्ण जानकारी हासिल करना आज हर एक नागरिक का कर्तव्य है। आज यह रोग एक वैयक्तिक समस्या न होकर सामाजिक खतरा बन गया है। मुख्यतः देश

की युवा पीढ़ी को एड्स की जानकारी प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि भारत में युवा जन ही इस रोग के अधिक शिकार हो रहे हैं। शिक्षा के कार्यक्रमों में भी इस रोग की जानकारी आवश्यक बनायी गयी। यह पाठ इस दिशा में किया जानेवाला एक प्रयास है।

20.2.3 एच.आई.वी./एड्स का इतिहास :-

सन् 1981 ई. में अमरीका के लॉस एंजिल्स शहर के रोगियों में डॉक्टरों को कुछ विशिष्ट लक्षण दिखाई दिये। वहाँ पर समलिंगी संभोग करनेवाले कुछ युवा लोगों में एक विशिष्ट प्रकार का न्यूमोनिया और त्वचा का कर्करोग या कैंसर देखा गया। मुख्यतः यह रोग उन लोगों में पाया जाता था जिनमें शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम थी या जो लोग बूढ़े थे। लेकिन वैज्ञानिकों को शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करनेवाले कोई भी कारण नहीं मिला। यह अनुमान लगया गया कि शायद यह समलिंगी व्यवहार के कारण हुआ हो। इस रोग को गे-रिलेटेड इम्युनो डेफीशिएन्सी सिन्ड्रोम (GRID) का नाम दिया गया।

कुछ समय पश्चात् वैसे ही लक्षण विषमलिंगी संभोग करनेवाले, शिराओं से मादकद्रव्यों का सेवन करनेवाले तथा हीमोफीलिक यानी- जिन्हें आनुवंशिक रक्तदोष के कारण बार-बार रक्त देना पड़ता है- लोगों में भी दिखाई पड़े। ये लोग समलिंगी संबंध रखनेवाले बिलकुल नहीं थे। तब वैज्ञानिकों ने सोचा कि यह रोग प्रतिरोधक क्षमता कम करनेवाले किसी विषाणु से होता होगा और इस प्रकार इसका नाम बदलकर एक्वाइर्ड इम्युनो डेफिशियेन्सी सिन्ड्रोम (AIDS) रखा गया। सन् 1983 ई. में फ्राँस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. ल्यूक मॉन्टनियर ने रोग के विषाणु की खोज की। उसी समय अमरीके के डॉ. रॉबर्ट गेलो को भी यही विषाणु दिखाई दिया। प्रारंभ में इस विषाणु को अलग-अलग वैज्ञानिकों ने अलग-अलग नाम दिए। लेकिन बाद में इसे ह्यूमन इम्युनो डेफीशियन्सी वायरस - यानी 'एच.आई.वी' का नाम दिया गया। इसका अर्थ है- मानव शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को कम करनेवाला विषाणु। इस रोग पर नियंत्रण के लिए गुप्तरोगों पर नियंत्रण करना जरूरी है। इन दोनों रोगों के लिए समाज में नियमित और आवश्यक रूप से जागरूकता अभियान चलाने की आवश्यकता है।

20.2.4 नामकरण :-

एड्स एक अंग्रेजी शब्द है। इसका विस्तार एक्वाइर्ड इम्युनो डेफिशियेन्सी सिन्ड्रोम (AIDS) रखा गया। यह रोग अर्जित रोग है। क्योंकि यह एक से दूसरों को आसानी से फैलता है। इसके कारण शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण होती है। इसे सिंड्रोम कहते हैं क्योंकि इसमें अनेक रोगों के लक्षण होते हैं।

20.2.4.1 एच.आई.वी. का अर्थ :- एच. आई. वाई. वायरस एक रेट्रोवायरस का नाम है। यह एड्स रोग का कारक बनता है। यह वायरस शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को घटाकर उसे बहुत कमजोर बना देता है जिससे रोगी एकसाथ अनेक रोगों का शिकार बन जाता है। एच.आई.वी. वायरस शरीर के लिंफोसाइट्स तथा मोनोसाइट्स का नाश करके सफेद रक्तकणों को नष्ट कर देता है। इससे आदमी रोगों के आक्रमण से बच नहीं पाता।

20.2.4.2 एच.आई.वी. वायरस की व्याप्ति के कारण :- अप्रैल 1986 ई. में सर्वप्रथम मद्रास की कुछ वेश्याओं में यह रोग पाया गया। मुंबई में एड्स का पहला भारतीय रोगी मिला। यह व्यक्ति हृदय चिकित्सा के लिए विदेश गया था। शस्त्र क्रिया के समय उसे जो रक्त दिया गया था, उसके कारण वह दुर्भाग्यवश एड्स रोगी बन गया। 'नाको'

(NACO) अर्थात् राष्ट्रयी एड्स नियंत्रण संस्था के 2000 के आँकड़ों के अनुसार भारत के करीब 38 लाख लोग एच.आई.वी. रोग से ग्रसित हुए हैं। यह रोग मुख्यतः लैंगिक क्रिया के द्वारा फैलता है। अतः कुछ गुप्तरोगों की तरह यह महामारी भी तीन अवस्थाओं से गुजरती है। प्राथमिक अवस्था में यह रोग वेश्याओं में दिखाई पड़ता है और दूसरी अवस्था में इन वेश्याओं के ग्राहकों में एच.आई.वी. के लक्षण दिखाई देते हैं। तीसरी अवस्था में वेश्याओं से ग्राहकों की पत्नी और बच्चे भी इस रोग के शिकार बन जाते हैं।

एच.आई.वी. का संक्रमण मुख्य रूप से चार मार्गों से होता है।

1. जिस व्यक्ति को यह वायरस है, उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने से।
2. कलुषित सुइयों, पिचकररियों तथा अन्य उपकरणों का इस्तेमाल करने से।
3. कलुषित रक्त या रक्त-पदार्थों को रक्त में स्वीकार करने से।
4. वायरस संक्रमित महिला के द्वारा गर्भस्थ दशा में ही शिशु को यह वायरस हो जाता है।

20.2.5 एच.आई.वी. तथा एड्स में अंतर :-

एच. आइ. वी. तथा एड्स में मुख्य अंतर यही है कि पहला वायरस का नाम है तो दूसरा उस वायरस से उत्पन्न रोग का नाम। एच.आइ.वी. का वायरस मनुष्य के शरीर में प्रवेश करने के बाद सीधे सफेद रक्त कोशिकाओं पर हमला कर देते हैं। सफेद रक्त कोशिकाएँ अपने शरीर की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाओं को समन्वित करती हैं। शरीर में प्रवेश करने के बाद विषाणु चुपचाप पुनरुत्पादन का कार्य करते रहते हैं। बाद में शरीर की प्रतिरोधक क्षमता क्रमशः क्षीण होती जाती है। प्रारंभिक अवस्था में जब रोगी को अपनी स्थिति का एहसास नहीं होता। उसे 'संवर्धन काल' कहा जाता है। यह अलग-अलग लोगों में अलग-अलग ढंग से होता है। कुछ लोगों में रोग के लक्षण जल्दी दिखाई देते हैं तो कुछ लोगों में 20 वर्ष तक रोग छिपकर रह सकता है। इसी अवस्था से गुजरते हुए रोगी अन्य व्यक्तियों को भी यह रोग फैला सकता है और 'वाहक' बना रहता है। यही एड्स रोग की अत्यंत खतरनाक अवस्था है। इसी समय एक रोगी से असंख्य लोगों तक यह रोग फैल सकता है। एड्स की इतनी तेज़गति से फैलने का कारण भी यही है। जब सी.डी. -4 की संख्या 200कोशिका प्रति घनमीटर के नीचे पहुँचती है तब रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। इसके कारण शरीर में सुप्त अवस्था में रहे रोगाणु भी शरीर पर हमला करने लगते हैं अतः इसे 'अवसरवादी संक्रमण' कहा जाता है।

20.2.6 एड्स के लक्षण :-

एड्स रोगी में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं -

अ. बिना किसी कारण के ही अचानक वजन का कम हो जाना, मूल वजन का 10 प्रतिशत तक वजन कम हो जाना, हर महीने 5 किलो से ज्यादा वजन कम हो जाना आदि एड्स रोग का पहला लक्षण है।

आ. ज्यादा देर तक बुखार तथा खाँसी चलना

इ. त्वचा के रोग, मुँह में छाले पड़ना

ई. अधिक समय तक न्यूमोनिया पीड़ित होना

उ. पतले दस्त तथा कै करना

ऊ. रोगी की स्मरणशक्ति का क्षीण होना

ऋ. रोगी में टॉक्सोप्लाज्मोसिस होने के कारण उसके मस्तिष्क में सूजन आती है तथा ज्वर, अकारण सुस्ती, मति-भ्रम जैसे लक्षण होते हैं।

ए. रोगी को क्षयरोग बहुत शीघ्र हो जाता है।

ऐ. अंतिम दशा में व्यक्ति को त्वचा का कैंसर होने की आशंका रहती है।

20.2.7 एड्स- कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य :-

एड्स एक वायरसजन्य रोगों का समूह है जो रेट्रोवायरस से उत्पन्न होता है। रेट्रोवायरस की कोटि में एच.आई.वी. नामक विषाणु के द्वारा एड्स रोग फैलता है। यह रोग लाइलाज है। अतः यह विश्व के सभी देशों के सामने चुनौती है। यह रोग मुख्यतः शारीरिक संबंधों के द्वारा ही फैलता है। अनैतिक तथा विशृंखल लैंगिक व्यवहार, समलैंगिकता जैसे प्रकृति-विरुद्ध आचरण से एड्स फैलता है। इस रोग को सबसे पहले गे रिलेटेड इम्युनो सिंड्रोम का नाम दिया गया। बाद में इसे अक्वाइर्ड इम्युनो डिफिशियन्सी सिंड्रोम का नाम मिला। यह रोग मानव शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट करता है। अतः रोगी एक साथ अनेक रोगों का शिकार बन जाता है। छोटी सी बीमारी भी उसके लिए जानलेवा सिद्ध हो सकती है।

भारत में यह रोग बहुत तेज़ फैल रहा है। पहले मद्रास, बाद में मुंबई में एड्स के पहले रोगी मिले। महाराष्ट्र तथा आंध्रप्रदेश में यह रोग अत्यंत तेजी से व्याप्त हो रही है। असुरक्षित लैंगिक आचरण ही इसका कारण है। भारत का युवावर्ग प्रधानरूप से इस रोग का शिकार बन रहा है। एड्स की जाँच दो प्रकार की होती है- एकः वेस्ट्रन ब्लॉट जाँच तथा दूसरी : एलिज़ा जाँच। एलिज़ा जाँच की अपेक्षा वेस्टर्न ब्लॉट जाँच महंगी है। एलिज़ा जाँच की विश्वसनीयता लगभग 98 प्रतिशत होती है। इसमें रंगों की प्रतिक्रिया द्वारा एंटीबॉडीज का परीक्षण किया जाता है। यह पद्धति एड्स रोग के निर्धारण के लिए सर्वाधिक प्रचलित है। जैसा कि पहले कहा गया- एड्स रोग की व्याप्ति का प्रधान कारण वेश्याओं तथा अपरिचित लोगों के साथ लैंगिक संबंध स्थापित करना तथा एड्स-संक्रमित व्यक्ति द्वारा रक्त को ग्रहण करना है। अतः इन दो विषयों में चौकन्ने रहेंगे तो इस रोग की व्याप्ति को रोका जा सकता है। समलैंगिकता भी इस रोग का अन्य कारण है।

एड्स के लक्षण कभी-कभी कई वर्षों तक दिखाई नहीं देते। इसे 'संवर्धन काल' कहा जाता है। लोगों की शारीरिक स्थिति के अनुसार यह काल निर्भर करता है। फिर भी शिशुओं में एड्स के लक्षण कुछ ही माहों में दिखाई देने लगते हैं। क्योंकि शिशुओं की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बहुत कम होती है। लम्बे समय तक बुखार रहना, अचानक शरीर का वजन घट जाना, त्वचा के रोग, न्यूमोनिया इत्यादि एड्स के बहुचर्चित लक्षण हैं। यद्यपि एड्स का कोई उपचार संभव नहीं है, फिर भी अनुशासन एवं दवाइयों के सहयोग से मौत को कुछ समय तक टाला जा सकता है। एड्स से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार हैं-

लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि यह रोग संक्रामक रोग है। अतः रोगी को गाँव या शहर से दूर रखना चाहिए। लेकिन ऐसा करने की जरूरत नहीं है। क्योंकि निम्नलिखित मार्गों से एड्स की व्याप्ति नहीं होगीः-

अ. साथ-साथ सोने या आलिंगन करने से

आ. छूने या हाथ मिलाने से

इ. खाँसने या छींकने से

ई. एक ही नदी या स्वीमिंग पूल में नहाने से

उ. रोगी के कपड़े पहनने या उसकी सेवा करने से

ऊ. मच्छर या खटमल से

ऋ. रक्तदान करने से

एड्स का उपचार संभव नहीं है। अतः एड्स से बचाव ही एड्स का उपचार है। पर कुछ अत्याधुनिक एवं महंगी दवाइयों से मृत्यु को अल्पकाल तक स्थगित किया जा सकता है। चरित्र की रक्षा ही एड्स का अत्यंत प्रमुख उपचार है। फिर भी आवश्यकता पड़ने पर गर्भनिरोध साधनों यथा- कण्डोम का उपयोग जरूर करना चाहिए। समलैंगिकता से बचना चाहिए। केवल नये सिरेंज का ही उपयोग करने से एड्स के संक्रमण को रोका जा सकता है।

एड्स की व्याप्ति का एक अन्य प्रधान कारण रक्त है। अतः रक्त को ग्रहण करते समय उसकी वायरस-जाँच जरूर करवानी चाहिए। एड्स होने पर भी रोगी को घबराने की आवश्यकता नहीं है। अन्य लोगों को यह रोग न फैलाते हुए, सही दवाई लेते हुए, योग एवं ध्यान तथा संतुलित व पौष्टिक आहार लेते हुए वह अपनी मौत को अनेक वर्षो तक टाल सकता है। गर्भवती माँ को प्रसव से पहले एड्स संबंधी परीक्षा जरूर करवानी चाहिए। यदि गर्भस्थ शिशु को यह रोग हो जाए तो भी घबराने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि शिशु को माँ के माध्यम से एड्स न फैले- इसके लिए दवाई उपलब्ध है।

एड्स रोगी के साथ सहानुभूति से व्यवहार करना चाहिए। इससे उसको जीने की शक्ति मिलती है। आज एड्स एक वैयक्तिक समस्या न रहकर सामाजिक खतरा बन बैठा है। अतः हर एक नागरिक को चाहिए कि वह एड्स से संबंधित पूरी जानकारी प्राप्त करे और अन्य लोगों को भी इस रोग के बारे में जागरूक बनाये। चरित्र का निर्माण एवं शील की रक्षा ही अंततः एड्स का उपचार ठहरता है क्योंकि एड्स से बचाव ही उसका उपचार है।

20.2.8 बोध प्रश्नः-

1. एड्स तथा एच्.आई.वी. में अंतर क्या है?
2. एड्स रोग के नामकरण तथा उसके इतिहास के बारे में टिप्पणी लिखें।
3. एड्स रोग की व्याप्ति के प्रमुख कारण तथा उस रोग के लक्षण क्या हैं?
4. एड्स रोग के फैलाव को कैसे रोका जा सकता है?
5. एड्स रोग से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालिए।
6. एड्स रोग की जाँच के संबंध में आप क्या जानते हैं?

20.2.9 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. आधुनिक निबंध : दिनेश कुमार प्रसाद
2. एड्स की जानकारी : प्रो. सुरेश गुप्ता
3. निबंधावली : अशोक सेनापति तथा देबज्योति जेना
4. एच.आई.वी : डॉ. प्रकाश भातल भण्डे - अनु. श्रीमती साधना मौर्य
5. वैज्ञानिक निबंध : डॉ. सरोजिनी नागराज पाटिल

Sri M. Venkateswarlu,
Lecturer,
Department of Hindi,
A.C. College,
Guntur.

पाठ - 21.1

प्रयोजनमूलक हिन्दी- अर्थ एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा :-

21.1. 1 उद्देश्य
21.1. 2 प्रस्तावना
21.1. 3 भाषा के प्रकार
21.1. 4 प्रयोजनमूलक हिन्दी : परिचय
21.1. 5 प्रयोजनमूलक हिन्दी : अर्थ एवं स्वरूप
21.1. 6 प्रयोजनमूलक हिन्दी : प्रकार
21.1. 7 प्रयोजनमूलक हिन्दी तथा वर्तमान संदर्भ
21.1. 8 बोध प्रश्न
21.1. 9 सहायक ग्रंथ-सूची

21.1. 1 उद्देश्य :-

प्रयोजनमूलक हिन्दी की संकल्पना से छात्रों का परिचय करवाना प्रस्तुत पाठ का प्रधानोद्देश्य है। इस प्रक्रिया में सबसे पहले भाषा के प्रकारों पर प्रकाश डाला जाएगा। बाद में भाषा के प्रयोजनमूलक स्वरूप पर चर्चा करते हुए हिन्दी की प्रयोजनमूलक विशिष्टताओं के बारे में जानकारी दी जाएगी। इसी संबंध में छात्र 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' के अर्थ और स्वरूप से परिचित होंगे। पश्चात् छात्रों को वर्तमान संदर्भ में प्रयोजनमूलक हिन्दी के स्वरूपों के बारे में भी सीखने का अवसर मिलेगा।

21.1. 2 प्रस्तावना :-

'प्रयोजनमूलक हिन्दी' यह शब्द हिन्दी के विख्यात पण्डित मोटूरि सत्यनारायण जी के द्वारा हिन्दी जगत् को दिया गया। किसी भी भाषा का प्रयोजन 'भावों तथा विचारों का अभिव्यक्तीकरण' या संप्रेषण होता है। फिर 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' शब्द से आशय क्या है- इस प्रश्न के समाधान के लिए भाषा के विभिन्न आयामों पर दृष्टि डालनी होगी। भाषा का एक आयाम सृजनात्मक तथा सौंदर्यपरक होता है तो दूसरा आयाम भाषा के प्रयोजनपरक पक्ष पर आधारित होता है। सृजनात्मक पक्ष का विकास साहित्य की भाषा के रूप में होता है जो प्रायः कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, रेखाचित्र, निबन्ध इत्यादि विधाओं में प्रयुक्त होता है। प्रयोजनपरक पक्ष इससे अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होता है जो जनता की सामाजिक आवश्यकताओं तथा जीवन की रोजी-रोटी के मामलों से संबद्ध होता है।

प्रयोजनमूलक भाषा का आयाम अधिक प्रकार्यात्मक होता है। अर्थात् इसका प्रयोग किसी कार्य-विशेष के निष्पादन के लिए ही होता है। हिन्दी के संदर्भ में यह 'प्रयोजनमूलक' शब्द और भी अधिक विस्तृत रूप ले लेता है क्योंकि भारत में अधिकांश जनता के द्वारा प्रयुक्त प्रयोजनमूलक भाषा का रूप हिन्दी ही है। समाज के अधिकांश भाग के साथ जुड़े रहने के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी व्यक्तिपरक होकर भी समाज-सापेक्ष होती है।

21.1. 3 भाषा के प्रकार :-

भाषा, संप्रेषण का एक शक्तिशाली साधन है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपने मन-मस्तिष्क में निहित भावों-विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है। यह प्रक्रिया ही मनुष्य को विश्व के समस्त प्राणियों में सर्वशक्तिमान के रूप में प्रतिष्ठित करती है। वस्तुतः अन्य प्राणियों की भी अपनी-अपनी भाषा होती है जिसके माध्यम से वे अपना जीवनचक्र चलाते हैं। उदाहरणार्थ चींटियों की भाषा, पशु-पक्षियों की भाषा इत्यादि। इनमें कुछ प्राणी मूक संकेतों के द्वारा अपने भाव इंगित करते हैं तो कुछ प्राणी शब्दों तथा स्पर्शों के माध्यम से।

परन्तु मनुष्य का भाव-संप्रेषण अत्यंत संक्लिष्ट एवं बहुआयामी होता है। मनुष्य के क्रिया-व्यापार अन्य प्राणियों की तुलना में अत्यंत परिष्कृत और ऊँचे स्तर के होते हैं। अतः उसकी भाषा भी उसी कोटि की होती है। मानव ने अपने भावों-विचारों को संपूर्ण रूप से अभिव्यक्ति देने हेतु अत्यंत समर्थ एवं व्यापक भाषा-रूप का आविष्कार किया था। प्रारंभ में सीमित भावों-विचारों की अभिव्यक्ति के सीमित संकेतों की यह भाषा धीरे-धीरे विकसित होती गयी और आज संपूर्ण तथा वैज्ञानिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। वर्तमान युग में मानव-भाषा के संप्रेषण और अभिलेखन की अनंत पद्धतियाँ उपलब्ध हैं जिनका लाभ विश्वमानव-समाज को अगणित रूपों से प्राप्त हो रहा है। अतः प्रयोजनमूलक हिन्दी पर विचार करने से पहले यह समीचीन होगा कि पृष्ठभूमि के रूप में भाषा के विविध प्रकारों की जानकारी प्राप्त करें।

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने भाषा के प्रकारों की चर्चा करते हुए लिखा- "भाषा के दो पक्ष या प्रकार्य होते हैं- एक का संबंध हमारी सौंदर्यपरक अनुभूति का आलम्बन होता है। यह आत्मकेंद्रित और आत्मसुख का उपकरण होता है। दूसरे का संबंध हमारी सामाजिक आवश्यकता और जीवन की उस व्यवस्था से जुड़ा होता है जो व्यक्तिपरक होकर भी समाजपरक होता है और जिसका संबंध हमारी जीविका के साथ रहता है और उसके निमित्त सेवा-माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता है। भाषा व्यवहार का यह दूसरा पक्ष ही भाषा का 'प्रयोजनमूलक संदर्भ' है।"

इस विवेचन के आधार पर मोटे तौर पर भाषा के दो रूप या प्रकार किए जा सकते हैं।

1. भावप्रधान भाषा तथा
2. विचार या चिन्तनप्रधान भाषा

यहाँ विचार या चिन्तनप्रधान भाषा के भी पुनः दो रूप किए जा सकते हैं-

अ. सामान्य या बोलचाल की भाषा

आ. प्रयोजनमूलक भाषा

भावप्रधान भाषा मुख्यतः मानव के हृदयपक्ष को उजागर करनेवाली होती है। इसके माध्यम से मानव अपनी अत्यंत सूक्ष्म संवेदनाओं को भी स्पष्टरूप से प्रकट कर सकता है। संसार का समस्त साहित्य भाषा के इसी रूप की देन है। इसकी तुलना में विचार या चिन्तनप्रधान भाषा का संबंध दैनंदिन जीवन पर सीधे तौर पर पड़ता है। इसके माध्यम से पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों तथा निजी एवं सामाजिक जीवन के व्यवहारपरक कार्यों के संबंध में संप्रेषण किया जाता है। भाषा के इसी दूसरे प्रकार में उसका प्रयोजनमूलक स्वरूप निहित है जिसका विवेचन आगे किया जाएगा।

21.1. 4 प्रयोजनमूलक हिन्दी : परिचय :-

'प्रयोजनमूलक हिन्दी' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'Functional Hindi' के पर्याय के रूप में अधिक हो रहा है। कुछ विद्वान इसे व्यावहारिक हिन्दी या कामकाजी हिन्दी की भी संज्ञा देते हैं। अन्य कुछ विद्वानों का आशय है कि

'व्यावसायिक हिन्दी' ही इसके लिए अधिक समीचीन है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि 'प्रयोजनमूलक हिन्दी', हिन्दी का वह रूप है जो प्रशासन, व्यापार-वाणिज्य, वैज्ञानिक, तकनीकी, विधि, अनुसंधान इत्यादि क्षेत्रों में प्रयुक्त होता है। अतः भावप्रधान या साहित्यिक भाषा की तुलना में प्रयोजनमूलक हिन्दी का क्षेत्र व्यापक है। इसमें भाषा की व्याकरणिक संरचना पर ध्यान न देकर उसकी व्यावहारिक उपयोगिता पर ही बल दिया जाता है। इसीकारण कुछ विद्वान इसे 'व्यावहारिक हिन्दी' कहने लगे ताकि इस धारणा से बचा जाए कि कोई 'प्रयोजनरहित हिन्दी' भी है!

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत में विज्ञान का अभूतपूर्व विकास हुआ। गत बीस वर्षों की अवधि में भूमण्डलीकरण के चलते तकनीकी, संचार एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में अत्यंत दृतगति की प्रगति देखने को मिली। इसलिए हिन्दी भाषा की प्रयोजनमूलकता के नए-नए संदर्भ हर क्षेत्र में महसूस किए जाने लगे। हिन्दी संघ की राजभाषा है, अतः विभिन्न व्यवसायों और काम-धंधों के लिए सेवा-माध्यम के रूप में तथा सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक वास्तविकताओं के परिप्रेक्ष्य में उसके विभिन्न प्रयोजनमूलक संदर्भों की पहचान बनना भी आरंभ हो गया।

21.1. 5 प्रयोजनमूलक हिन्दी : अर्थ एवं स्वरूप :-

पहले हम देख चुके कि 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' शब्द का प्रयोग **Functional Hindi** नामक अंग्रेजी शब्द के पर्याय के रूप में हो रहा है। यदि शब्दार्थ की दृष्टि से देखेंगे तो 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' का अर्थ हुआ- ऐसी विशेष हिन्दी जिसका उपयोग किसी विशेष प्रयोजन के लिए किया जाता हो। 'प्रयोजनमूलक' शब्द वस्तुतः एक पारिभाषिक शब्द है। प्रयोजन का अर्थ हुआ- 'उद्देश्य' अथवा 'प्रयुक्ति'(Purpose of use)। 'प्रयोजन' शब्द का संबंध भाषा में उसकी प्रयोजनपरकता (Applicability) से है। 'मूलक' उपसर्ग से तात्पर्य है 'आधारित' (Based on or Depending)। अतः 'प्रयोजनमूलक' शब्द का उपयोग भाषा की अनुप्रयुक्तता और प्रायोगिकता के सुनिश्चित अर्थ में किया जा रहा है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी की परिभाषा :-

प्रयोजनमूलक हिन्दी पर अनेक विद्वानों ने अपनी राय प्रकट की। इस शब्द के प्रणेता श्री मोटूरि सत्यनारायण ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा था- "भाषा के दो पक्ष या प्रकार्य होते हैं- एक का संबंध हमारी सौंदर्यपरक अनुभूति का आलम्बन होता है। यह आत्मकेंद्रित और आत्मसुख का उपकरण होता है। दूसरे का संबंध हमारी सामाजिक आवश्यकता और जीवन की उस व्यवस्था से जुड़ा होता है जो व्यक्तिपरक होकर भी समाजपरक होता है और जिसका संबंध हमारी जीविका के साथ रहता है और उसके निमित्त सेवा-माध्यम के रूप में प्रयुक्त होता है। भाषा व्यवहार का यह दूसरा पक्ष ही भाषा का 'प्रयोजनमूलक संदर्भ' है।"

डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा तथा सुरेश कुमार ने माना कि यदि हिन्दी के व्यवहार-क्षेत्र को फैलाना है तो हिन्दी की शैक्षिक व्यवस्था एवं योजना को इन व्यावसायिक क्षेत्रों के संदर्भों में प्रयोजनमूलक बनानी होगी। डॉ. नगेन्द्र ने प्रयोजनमूलक हिन्दी पर अपना मंतव्य इस प्रकार प्रकट किया- "अब तक हम हिन्दी की साहित्यिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर बल देते रहे हैं, पर इसके साथ अब हमें हिन्दी के व्यावहारिक पक्ष और सामाजिक संदर्भ को भी अपने सामने रखना होगा। भाषा के व्यावहारिक और लक्षित दोनों ही पक्ष एक-दूसरे के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, और जब तक हिन्दी को सामाजिक प्रितिष्ठा नहीं मिलती, उसका समुचित विकास भी नहीं हो सकता।"

प्रयोजनमूलक हिन्दी पर प्रकाश डालते हुए डॉ.भोलानाथ तिवारी ने लिखा है- "....एक बृहत्तर समाज के भीतर विभिन्न प्रयोजनों से जितने भी छोटे-छोटे समाज गठित होते हैं, उन सबकी अपनी भाषा भी एक सीमा तक अलग-अलग होती है, जो प्रयोग के विशिष्ट प्रयोजन के कारण उस भाषा के सर्वसामान्य रूप के परिवर्त कहे जा सकते हैं। किसी भी

भाषा के ये विभिन्न रूप या परिवर्त ही उस भाषा के प्रयोजनमूलक विभिन्न रूप हैं।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि समाज के विभिन्न कार्यकलापों के लिए निर्दिष्ट भाषा-रूपों को लेकर विकसित भाषा ही उसका प्रयोजनमूलक रूप है।

भावप्रधान/सामान्य भाषा तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी में परस्पर अंतर :-

1. साहित्यिक हिन्दी मुख्यतः भावप्रधान होती है जबकि प्रयोजनमूलक हिन्दी हमारे जीवन की आवश्यकता से जुड़ी हुई होती है।

2. साहित्यिक या भावप्रधान हिन्दी कलात्मक होती है। उसमें रस, छन्द, अलंकार, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना आदि का प्रयोग पाया जाता है। इस हिन्दी में शब्द एवं संदर्भ के अनुसार अनेक अर्थ भी हो सकते हैं। पर प्रयोजनमूलक हिन्दी का स्वरूप पूर्व निर्धारित होता है। यह एकार्थक है। इसमें केवल अभिधा का ही प्रयोग होता है और सब कुछ स्पष्ट होता है। यह अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied linguistics) के अंतर्गत एक विशिष्ट अध्ययन का क्षेत्र है।

3. साहित्यिक या सामान्य हिन्दी का प्रयोग व्यक्ति के आधार पर अलग-अलग रूपों में किया जा सकता है। पर प्रयोजनमूलक हिन्दी अपनी भाषिक विशिष्टता के कारण इनसे बिलकुल पृथक ठहरती है। तकनीकी तथा पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अनिवार्य होने के कारण प्रयोजनमूलक हिन्दी की भाषिक विशिष्टता रेखांकित होती है। यह सटीक, स्पष्ट, वाच्यार्थ प्रधान, एकार्थक तथा सरल होती है।

4. भावप्रधान हिन्दी मुख्यतः रसिकों एवं भक्तों के बीच की होती है और सामान्यभाषा आम जनता के बीच की होती है। किन्तु प्रयोजनमूलक हिन्दी विविध ज्ञान-विज्ञान के अध्येताओं, प्रयोक्ताओं, व्यवसायियों तथा उद्यमियों के बीच की होती है।

5. साहित्यिक हिन्दी तथा सामान्य बोलचाल की हिन्दी की अभिव्यक्ति शैलियाँ अनौपचारिक, विवर्तमान तथा अनंत होती हैं। किन्तु प्रयोजनमूलक हिन्दी की अभिव्यक्ति शैलियाँ सीमित परन्तु औपचारिक होती हैं।

6. साहित्यिक भाषा कभी-कभी कलापक्ष और आलंकारिक प्रयोगों के कारण इतनी दुरूह बन सकती है कि उसका उद्देश्य पाठकों की समझ में ही नहीं आता। हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन कविता एवं प्रयोगवाद की कुछ कविताएँ इसके उदाहरण हैं। पर प्रयोजनमूलक हिन्दी सदा सार्थक एव सपाट होती है।

21.1. 6 प्रयोजनमूलक हिन्दी : प्रकार :-

श्री मोटूरि सत्यनारायण ने प्रयोजनमूलक हिन्दी को छः वर्गों में विभाजित करके देखा जो इस प्रकार हैं-

1. सामान्य संचार माध्यम
2. सामाजिक
3. वाणिज्यिक
4. कार्यालयी
5. तकनीकी
6. सामान्य-साहित्य

परन्तु **डॉ. भोलानाथ तिवारी** के अनुसार हिन्दी के सात प्रयोजनमूलक रूप हैं-

1. बोलचालीय हिन्दी
2. व्यापारी हिन्दी
3. कार्यालयी हिन्दी
4. शास्त्रीय हिन्दी
5. तकनीकी हिन्दी
6. समाजी हिन्दी
7. साहित्यिक हिन्दी

उपर्युक्त विभाजन के आधार पर भाषा के मोटे तौर पर दो रूप बनते हैं- एकः भावानुभूति और आनंद के आलंबन से संबंधित, दूसराः जीवन की रोजी-रोटी, आवश्यकताओं तथा ज्ञान-विज्ञान से संबंधित। उपर्युक्त विवेचन में 'व्यापारी हिन्दी' के अंतर्गत मंडियों की भाषा, सराफे-दलालों की भाषा, सट्टे बाजार आदि की भाषा आदि कई रूप बनते हैं। उसी प्रकार शास्त्रीय हिन्दी के अंतर्गत संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, विधिशास्त्र, भाषाशास्त्र, योगशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि शास्त्रों के भाषा-रूप आते हैं।

श्री मोटूरि सत्यनारायण एवं भोलानाथ तिवारी के विभाजन लगभग एक समान हैं। इन दोनों के आधार पर वर्तमान स्थिति के परिप्रेक्ष्य में प्रयोजनमूलक हिन्दी के मुख्यरूप निम्नलिखित रूप से बनते हैं। ध्यान रहे- इनमें आवश्यकता के अनुसार कुछ रूपों को जोड़ दिया गया है।

1. कार्यालयी हिन्दी :- सरकारी गैर-सरकारी कार्यालयों में प्रशासनिक कार्यों, कार्मिक प्रबंधन, औद्योगिक प्रबंधन, वित्त प्रबंधन आदि से संबंधित कार्यव्यापारों को निपटाने हेतु प्रयुक्त होनेवाली भाषा को 'कार्यालयी हिन्दी' कहा जाता है। इसके अंतर्गत टिप्पणियाँ, पत्राचार, ज्ञापन, अनुस्मारक, कार्यालय आदेश, निविदा-सूचना, करारनामा-ठेका आदि से संबंधित कागज़ात, लेखा-बही की प्रविष्टियाँ, धनादेश (Cheque) इत्यादि आते हैं।

इस भाषा में प्रयुक्त वाक्यों के कुछ उदाहरण - "चर्चा की जाए", "आदेश जारी करें", "परिपत्र जारी करें", "ध्यातव्य है", "यथाशीघ्र लागू करें" इत्यादि हैं।

2. व्यापार एवं वाणिज्य की हिन्दी :- इसके अंतर्गत उद्योगों, व्यापारों, विपणन, क्रय-विक्रय, नीलामी, शेयर बाजार, आदि की भाषा आती है। छोटे-मोटे ग्रामीण लेन-देन, कर्ज, बन्धक, मण्डी की भाषा से लेकर अनाज, कपड़े, बर्तन, साज-सामान आदि सब तरह के व्यापारों को संपादित करनेवाली भाषा भी इसीमें ली जा सकती है। उदाः-'हमारे समस्त उत्पादनों की मांग में उत्तरोत्तर वृद्धि को देखते हुए हमने उत्पादन वृद्धि हेतु नये संयन्त्र स्थापित किए हैं। उत्पादन वृद्धि में लागत की कमी को ध्यान में रखते हुए हमने तुलनात्मक रूप में सभी मदों के मूल्यों में वृद्धि अपेक्षाकृत कम मात्रा में की है। यद्यपि करों की मात्रा में लगभग 25% वृद्धि हुई है, किन्तु हमने अधिकतम मूल्यवृद्धि 15% तक सीमित रखी है। यह मूल्यवृद्धि 1अप्रैल 1999 से प्रभावशील होगी। इस संबंध में आपके पूर्ण सहयोग की अपेक्षा है।"

3. विज्ञान एवं शास्त्र की हिन्दी :- विज्ञान एवं शास्त्र का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। आज के वैज्ञानिक युग में नए प्रयोगों के कारण हर समय भाषा के नए रूप एवं नयी संकल्पनाओं का तेज़ी से विकास हो रहा है। अतः इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। विज्ञान एवं शास्त्रों के अंतर्गत भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, जीव विज्ञान, नृविज्ञान, मनोविज्ञान, ध्वनि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, राजनरीति शास्त्र, समाजशास्त्र, तर्क एवं नीति शास्त्र, दर्शन- संगीत शास्त्र,

काव्यशास्त्र, अर्थ शास्त्र तथा न्यायशास्त्र आदि अनेक व्यापक क्षेत्र आते हैं। हाल ही में कंप्यूटर विज्ञान के क्षेत्र में हुई अपार प्रगति के कारण 'वेब दुनिया' पर भी हिन्दी का वर्चस्व बढ़ रहा है। 'गूगुल' सेर्च इंजन ने सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में अपना काम चालू कर दिया जिनमें हिन्दी का शीर्षस्थ स्थान है।

हिन्दी की प्रयोजनमूलकता की चरमसीमा विज्ञान एवं शास्त्र के क्षेत्र में देखने को मिलती है। आज चूँकि विज्ञान के क्षेत्र में नित नवीन प्रयोग देखने को मिल रहे हैं, हिन्दी को अपनी शब्दावली में परिवर्तन करके हर एक अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बनने की आवश्यकता है। केंद्र सरकार भी राजभाषा होने के नाते हिन्दी को बढ़ावा देकर हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का बृहत् प्रयास कर रही है। अभियान्त्रिकी एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में भी अनेक पारिभाषिक शब्दों के बनने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में प्रयुक्त तकनीकी हिन्दी का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है-

"इस वर्ष आपातकालीन नियंत्रण के लिए केंद्रीय निरीक्षण व्यवस्था की स्थापना करने के लिए आदेश भेज दिया गया है। थर्मल विद्युत प्लैंट, ब्लास्ट फरनेस, इस्पात में लिंकिग थाप, तीनों रोलिंग मिलों की कार्यव्यवस्था के संगीकरण का कार्य जारी है।" इसप्रकार की हिन्दी के कई शब्द ऐसे होते हैं जिनके लिप्यंतरण से ही काम चल जाता है जैसे- गारण्टी, पालिसी, प्लैंट, रोलिंग इत्यादि।

4. पत्रकारिता एवं इलक्ट्रैनिक मीड़िया की हिन्दी :- प्रसिद्ध पत्रकार कुलदीप नय्यर ने लिखा "दुनिया ने 19वी शताब्दी में 'औद्योगिक क्रान्ति' देखी, 20वी शताब्दी में 'सांकेतक एवं तकनीकी क्रांति' देखी...अब हम 'सूचना तथा समाचार की क्रान्ति' के दौर में हैं।" वर्तमान गतिविधियाँ उनकी बातों को सत्य प्रमाणित कर रही हैं। आज समाचार तथा सूचना का ज्ञान हर व्यक्ति के लिए आवश्यक बन गया। अंतरताने (इंटरनेट) के कारण 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की बात यथार्थ हो गयी। पूरी दुनिया में सूचना तथा समाचार क्षेत्रों ने त्रिविक्रम का अवतार ले लिया। भारत में भी गत 20 वर्षों की अवधि में असंख्य पत्र-पत्रिकाओं तथा चैनलों की बाढ़ सी आ गयी।

हिन्दी का इस संबंध में विशेष रूप से उल्लेख करना होगा। भारत की अधिकांश जनता हिन्दी बोलती-समझती है। अतः सूचना के क्षेत्र में हिन्दी का उपयोग दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा है। अतः हिन्दी की प्रयोजनमूलकता पत्रकारिता एवं मीड़िया के क्षेत्र में अत्यंत सार्थक सिद्ध हो रही है। प्रयोजनमूलक हिन्दी में काबिल युवा पीढ़ी को कई नए-नए अवसर भी खुलकर सामने आने लगे। पत्रकारिता हिन्दी का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है-

आतंकियों ने पटरी उड़ायी...

"जम्मू एवं कश्मीर के पुलवामा जिले में आतंकवादियों ने गुरुवार रात रेल पटरी को विस्फोटक लगाकर उड़ा दिया। इससे यहाँ रेल सेवाएँ बाधित हुईं। हालांकि बाद में इसे बहाल कर दिया गया। यह पहली बार है जब आतंकवादियों ने राज्य में रेल सेवाओं को बाधित करने का प्रयोस किया है। प्राप्त जानकारी के अनुसार आतंकवादियों ने गुरुवार रात लगभग 10 बजे को पुलवामा के काकापोरा कस्बे के गुलबाग गाँव के निकट पटरी को दो से तीन मीटर तक उड़ा दिया। पटरी की मरम्मत का काम चल रहा है। रेलवे अधिकारियों ने बताया कि घटना की वजह से दक्षिणी कश्मीर के कोजीगुण्ड स्टेशन से जानेवाली सुबह की रेलगाड़ी में विलम्ब हुआ।"

5. विज्ञापनों की हिन्दी :- आज का युग विज्ञापनों का युग है। सरलीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण के चलते हिन्दी आज भारतीय मार्केट की सबसे शक्तिशाली भाषा सिद्ध हो गयी। मल्टी नेशनल कंपिनियाँ अपने उत्पादों की बिक्री के लिए विज्ञापनों का सहारा ले रही है। अतः अंग्रेजी में से अनेक भारतीय भाषाओं में विज्ञापनों का अनुवाद हो रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन विज्ञापनों की खपत हिन्दी-भाषी जनता को ही लक्ष्य में रखकर हो रही है। इन सभी कारणों से हिन्दी हिन्दी का एक नया प्रयोजनमूलक रूप आज हमारे सामने उभरकर आया है। इसके उदाः-

1. "स्प्राइट बुझाए ओन्ली प्यास, बाकी आल बकवास"
2. "बुलन्द भारत की बुलन्द तस्वीर"
3. "हीरोहोण्डा- देश की धड़कन"
4. "री वाइटल- थकना मना है"
5. "फेविकाल- चुटकी में चिपकाए" इत्यादि।

विज्ञापनों की हिन्दी ग्राहक या उपभोक्ता को उत्पादित वस्तु की सूचना देते हुए उसकी मांग बढ़ाने में सक्षम सिद्ध हुई। विज्ञापनों की हिन्दी के प्रयोग के संदर्भ में अमुक विज्ञापन के लक्षित वर्ग को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। उस लक्षित वर्ग के अनुसार भाषा में परिवर्तन लाये जाने चाहिए। विज्ञापनों में प्रयुक्त हिन्दी प्रायः अंग्रेजी विज्ञापनों का अनुवाद ही है। ऐसे संदर्भ में अंग्रेजी से हिन्दी में हर एक शब्द का अनुवाद करना संभव नहीं है। उदाहरणार्थ कई वर्ष पहले एक विज्ञापन आया था- '**You can't beat a Bajaj**' - इस वाक्य का शाब्दिक अनुवाद संभव नहीं है। शब्दकोश में **Beat** शब्द के जो अर्थ मिलते हैं उनका प्रयोग अनुवाद में करेंगे तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा। इसका श्रेष्ठ अनुवाद 'हर दौड़ में बेजोड़-बजाज़' ही हो सकता है। उसी प्रकार एक विज्ञापन का वाक्य अंग्रेजी में था "**Go for the gold- Novino Gold**' इस संदर्भ में भी अंग्रेजी से हिन्दी में शाब्दिक अनुवाद असंभव ही होगा। अंग्रेजी में 'गोल्ड' शब्द दो चीज़ों के लिए प्रयुक्त हुआ। एक- 'सोना' धातु के लिए (अत्युत्तम के प्रतीकार्थ में) दूसरा- 'नोवीनो' के उत्पादन के नाम के लिए। अब हिन्दी में उसी अर्थ-छाया के साथ अनुवाद करना शब्दशः संभव नहीं होगा।

प्रयोजनमूलक हिन्दी का अत्यंत प्रभावशाली रूप 'विज्ञापनों की हिन्दी' में ही दिखाई देता है। विज्ञापन हिन्दी की प्रयोजनमूलकता के मुख्यतः चार तत्त्व हैं-

अ. पठनीयता या श्रव्यता (Readability or listenability)
आ. आकर्षक गुण (Attractive value)
इ. स्मरणीयता (Memorability)
ई. विक्रयशक्ति (Selling power)

6. योग तथा आध्यात्मिकता की हिन्दी :- जैसे कि पहले संकेत किया गया- समाज की विभिन्न गतिविधियों के अनुरूप भाषा की प्रयोजनमूलकता के भी नित-नवीन आयाम उभरकर आते हैं। वर्तमानयुग में योग तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयुक्त हिन्दी भी उसका एक प्रयोजनमूलक विशेष ही कहलाएगी। चूँकि सारी दुनिया में भारत की प्राचीन आध्यात्मिकता एवं योग के प्रति आकर्षण निरंतर बढ़ रहा है, हिन्दी में भी अभिव्यक्ति के नए-नए रूप उभरकर सामने आए हैं। उदाहरणार्थ आध्यात्मिक क्षेत्र की हिन्दी का एक नमूना यहाँ द्रष्टव्य है-

"परमात्मा कई रूपों में दिखाई देता है। फिर भी समुद्र में जल के समान उसमें न तो कोई क्षय होता है न वृद्धि। हमें बाहर से प्रतीत हो सकता है कि क्षय या वृद्धि हो रही है...परन्तु जो भी उपस्थित है, वह मात्र एक है- ऐसा ज्ञान हो गया तो कोई वृद्धि या क्षय प्रतीत नहीं होता। जब परमात्मा और जीवात्मा के बीच संबंध का विवरण देने हेतु जल का सादृश लिया जाए तो नदियों का विशेषरूप से उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। समुद्र का जल, मेघ बनकर बरसता है- जिससे कि तालाब-सरोवर, नाले-नहर आदि उसी जल को स्वीकार करते हैं।"

ध्यातव्य है कि इस प्रकार की हिन्दी में संस्कृतनिष्ठ शब्दों की बहुलता होती ही है, साथ ही शास्त्र के अनुकूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। जहाँ तक 'योग' का सवाल है, उसमें पतंजलि के योगशास्त्र से लेकर वेद-पुराण, उपनिषदों एवं समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों की भाषा के शब्दों को सम्मिलित करना होगा। 'आसन', 'प्राणायाम', 'कुंभक', 'पूरक', 'रेचक', 'सहस्रार चक्र' इत्यादि अनेक शब्दों का यथावत् प्रयोग देखा जा सकता है। योग के संदर्भ में इलेक्ट्रैनिक मीड़िया के माध्यम से बाबा रामदेव जैसे कई योगशास्त्र पारंगत जिस हिन्दी का प्रयोग करते हैं, वह निस्संदेह हिन्दी का नवीन प्रयोजनमूलक रूप ही है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के उपर्युक्त रूप उसके लगभग सभी प्रकारों को समेटे हुए हैं। इनके अलावा भी प्रयोजनमूलक हिन्दी के कई प्रकार हो सकते हैं- उदाहरणार्थ 'फिल्मों की हिन्दी'।

21.1. 7 प्रयोजनमूलक हिन्दी तथा वर्तमान संदर्भ :-

आरंभ में हिन्दी मूलतः उत्तरभारत की भाषा थी। आर्य परिवार की भाषाओं की भांति हिन्दी का भी उद्भव और विकास संस्कृत से हुआ। हिन्दी ने संस्कृत की प्रकृति को सर्वाधिक आत्मसात् किया है और अन्य देशी व विदेशी शब्दों को भी सहजरूप से स्वीकार कर लिया। हिन्दी में केवल आर्यभाषाओं के शब्दों को ही नहीं, द्रविड़ भाषाओं के शब्दों को भी आत्मसात् करने की क्षमता है। इसलिए दिनोंदिन हिन्दी की संपन्नता और लोकप्रियता में लगातार वृद्धि हो रही है। देश के साधु-संतों, व्यापारियों तथा श्रमिक-मज़दूरों के कारण इसका व्यवहारक्षेत्र निरंतर विकासशील है।

आदि में हमने स्पष्ट रूप से जान लिया कि भाषा के मुख्यतः दो रूप होते हैं- एकः भावप्रधान/साहित्यिक रूप तथा दूसरा व्यवहारक्षेत्र या प्रकार्यात्मक (Applied) रूप। इनमें व्यवहारक्षेत्र की दृष्टि से हिन्दी का वर्चस्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है जो 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' के नाम से निरंतर विकास के मार्ग पर है। यद्यपि मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन की प्रमुख भाषा के रूप में हिन्दी का क्षेत्र पूरा भारत बन गया था तथापि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हिन्दी की प्रयोजनमूलकता की व्याप्ति हुई। प्रयोजनमूलक हिन्दी के विकास में यहाँ तीन कारण मुख्यतः दिखाई देते हैं। एक- भारत में पहले से ही व्यापार-वाणिज्य के लिए वे जन प्रसिद्ध हैं जिनकी मातृभाषाएँ मारवाड़ी, फारसी, गुजराती और पंजाबी थीं। उत्तर एवं पश्चिम भारत के इन समुदायों की संपर्कभाषा मुख्यतः हिन्दी है। मारवाड़ी और उत्तरभारत के व्यापारी समाज तो पूर्णतः हिन्दी भाषी समाज हैं किन्तु फारसी, सिख तथा गुजरात के समाजों ने भी वाणिज्य जगत् में हिन्दी को ही अपनाया। इसलिए व्यापार तथा वाणिज्य समुदायों की मुख्यभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार किया गया और उसे सार्वदेशिकता और सार्वभौमिकता प्रदान की गयी।

दूसरा कारण है-अंतर्राष्ट्रीय समाज के द्वारा हिन्दी को मिली स्वीकृति। अंग्रेजों के शासनकाल में अफ्रीका, अमरीका तथा यूरोप के अनेक देशों में गए लाखों भारतीयों की भाषा हिन्दी है। मारीशस, फ़िजी, गयाना, सुरीनाम, श्रीलंका, बर्मा, ट्रिनिडैड़-टुबागो, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल इत्यादि देशों में हिन्दी का समादर हो रहा है। इन सभी देशों सहित अमरीका, रूस, ब्रिटैन, आस्ट्रेलिया, चीन एवं कई यूरोपीय देशों में स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। जर्मनी, जापान, फ्रांस, बेल्जियम आदि देशों में भी छात्र चाव से हिन्दी पढ़ने लगे। संयुक्तराष्ट्र संघ में भी हिन्दी को मान्यता प्राप्त हुई है। विदेशी छात्रों के अध्ययन-अध्यापन एवं अनुसंधान के कारण हिन्दी का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर निरंतर विकास हो रहा है।

प्रयोजनमूलक हिन्दी के वर्चस्व का तीसरा तथा अत्यंत प्रमुख कारण है- भूमण्डलीकरण तथा निजीकरण। भारत आज संसार के किसी भी व्यापारी समाज के लिए अत्यंत लाभदायक व्यापार-क्षेत्र है। भारत की आबादी विश्वबाजार की उत्पादक वस्तुओं के लिए बहुत बड़ा बाजार है। ध्यान रहे, आज भारत की अधिकांश जनता हिन्दी बोलती और समझती है। अतः किसी भी कंपनी के लिए व्यापारी और ग्राहकों के बीच संपर्कसूत्र एकमात्र हिन्दी है। ऐसे में विश्वबाजार आज हिन्दी को अपनाने के लिए विवश है। इस दिशा में भारत सरकार की ओर से भी प्रयोजनमूलक हिन्दी के विकास के लिए कई प्रयत्न किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रशासनिक तथा वाणिज्यिक शब्दों के अनुसंधान एवं निर्माण हेतु शिक्षा मन्त्रालय द्वारा गठित 'वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग' इस विषय में गंभीर कार्य कर रहा है। हिन्दी के व्यापक प्रचार एवं प्रसार हेतु 'केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय' का गठन किया गया है। प्रत्येक राज्य में इसके क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थापित किए गए हैं। 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्' (NCERT) द्वारा प्रयोजनमूलक हिन्दी संबंधी अनेक पुस्तकों का निरंतर प्रकाशन हो रहा है। कम्प्यूटर एवं अंतरताने के क्षेत्र में भी हिन्दी को प्रचुर मात्रा में महत्त्व मिल गया। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि वर्तमान युग में प्रयोजनमूलक हिन्दी का निरंतर विकास हो रहा है और होगा भी। आवश्यकता है- युवा पीढ़ी को बदलती इन परिस्थितियों के अनुरूप प्रयोजनमूलक हिन्दी को अपनाने की।

21.1. 8 बोध प्रश्न :-

1. मोटे तौर पर भाषा के कितने रूप होते हैं?
2. प्रयोजनमूलक भाषा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
3. 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' के अर्थ और स्वरूप की विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' की दो परिभाषाएँ लिखिए।
5. विद्वानों के अनुसार 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।
6. भावप्रधान/साहित्यिक हिन्दी तथा प्रयोजनमूलक हिन्दी के मध्य अंतर को स्पष्ट कीजिए।
7. कार्यालयी हिन्दी की प्रयुक्तियों पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।
8. वर्तमान संदर्भ में प्रयोजनमूलक हिन्दी के महत्त्व को लेकर एक टिप्पणी लिखिए।
9. विज्ञापनों में प्रयुक्त हिन्दी के बारे में आप क्या जानते हैं- अपने शब्दों में लिखिए।
10. प्रयोजनमूलक हिन्दी की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए वर्तमान युग में उभरते प्रयोजनमूलक हिन्दी के नए संदर्भों की चर्चा कीजिए।

21.1. 9 सहायक ग्रंथ-सूची :-

1. 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' : संपादक-रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
2. 'प्रयोजनमूलक हिन्दी' : डॉ. विनोद गोदरे
3. 'प्रयोजनमूलक हिन्दी- सिद्धांत और प्रयोग' : डॉ. दंगल झाल्टे
4. 'प्रयोजनमूलक भाषा और कार्यालयी हिन्दी' : डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
5. 'व्यावसायिक हिन्दी' : प्रो. दिलीप सिंह, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
6. 'हिन्दी-विविध व्यवहारों की भाषा' : प्रो. सुवास कुमार, हैदराबाद विश्वविद्यालय
7. 'हिन्दी भाषा' : डॉ. भोलानाथ तिवारी
8. Translation of Advertisements : Dr. K.L. Verma

Dr. D. Nageswara Rao,
Lecturer,
Department of Hindi,
Andhra Loyola College (Autonomous),
Vijayawada

पाठ - 21.2

राज भाषा, राष्ट्र भाषा, संपर्क भाषा और अनुवाद

इकाई की रूपरेखा :-

21.2. 1 उद्देश्य
21.2. 2 प्रस्तावना
21.2. 3 राजभाषा - अर्थ एवं स्वरूप
21.2. 4 राष्ट्रभाषा - अर्थ एवं स्वरूप
21.2. 5 संपर्कभाषा - एक परिचय
21.2. 6 अनुवाद - अर्थ एवं स्वरूप
21.2. 7 अनुवाद के विविध प्रकार
21.2. 8 आदर्श अनुवाद के गुण
21.2. 9 अनुवाद - अभ्यास
21.2.10 बोध प्रश्न
21.2.11 उपयुक्त ग्रंथ-सूची

21.2. 1 उद्देश्य :-

इस पाठ का उद्देश्य कुछ विस्तृत किन्तु महत्त्वपूर्ण है। राजभाषा, राष्ट्रभाषा को लेकर हिन्दी संसार में कई विवाद प्रचलित हैं और इस विषय में हिन्दी छात्रों को कई प्रकार के भ्रम होने का खतरा भी है। अतः छात्रों को राजभाषा और राष्ट्रभाषा के संपूर्ण अर्थों से अवगत कराना इस पाठ का प्रमुख उद्देश्य है। इसके बाद संपर्कभाषा पर प्रकाश डाला गया, जिससे छात्रों को उसके भी स्वरूप को जानने का अवसर मिलेगा।

पाठ का अन्य उद्देश्य अनुवाद के स्वरूप एवं स्वभाव से छात्रों को परिचित बनाना है। अनुवाद का आज के युग में महत्त्व बढ़ता जा रहा है। अनुवाद की आवश्यकता हर क्षेत्र में महसूस की जा रही है। सही अनुवाद की ओर छात्रों का ध्यान आकृष्ट करके इसके प्रति उनमें रुचि जागृत करना पाठ का गौण उद्देश्य रहा है।

21.2. 2 प्रस्तावना :-

भाषा मानव-समाज की मूलभूत आवश्यकताओं में एक है। भाषा के द्वारा ही मनुष्य अपने भावों तथा विचारों को अन्य व्यक्ति पर संप्रेषित कर सकता है। भाषारहित समाज को असभ्य और असंस्कृत ही नहीं, मानसिक स्तर पर विकलांग भी समझा जाएगा- अतः किसी भी सभ्य समाज की प्रगति के लिए भाषा का होना अनिवार्य है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भाषा के प्रयोग अनेक रूपों में पाये जाते हैं। ये प्रयोग व्यक्ति बोली से लेकर अंतर्राष्ट्रीय तथा विश्वभाषा तक - के रूप में दिखाई पड़ते हैं। स्थिति के आधार पर भाषा के रूपों को राजभाषा और राष्ट्रभाषा का महत्त्व प्राप्त होता है। संपर्कभाषा का क्षेत्र कुछ विभिन्न परिस्थितियों से जुड़ा हुआ होता है जो जनता के नित्य नैमित्तिक व्यवहार में काम आता है।

अनुवाद आज के युग की आवश्यकता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों में अनुवाद का महत्त्व दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। अनुवाद में अनुवादक की भाषाई क्षमता के साथ-साथ सामान्य ज्ञान भी अपेक्षित है। अनुवाद मात्र दो भाषाओं के मध्य अर्थ का वहन ही नहीं करता बल्कि दोनों के बीच सेतु का भी कार्य करता है। हर देश और जाति के लिए अनुवाद अत्यंत आवश्यक है।

21.2. 3 राजभाषा - अर्थ एवं स्वरूप :-

भाषा मानव-संपत्ति है। वह समाज की धरोहर है और उसका प्रचलन समाज के अंतर्गत ही होता है। भाषा मुख्यतः प्रयोग के आधार पर बदलती है। ये प्रयोग ही भाषा को स्थितिगत महत्त्व प्रदान करते हैं। स्थिति के आधार पर किए गए वर्गीकरण के अनुसार भाषा के मुख्यतः तीन स्थितियाँ होती हैं-

1. राजभाषा
2. राष्ट्रभाषा
3. अंतर्राष्ट्रीय भाषा

इनके अलावा भी राष्ट्रीय सर्जनात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप भाषा की साहित्यिक स्थिति भी संभव है। यदि हम 'राजभाषा' पर विचार करेंगे तो पायेंगे कि जिस भाषा को किसी राज्य/शासन के सरकारी कार्यों में सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता हो, उसीको 'राजभाषा' कहा जा सकता है।

राजभाषा (**Official language**) मुख्यतः राज्य की शासनात्मक क्रिया-कलापों के लिए प्रयुक्त होनेवाली भाषा है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में "राजभाषा उसे कहते हैं जो केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों द्वारा पत्र व्यवहार, राज्यकारी (राजकारी) और अन्य सरकारी लिखा-पढ़ी के काम में लायी जाए।" इस विवेचन से हमें ज्ञात होगा कि राजभाषा के माध्यम से ही सरकार अपना शासन चलाती है तथा राज-काज के सभी कार्यों में इसी भाषा का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार सरकार/राज्य की शासनात्मक सत्ता की स्थापना में राजभाषा का विशेष योगदान रहता है। राजभाषा एक अंतर-प्रादेशिक मध्यवर्तिनी भाषा होती है, जो विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों को एक ही शासन के अधीन लाती है तथा उनके मध्य संपर्क स्थापित करने में समर्थ होती है। इस विषय को समझने के लिए एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

भारत एक बहुभाषी समुदायों का गणतन्त्र है। इस देश में इतने विभिन्न प्रकारों की भाषाएँ हैं कि इसे 'उप महाद्वीप' भी कहा जाता है। इतनी भाषाओं के रहते हुए भी भारतीय जनसमुदाय किसी एक राजभाषा के द्वारा ही अपना शासकीय कार्यकलाप निपटाता आया। अत्यंत प्राचीनकाल से लेकर मध्ययुगों तक संस्कृत भारत के केंद्रीय शासन की राजभाषा रही। बाद में मध्ययुगों से लेकर अंग्रेजों के सत्तापहरण-काल तक फारसी ही राजभाषा का दर्जा पाती रही। ध्यान देने की बात है कि अंग्रेजों ने भी विलियम बेंटिक के समय तक फारसी का ही अपने राज-काज में प्रयोग किया। धीरे-धीरे फारसी का राजभाषा पद अंग्रेजी को मिला और उसका वर्चस्व इतना प्रगाढ़ बना रहा है कि भारतीय जनमानस आज भी अंग्रेजी को ही राजभाषा के रूप में स्वीकार कर रहा है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी को संविधान की धारा 343 (3) के अनुसार राजभाषा का दर्जा दिया गया। परन्तु कुछ संशोधनों के कारण आज भी अंग्रेजी का ही उपयोग (सह राजभाषा के दर्जे के कारण) शासन के अंतर्गत हो रहा है।

राजभाषा होने के कारण हिन्दी का दायित्व और भी बढ़ गया है। अनेक क्षेत्रों में आनेवाले नये-नये शब्दों को हिन्दी में लाने के लिए केंद्र सरकार ने राजभाषा आयोग का निर्माण किया। हिन्दी के व्यापक प्रचार और प्रसार हेतु 'केंद्रीय हिन्दी निदेशालय' का भी गठन किया गया। इसके बाद 1963 और 1976 में राजभाषा के अधिनियम पारित किए गए। राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन की समीक्षा करने हेतु एक संसदीय राजभाषा समिति भी बनायी गयी। इसमें लोकसभा के 20 और राज्यसभा के 10 सदस्य होते हैं।

राजभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने का निर्णय 14 सितंबर 1949 को लिया गया था। अतः उसी दिन को हर वर्ष पूरे देश में राजभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु 'हिन्दी दिवस' मनाया जाता है। अब इस दिन को 'भारतीय भाषा दिवस' के रूप में भी मनाया जा रहा है। पर हिन्दी को किसी भी राज्य पर दबाव या जोर डालकर जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। अतः केंद्र सरकार की मंशा यह है कि चरणबद्ध तरीके से हिन्दी को सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में विकसित किया जाए।

राजभाषा के मामले में संविधान में स्पष्ट दिशा निर्देश दिए गए हैं कि राजभाषा हिन्दी से तात्पर्य एक व्यावहारिक भाषा से होगा न कि साहित्यिक भाषा से। मूलतः संस्कृत की धातुओं को आधार बनाकर राजभाषा की शब्दावली का निर्माण किया जाएगा और गौणतः भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं के भी प्रचलित शब्दों का प्रयोग इसमें किया जाएगा। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उदारता के साथ चरणबद्ध ढ़ंग से ही हिन्दी को भारतसंघ की संपूर्ण राजभाषा बनाया जा सकता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए और अधिक समय लगेगा।

21.2. 4 राष्ट्रभाषा - अर्थ एवं स्वरूप :-

राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र-विशेष की प्रतिनिधि भाषा होती है। राष्ट्र मृग, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गीत की भांति राष्ट्र भाषा का होना भी राष्ट्र की पहचान के लिए आवश्यक है। परन्तु भारत में अनेक भाषाएँ प्रचलित हैं और इस देश की हर प्रमुख भाषा को देश की प्रतिनिधि भाषा कहा जा सकता है। क्योंकि देश की सांस्कृतिक और साहित्यिक विरासत की भव्यता में हर एक भाषा का योगदान निहित है। अतः भारत में प्रचलित 21 प्रमुख भाषाओं को भारत की राष्ट्रभाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया।

राष्ट्रभाषा किसी राष्ट्र की भावात्मक एकता (Emotional integration) की संवाहिका है। इससे अमुक राष्ट्र का गौरव भी ऊँचा होगा। राष्ट्रभाषा की परिभाषा देते हुए काका कालेलकर ने लिखा "राष्ट्रभाषा की कल्पना राजभाषा से भिन्न है। उसका पद और भी बड़ा है। उसी भाषा का गौरव सबसे अधिक हो सकता है और वही राष्ट्रभाषा कहला सकती है जिसे सारी जनता समझती हो और जिसकी अस्मिता सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो।"

इस विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि राष्ट्रभाषा जनता की सहज विश्वासमयी भाषा होती है जिसका प्रयोग वह राष्ट्र व्यावहारिक सुविधा के लिए करती हो। राष्ट्रभाषा और राजभाषा में एक अन्य अंतर यह भी है कि राष्ट्रभाषा प्रायः साहित्यिक भाषा से मेल खाती है। राष्ट्रभाषा के द्वारा समूँचे राष्ट्र की सामूहिक चेतना प्रतिभासित होती है। राष्ट्रभाषा उस राष्ट्र के जनों के द्वारा सर्वाधिक समझी तथा बोली जानेवाली भाषा होती है। विदेशों में एक राष्ट्र के राजदूत भी अपनी-अपनी राष्ट्रभाषा ही में अपने प्रमाणपत्र प्रस्तुत करते हैं।

विद्वानों ने राष्ट्रभाषा को विविध नामों से अभिहित किया। डॉ.सुधीश पचौरी ने लिखा "राष्ट्रभाषा को हम और भी कई नाम देंगे...उसे सबकी बोली कहेंगे, 'हृदय की भाषा' और 'क़ौमी ज़बान' कहेंगे, 'स्नेह भाषा' या 'ऐक्य भाषा' भी कहेंगे। सबसे बढ़कर हम राष्ट्रभाषा को 'स्वराज्य की भाषा' कहेंगे।" निष्कर्षरूप से कहा जा सकता है कि राष्ट्रभाषा संपूर्ण राष्ट्र की भावात्मक एवं सांस्कृतिक एकता को प्रतिबिंबित करनेवाली होती है।

21.2. 5 संपर्क भाषा - एक परिचय :-

संपर्क भाषा का आशय है विभिन्न भाषा-भाषियों के मध्य संपर्क स्थापित करनेवाली भाषा। यह भारत में अत्यंत आवश्यक तथा अनिवार्य है, क्योंकि जैसा कि पहले ही इंगित किया गया- भारत अनेक बहुभाषी समाजों का समुदाय है। प्राचीनकाल में लौकिक संस्कृत, पाली तथा प्राकृत क्रमशः भारत की संपर्क भाषाएँ रहीं। सुल्तानों तथा मुगलों के शासनकाल में संस्कृत तथा फारसी भाषाओं ने संपर्क भाषाओं का काम किया।

वर्तमान युग में संपर्क भाषा की स्थिति बहुत स्पष्ट है। अंग्रेजी ही आज भारत की संपर्क भाषा है। यद्यपि भारत की अधिकांश जनता हिन्दी बोलती व समझती है, फिर भी हिन्दी को पूर्णतः संपर्कभाषा का दर्जा नहीं मिला। इस स्थिति के कई सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक कारण हैं। सरकार अनेक प्रयासों के द्वारा हिन्दी को संपर्कभाषा बनाने में लगी हुई है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केंद्र सभी प्रदेशों के साथ हिन्दी के माध्यम से ही संपर्क स्थापित करेगा तथा हिन्दी भाषी प्रदेशों को हिन्दी के माध्यम से ही केंद्र से संपर्क करना होगा। अपने निजी कामों में भी हिन्दी भाषी तथा अहिन्दी भाषी प्रदेशों के बीच हिन्दी के माध्यम से संपर्क हो, इसके लिए प्रयास जारी हैं। ये सभी नियम हिन्दी को संपर्क भाषा बनाने हेतु सरकारी तथा गैर सरकारी स्तरों पर बनाए गए हैं। इसमें संदेह नहीं है कि भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में हिन्दी को संपर्कभाषा बनने के लिए और भी गंभीर प्रयासों की आवश्यकता है।

21.2. 6 अनुवाद - अर्थ एवं स्वरूप :-

'अनुवाद' शब्द के आरंभिक अर्थ पर ध्यान देंगे तो स्पष्ट होगा कि 'पुनरोक्ति' या 'पुनःकथन' ही अनुवाद का तात्पर्य था। परन्तु अब अनुवाद का अर्थ है- एक भाषा में कहे गए या लिखे गए कथ्य को दूसरी भाषा में परिवर्तित करना। जिस भाषा का अनुवाद करते हैं वह स्रोत भाषा (Source Language) है तथा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है वह लक्ष्य भाषा (Target Language) है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि एक भाषा में व्यक्त भावों व विचारों को दूसरी भाषा के माध्यम से व्यक्त करना ही अनुवाद है।

वस्तुतः अनुवाद अत्यंत संक्लिष्ट प्रक्रिया है। सफल अनुवादक वही होगा जो स्रोत भाषा के शब्दों को उसके भावों में कोई परिवर्तन किए बिना लक्ष्य भाषा की संरचना और उसीकी पद्धति के अनुसार अनुवाद करता हो। भाषा के शब्दों को हम 'प्रतीक' (symbols) मानेंगे तो उन प्रतीकों का अंतरण ही अनुवाद होगा। डॉ. नगेंद्र के अनुसार "किसी कृति में निबद्ध विचारों या भावों का दूसरी भाषा के माध्यम से संप्रेषण करना ही अनुवाद है।" डॉ. भोलनाथ तिवारी ने लिखा "भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है-इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन। अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के 'निकटतम', 'समतुल्य' और 'सहज' प्रतीकों का प्रयोग।" तिवारी जी की परिभाषा के अनुसार किसी

भाषा का सार्थक अनुवाद वही होगा जो स्रोतभाषा के उद्देश्य से निकट हो और साथ ही साथ सहज भी हो।

अनुवाद के कई प्रयोजन हैं। अनुवाद के माध्यम से एक भाषा में निहित ज्ञान-विज्ञान के किसी भी क्षेत्र से संबंधित अमूल्य समाचार को अपनी भाषा में पढ़ सकते हैं। अनुवाद दो भिन्न भाषा-भाषी समाजों के मध्य सेतु का कार्य करता है। हर किसी को एक या दो भाषाओं से ज्यादा भाषाओं को सीखना कठिन है, इसलिए अनुवाद के द्वारा किसी भी भाषा में उपलब्ध समाचार को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। अनुवाद के कारण ही विज्ञान, राजनीति, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान आदि अगणित शास्त्रों की जानकारी पूरे विश्व को मिल सकी है। साहित्य में भी अनुवाद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे वेद-पुराण, उपनिषदों का ज्ञान अनुवाद के ही माध्यम से पाश्चात्य संसार को प्राप्त हुआ तो वहाँ से भौतिक विज्ञान का भण्डागार अनुवाद करके ही हम प्राप्त कर सके। अनुवाद से राजनीतिक विचारों का आदान-प्रदान होता है और जनजागृति का सबसे बड़ा साधन अनुवाद है। अनुवाद से विश्वबंधुत्व की भावना भी विकसित होती है।

आज वैश्वीकरण के नेपथ्य में अनुवाद का महत्त्व और भी बढ़ गया। आज सारा संसार एक छोटा सा गाँव बन गया। अतः अनुवाद के माध्यम से कई देश आपस में जुड़ने के मौके अनिवार्य हो गए। विशेषकर भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र से संपर्क बनाये रखने के लिए सारा संसार अनुवाद का ही सहारा ले रहा है।

21.2. 7 अनुवाद के विविध प्रकार :-

अनुवाद 'विषय', 'अनुवाद की प्रकृति', 'पद्यत्व या गद्यत्व', और 'साहित्यिक विधा' के आधार पर कई प्रकार के हो सकते हैं। इनके अलावा भी 'मूलनिष्ठ अनुवाद' तथा 'मूलमुक्त अनुवाद' जैसे प्रकार आते हैं। अनुवादों के प्रकारों को सामान्यतः इस प्रकार बताया जा सकता है-

1. शब्दानुवाद
2. भावानुवाद
3. छायानुवाद
4. सारानुवाद
5. व्याख्यानुवाद
6. आदर्शानुवाद
7. रूपान्तरण अनुवाद
8. आशु अनुवाद या वार्ता अनुवाद

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक जी का गीतानुवाद 'व्याख्यानुवाद' की कोटि में आता है। 'रामायण' तथा 'महाभारत' के मौलिक संस्कृत ग्रंथों पर सभी भारतीय भाषाओं में अगणित ग्रंथों की रचना हुई। इन सबको 'छायानुवाद' कहा जा सकता है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण के तेलुगु अपन्यास 'वेयि पड़गलु' का हिन्दी अनुवाद 'सहस्रफण' (अनुः- श्री पी.वी.नरसिंह राव) भावानुवाद की कोटि में आता है।

21.2. 8 आदर्श अनुवाद के गुण :-

आदर्श अनुवाद उसे कहते हैं जो पाठकों को मूल रचना जैसा लगे और साथ ही साथ स्रोत भाषा में कहे गए पूरे कथ्यों का संवहन करे। निम्नलिखित गुणों से संपन्न अनुवाद ही आदर्श अनुवाद हैः-

1. अनुवाद में स्रोतभाषा के कथ्य में कुछ जोड़ना या छोड़ना नहीं चाहिए।
2. अनुवाद लक्ष्यभाषा के अनुकूल हो।
3. मूलभाव के साथ-साथ मूल शैली को भी यथाशक्ति अपने में उतार लिया हो।
4. अनुवाद की भाषा पाठक की समझ में आनी चाहिए।

21.2. 9 अनुवाद - अभ्यास :-

छात्रों के लिए अभ्यास हेतु यहाँ अनुवाद के कुछ नमूने दिये गए हैं:-

1. The Elephant is the largest and strongest animal on the earth. It is a strange looking animal with it's thick legs, huge back, large hanging ears, small tail, and little eyes. It's long nose is called the trunk. The Elephant is a very intelligent animal.

हाथी इस भूमि पर सबसे बड़ा और शक्तिशाली जानवर है। यह जानवर अपने मोटे-मोटे पैर, भारी पीठ, विशाल-झूलनेवाले कान, छोटी सी पूँछ तथा छोटी आँखों से कुछ विचित्र दिखाई देता है। इसकी लम्बी नाक को 'सूँड' कहा जाता है। हाथी अत्यंत विवेकशील जानवर है।

2. In Ancieant times Elephant was used in so many works like carrying goods, lifting huge things, building materials etc. Elephants are found in India and Africa. Thailand is also very famous for Elephants. In south India Elephants are used as "Vahanas" in Hindu Temples. Elephants are highly respected animals- because, people worship Lord Ganesha who is a God with Elephant face.

हाथी का उपयोग प्राचीनकाल में कई कामों के लिए किया जाता था- जैसे वस्तुओं को ढ़ोना, भारी-भरकम भवन निर्माण की चीजों को उठाना, आदि। हाथी भारत और आफ्रिका में पाये जाते हैं। थाईलैण्ड भी हाथियों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। दक्षिण भारत के हिन्दू देवालयों में वाहनों के रूप में हाथियों का उपयोग किया जाता है। हाथी बहुत ही आदरणीय जानवर है, क्योंकि लोग भगवान गणेश जी की पूजा करते हैं जो हाथी-मुख के भगवान हैं।

3. We are living in a modern-era. In this age science is proving to be a boon as well as bane for the entire man kind. Now the political scenerio is too very much changed. The British rule has gone. The Democratic Republic state is established in the country. But today we can see, all the students are highly affected by the western life style. It is very sad to say that because of this blind following of western culture and life style, our own values are deranged. The entire political, social, economical and cultural structure of our nation is drastically changed.

हम आधुनिक युग में जी रहे हैं। विज्ञान इस युग में समस्त मानव जाति के लिए वरदान और अभिशाप दोनों ही रूपों में साबित हो रहा है। अब राजनीतिक नेपथ्य भी बहुत कुछ बदल गया है। ब्रिटिश शासन चला गया। देश में लोकतांत्रिक गणतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। पर आजकल हम देख सकते हैं कि सभी छात्र पाश्चात्य जीवन-शैली से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। यह बड़े दुख की बात है कि पाश्चात्य संस्कृति तथा जीवन-शैली के अंधानुकरण से हमारे अपने मूल्य अस्तव्यस्त हो गए हैं। हमारे देश की संपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संरचना ही प्रचण्डरूप से बदल गयी।

4. It is very hard thing to know that the beauty of Tajmahal is being disturbed by the Environmental pollution created in and around. Every year people come in great numbers from various parts of the world to see and enjoy the beauty of Tajmahal. Now a days it is aslo said that the white colour of Tajmahal is changing into yellow colour. The main reason for this is- pollution. The polluted water coming from the industries around Tajmahal enters the river Yamuna, so the air is also being polluted.

हमें यह जानकर बड़ा खेद होगा कि अपने चारों ओर स्थित पर्यावरण-प्रदूषण के कारण ताजमहल का सौंदर्य बिगड़ रहा है। हर वर्ष दुनिया के विभिन्न प्रदेशों से बड़ी संख्या में लोग ताजमहल का सौंदर्य देखकर आनंद उठाने आते हैं। आजकल यह भी बताया जा रहा है कि ताजमहल का सफ़ेद रंग पीले रंग में बदल रहा है। इसका मुख्य कारण प्रदूषण है। ताजमहल के चारों ओर स्थित उद्योगों से आनेवाला गन्दा प्रदूषित जल यमुना नदी में प्रवेश करता है। इसके कारण वहाँ की हवा भी प्रदूषित हो रही है।

5. The duty of a righteous man is to look at the whole world as that of the Lord and conduct himself accordingly. The deeds he performs with purely selfish motive will only push him into 'Adharma'- Therefore his selfishness should be curtailed. All the religions have evolved only on the basis that the thought of the lord should be created in him and he is made to become aware that the world belongs to the Lord. There is no religion which says 'you conduct yourself as you like and amass wealth for yourself alone.' Because he is bound to act only with selfish motive. So long as be thinks he is important, all the religions till him about god in this manner- 'Dear man, you are nothing before the great power which created this entire universe.'

एक धर्मपरायण व्यक्ति का यही कर्तव्य होगा कि वह इस संपूर्ण विश्व को भगवान का स्वरूप समझकर उसके अनुरूप कार्य करें। यदि मनुष्य नितांत स्वार्थ प्रवृत्ति अपनाकर कार्य करेगा तो वह उसे अधर्म ही की ओर ले जाएगा। अतः उसे अपनी स्वार्थ प्रवृत्ति छोड़ देनी होगी। सभी धर्मों का आविर्भाव इसी मूलभावना के आधार पर हुआ कि मनुष्य के मन में भगवान का चिंतन उत्पन्न करें तथा उसे इस विषय में सचेत करें कि 'यह विश्व भगवान का है'। मनुष्य से कोई धर्म नहीं कहता कि 'तुम मनमानी आचरण कर सकते हो और संपत्ति का उपभोग अकेले ही कर सकते हो'। मनुष्य का स्वभाव स्वार्थ प्रयोजन को लेकर आचरण करने तक सीमित है। जब तक वह सोचेगा कि 'मैं ही सबकुछ हूँ', सारे धर्म भगवान के बारे में उससे यही कहते हैं- "हे मनुष्य...इस समस्त ब्रह्माण्ड की जिसने सृष्टि की, उस महाशक्ति के सामने तुम नगण्य हो।"

6. On the banks of river Penna, there was a village called Peruru. There lived a poor Brahmin. His wife was an orthodox. They didn't have any children. They were living in a small hut. There was a lime tree behind the hut. It used to give them lot of lime fruits. The couple used to sell the fruits and live on the income.

पेन्ना नदी के किनारे पर पेरूरु नामक एक गाँव था। वहाँ एक गरीब ब्राह्मण निवास करता था। उसकी पत्नी एक रूढ़िवादी औरत थी। उनके कोई संतान नहीं थीं। वे एक झोंपड़ी में रहा करते थे। उस झोंपड़ी के पीछे एक नीम्बू का पेड़ था। वह पेड़ उनको ढ़ेर सारे नीम्बू फल देता था। वे दोनों उन्हें बेचकर उससे प्राप्त आय पर ही जीवन-यापन करते थे।

7. we must take plenty of exercise. To make the body strong, we must use it. The parts that are most used become the strongest and those we eye least will be the weakest. The arms of the blacksmith are very strong, because he uses them so much. Ours are weaker than his because we use them less. The man who works regularly, becomes strong- while the idle man becomes weak. The boy who works and plays in open air grows strong and healthy but the one who sits indoor and does not take exercise grows up to be a weak and unhealthy man. That is why swami Vivekananda also emphasized the importance of physical exercise.

हमें प्रचुरमात्रा में व्यायाम करना होगा। शरीर को मज़बूत बनाने के लिए हमें उसका उपयोग करना चाहिए। जिन शारीरिक भागों का उपयोग अधिक होता है, वे मज़बूत बनते हैं और जिन भागों की उपेक्षा की जाती है, वे कमज़ोर रह जाते हैं। एक लुहार की बाहें बड़ी मज़बूत होती हैं, क्योंकि वह उनका ज्यादा इस्तेमाल करता है। हमारे हाथ उसकी तुलना में इतने मज़बूत नहीं रहते, क्योंकि हम उनका कम उपयोग करते हैं। जो हर दिन नियमानुसार काम करता है, वह मज़बूत बनता है जबकि आलसी व्यक्ति कमज़ोर रह जाता है। खुली हवा में काम करते हुए खेलनेवाला लड़का शक्तिशाली और

तन्दुरुस्त बनेगा पर जो लड़का घर के अंदर ही बैठकर व्यायाम का नाम नहीं लेता, वह कमज़ोर तथा रोगी बन जाएगा। इसीलिए स्वामी विवेकानंद ने भी शारीरिक व्यायाम पर ज़ोर दिया।

8. During the course of the year considerable progress has been made in expanding the areas of computerisation at the project stage in all major thrust areas in the project oriented jobs and staff functions. Billing of civil, electrical and mechanical works, estate billing system, data base for marketing functions, asset register are some of the important functions computerised. Continued efforts are being made to improve the skills in utilisation of computer system and in programming to meet the challenge of operating the plant with extensive computerisation and automation.

परियोजना के इस चरण में इस वर्ष जोर डालने योग्य सभी प्रमुख क्षेत्रों अर्थात् परियोजनोन्मुख कार्यों तथा कर्मचारियों के कार्यकलापों में संगणकीकरण के विस्तार की दृष्टि से काफी वृद्धि हुई है। सिविल, विद्युत तथा यांत्रिक कार्यों के बिल बनाने की व्यवस्था क्रय-आदेशों को जानने की व्यवस्था, विपणन कार्यों से संबंधित सामग्री, पूँजी रजिस्टर जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों का संगणकीकरण हो चुका है। संगणकों की उपयोगिता के आयाम में कौशल की वृद्धि के लिए तथा संयन्त्र के परिचालन की चुनौतियों का विस्तृत संगणकीकरण एवं स्वतः संचालन संबंधी कार्यक्रमण में लगातार प्रयास जारी है।

21.2.10 बोध प्रश्न :-

1. राजभाषा के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. राष्ट्र भाषा किसे कहते हैं- विस्तार से समझाइए।
3. पाठ के आधार पर राजभाषा और राष्ट्रभाषा के बीच अंतर को समझाने का प्रयास कीजिए।
4. राजभाषा के प्रचार-प्रसार हेतु केंद्र सरकार ने क्या-क्या निर्णय लिए? विस्तार से लिखिए।
5. 'संपर्कभाषा' पर एक लघु टिप्पणी लिखिए।
6. अनुवाद पर एक परिचयात्मक लेख लिखिए।
7. अनुवाद के कितने प्रकार हो सकते हैं?
8. 'आदर्श अनुवाद' किसे कहा जा सकता है?
9. 'वर्तमान संदर्भ में अनुवाद का महत्त्व और भी बढ़ गया है'- इस पर अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।
10. 'मशीनी अनुवाद' के बारे में आप क्या जानते हैं?

21.2.11 उपयुक्त ग्रंथ-सूची :-

1. भाषा विज्ञान - डॉ. भोलानाथ तिवारी
2. संघीय राजभाषा - डॉ. बलराज सिंह
3. भाषाई अस्मिता और हिन्दी - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
4. हिन्दी भाषाः संदर्भ और संरचना - सूरजभान सिंह
5. अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
6. अनुवाद के विविध आयाम - प्रो. किशोरीलाल व्यास, उस्मानिया विश्वविद्यालय
7. 'हिन्दी-विविध व्यवहारों की भाषा' - प्रो. सुवासचन्द्र कुमार, हैदराबाद विश्वविद्यालय

Dr. D. Nageswara Rao,

Lecturer,

Department of Hindi,

Andhra Loyola College (Autonomous),

Vijayawada